

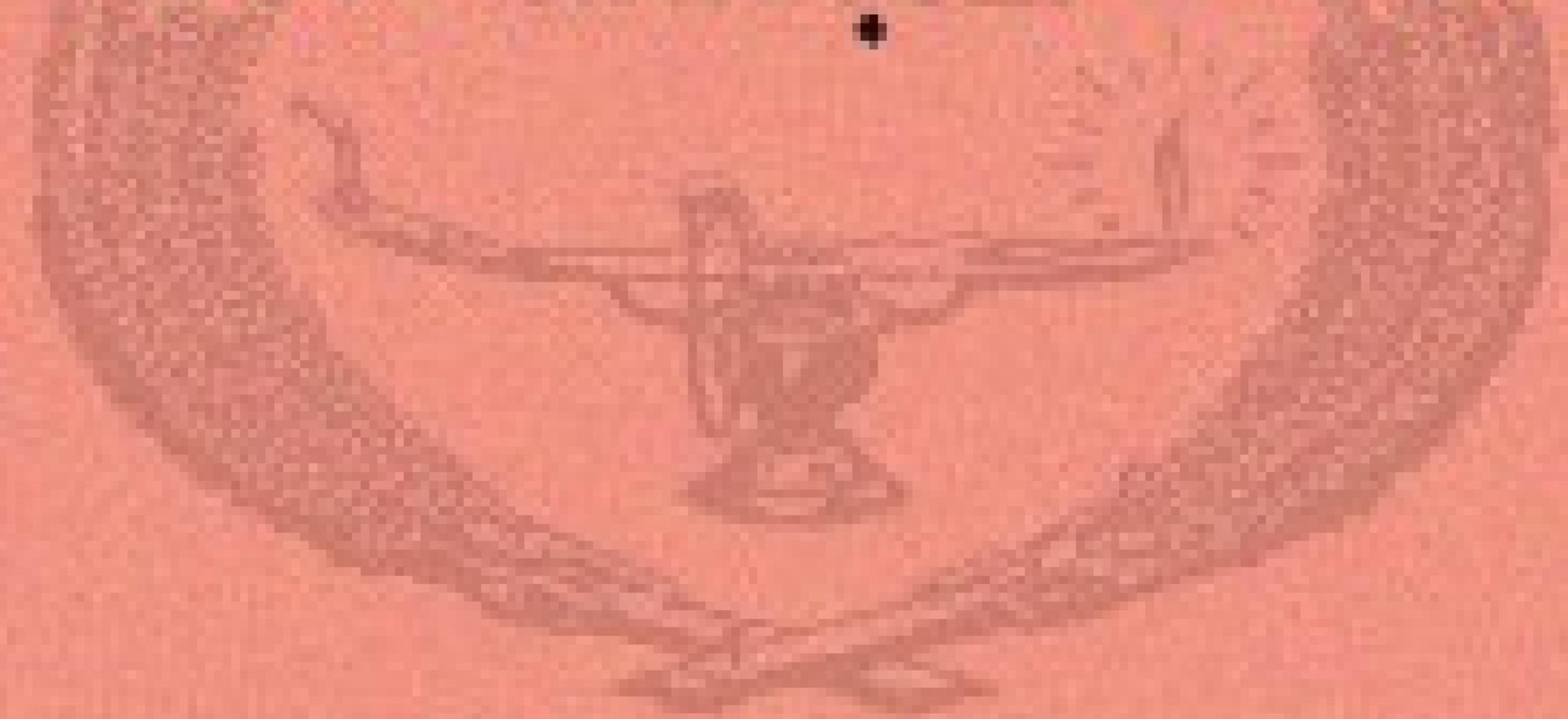
GAEKWAD'S ORIENTAL SERIES

Published under the Authority of the
Government of His Highness the
Maharaja Gaekwad of Baroda

GENERAL EDITOR

B. BHATTACHARYYA, M. A.

SAMARĀNGANASŪTRADHĀRA



VOLUME I

Volume XXV.

GAEKWAD'S ORIENTAL SERIES

Published under the Authority of the
Government of His Highness the
Maharaja Gaekwad of Baroda

GENERAL EDITOR

B. BHATTACHARYYA, M. A.



VOLUME I



Volume XXV.

समराङ्गणसूत्रधारः
महाराजाधिराजश्रीभोजदेवप्रणीतः
SAMARĀNGAÑASŪTRADHĀRA
BY
KING BHОJADEVA

EDITED BY
MAHĀMAHOPADHYĀYA
T. GANAPATI SĀSTRÎ,
Honorary Member of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland;
Doctor of Philosophy, University of Tübingen,
Editor of the
TRIVANDRUM SANSKRIT SERIES.

IN TWO VOLUMES

Volume I

1924
BARODA
CENTRAL LIBRARY

Printed by L. Ramaswamy Sastri at the Sridhara Power Press, Trivandrum, and
published by Newton Mohun Dutt, Curator of Libraries, Baroda State,
on behalf of the Government of His Highness the Maharaja
Gaekwad, at the Central Library, Baroda.



Price Rs. 5 Net.

PREFACE.

Samarānganasūtradhāra is a work on architecture. It means, literally, an architect of human dwellings and deals with the planning of towns and villages, building of houses, halls and palaces as well as machines of various kinds.

The edition is based on the following three manuscripts:-

- (1) The manuscript marked ४, belonging to the Central Library, Baroda, which runs up to a certain portion in the 82nd adhyaya but is wanting in 19 folios, and which was copied, as mentioned in the colophon, in Saunvat 1594.
- (2) The manuscript marked ५, belonging to the same library, which runs up to a portion in the 55th adhyaya.
- (3) The manuscript marked ६, obtained on loan from the Bhandar at Paggan, which runs up to a portion of the 49th adhyaya but is wanting in 10 folios and which appears to be of the same age as the first.

These manuscripts are full of errors and not very legible. To examine them for the press was a very difficult task. The first 54 adhyayas are now issued as the first volume while the remaining adhyayas are in the press and will be published before long as the second volume.

An exhaustive table of contents is prefixed to this volume a perusal of which will give an idea of all the subjects imbedded in it.

The work treats of the construction of cities, palaces and mansions with greater clearness of expression and wealth of details than any other available work of Silpa Sastra. The 31st chapter contains descriptions of various kinds of machines that are not found in other Silpa works, such as the elephant machine (गजयन्त्र), wooden bird-machine travelling in the sky (व्योमचरिवद्वयन्त्र), wooden vimana machine flying in the air (आकाशगामिद्वयविमानयन्त्र), door-keeper machine (द्वारपालयन्त्र), soldier machine (योधयन्त्र) etc.

“यम्भेण कलिपतो इस्ती नदन् गच्छन् प्रतीयते ।
 शुकाचाः पश्चिणः कलसास्तालस्यानुगमान्मुहुः ॥
 जनस्य विष्मयकृतो नृत्यन्ति च पठन्ति च ।
 पुत्रिका वा गजेन्द्रो वा तुरणो मर्कटोऽपि वा ॥
 वलनैर्यर्तनैर्नृत्यस्तालेन इरते मनः ।”

“लघुदारमयं महाविहङ्गं ददसुकिलश्चतनुं विद्याय तस्य ।
 उदरे रसयन्त्रमादधीत उवलनाधारमधोऽस्य चाग्रिपूर्णम् ॥
 तत्रारुढः पूरुषस्तस्य पष्ठद्वन्द्वाचालप्रोच्छितेनानिलेन ।
 सुतस्यान्तः पारतास्यास्य शक्तया चित्रं कुर्वन्नम्बरे याति दूरम् ॥
 इत्यमेव सुरमन्दिरतुल्यं सञ्चलत्यलघु दारविमानम् ।
 आदधीत विधिना चतुरोऽन्तस्तस्य पारदभूतान् ददकुम्भान्” ॥

Generally, the language of the extant Silpa works is ungrammatical, but the present work is free from grammatical solecisms and written mostly in a sweet and beautiful style. The work will prove to be of immense benefit to students of Indian architecture as well as to those who wish to follow it in practice.

The author of the work, as mentioned in it, is Maharajadhiraja Sri Bhojadeva who is probably the same Bhoja of Dhara who ruled over Malwa in the first part of the 11th century A. D. and to whom many important works are ascribed such as, Sringāraprakāsa (Alankara) and Saraswatīkāñṭhabharana (Vyakarana).

T. Ganapati Sastri.

विषयानुक्रमणी ।

विषयः

पृष्ठम् ।

१. महासमागमनाध्यायः प्रथमः —

| | | | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|-----|----|
| मङ्गलाचरणम् | ... | ... | ... | ... | ... | १ |
| शुभानामुपादानस्य, अगुभानामुपादानस्य चावश्यकता | ... | ... | ... | ... | ... | ,, |
| देशपुरादीनां श्रेयः साधनत्वकथनम् | ... | ... | ... | ... | ... | ,, |
| शास्त्रारम्भसमर्थनम् | ... | ... | ... | ... | ... | ,, |
| अन्योपकमोपक्षेपः | ... | ... | ... | ... | ... | २ |
| पुरा ब्रह्मसत्रियौ पृथूपदुताया गूमेरसंयप्रार्थनम् | ... | ... | ... | ... | ... | ,, |
| मूमिनु प्रस्थितस्य पृथोस्तत्राविर्भावः | ... | ... | ... | ... | ... | ,, |
| आविर्भूतस्य तस्य ब्रह्माणं प्रति स्वोदयमविज्ञापनम् | ... | ... | ... | ... | ... | ,, |
| श्रुतवृत्तान्तस्य ब्रह्मणः प्रतिवचनम् | ... | ... | ... | ... | ... | ,, |
| पृथ्वभिप्रेतस्य स्थानादिविनिवेशनाय विधानाय विश्वकर्मणं प्रति ब्रह्मणो नियोगः,, | | | | | | |
| समाहितयोः पृथुमूम्योर्विसर्जनम् | ... | ... | ... | ... | ... | ३ |
| मूम्या सह पृथौ, ब्रह्मणि च स्वं स्वं स्थानमुपाश्रिते विश्वकर्मणो हिमाचलमभि गमनम्, | ... | ... | ... | ... | ... | ,, |

२. विश्वकर्मणः पुत्रसंवादाध्यायो द्वितीयः —

| | |
|--|----|
| अथ ब्रह्मनियोगानुष्टानाय हिमालयं गतस्य विश्वकर्मणः स्वपुत्रस्मरणम् | ,, |
| स्मरणमात्रोपनतानां तेषां जयादीनां चतुर्णां मानसानां पितुः पादाभिवन्दनम्,, | |
| तेभ्यो ब्रह्मनियोगनिवेदनं, स्वसाक्षारेण तत्तत्स्थानादिविनिवेशनाय तेषां विश्वकर्मणा नियोजनं च. | ४ |

३. प्रश्नाध्यायस्तृतीयः —

| | | | | | |
|---|-----|-----|-----|-----|------|
| अथ जयस्य शास्त्रप्रेयमूलान् वास्त्वाश्रयानन्यांश्च विविधान् | | | | | |
| अर्थानधिकृत्य प्रश्नः | ... | ... | ... | ... | ५-१० |

विषयः

पृष्ठम्

४. महदादिसर्गाध्यायश्चतुर्थः—

| | |
|---|----|
| जयेन जिज्ञासितानामर्थानां यथासम्भवमनुकमेण विश्वकर्मणोपदेशः | १० |
| तत्र प्रथमं महाप्रलयावस्थावर्णनम् | " |
| प्रलयावसाने ब्रह्मण आविर्भावः, सृष्टयुपकमश्च | " |
| महदहङ्कारादीनां सृष्टिः | " |
| महदादिभ्यः पञ्चमहाभूतानां स्वस्वगुणयुक्तानामाविर्भावः ... | ११ |
| भौतिकसर्गे ब्रह्मणोऽसैः सृष्टा: सुरासुरादयः | " |
| कारणजलाद् भूम्युदधिमहीधरनिष्ठगद्वीपानामुत्पत्तिप्रकारः ... | १२ |
| भूमेरधो रौरवादिनरकाणां सृष्टिः | " |
| जरायुजादीनां चतुर्णां भूतानां सृष्टिः | " |
| तत्र जरायुजानां विभागः | " |
| ग्राम्यारण्यमेदेन पुनर्द्विधा भिन्नानां तेषां विवरणम् | " |
| अण्डजस्वेदजोद्दिजानां विभागादिकम् | १३ |

५. भूवनकोशाध्यायः पञ्चमः—

| | | |
|--|-----|--------|
| भूपरिमितिः | ... | " |
| सप्तसु द्वीपेषु जम्बूद्वीपवर्णनम् | ... | १४-१८ |
| शाकद्वीपवर्णनम् | ... | १८ |
| कुशकौञ्चशालमलिगोमेदपुष्करद्वीपानां वर्णनम् ... | ... | १९ |
| लोकालोकाचलस्थितिपरिमाणादिकम् | ... | २० |
| सूर्यादीनां स्थितिर्गतिश्च | ... | २०, २१ |

६. सहदेवाधिकाराध्यायः पृष्ठः—

| | |
|---|----|
| कृतयुगे मनुष्याणामत्युक्तष्टा स्थितिः | २२ |
| कालान्तरे क्रमशस्तस्या अपकर्त्ते हेतुः | २३ |
| च्युतप्रभावानां तेषां तादात्मिकी वृत्तिः | " |
| क्रमेण रागलोभादीनामुत्पत्त्या तेषां मिथुनीभावेनावस्थानम् ... | २४ |
| तात्कालिकी लोकस्थितिः | " |
| हिमानिलादिवारणादर्थे तेषां गृहापेक्षा, गृहनिर्माणाय तैरुपात्तः प्रथमोपायश्च | २५ |

विषयः

पृष्ठम् -

७. वर्णश्रमप्रविभागाध्यायः सप्तमः —

| | | |
|---|-----|----|
| अथैवं दुःखाभिभूतानां लोकानामनुग्रहायादिराजस्य पृथोरभिषेकः | ... | २५ |
| पृथुं प्रति नरणां दुःखापनोदनप्रार्थनम् | ... | २६ |
| पृथुना कृतो वर्णविभागस्तद्वर्माश्च | ... | " |
| आश्रमविभागस्तद्वर्माश्च | ... | २७ |
| शिष्यधर्माः स्त्रीधर्माश्च | ... | " |
| सर्वेषां वृत्त्यर्थं खेटग्रामादिकल्पनम् | ... | " |

८. भूपरीक्षाध्यायोऽष्टमः —

| | | |
|---|-----|----|
| भूमेः सामान्यतो जाङ्गलादिभेदेन त्रैविध्यं, तल्लक्षणं च | ... | २८ |
| त्रिविधाया अपि भूमेः पुनर्वालिशस्वाभिन्यादिभेदेन षोडशधा | | |
| विभागस्तल्लक्षणं च. | ... | २९ |
| जनपदादिनिवेशनोचिता भूमयः | ... | ३० |
| दुर्गनिवेशनोचिता भूमयः | ... | ३१ |
| पुरनिवेशने प्रशस्ता भूमयः | ... | " |
| सर्ववर्णोचिता भूमि: | ... | " |
| तत्तद्वर्णोचिता भूमयः | ... | ३२ |
| अपरा सर्वसाधारणी भूमि: | ... | " |
| पुरादिनिवेशनेषु वर्ज्यानां भुवां लक्षणम् | ... | " |
| कृष्यमाणायां भुवि काष्ठादिदर्शने फलम् | ... | ३३ |
| अन्यानि भूपरीक्षणानि | ... | " |

९. हस्तलक्षणाध्यायो नवमः —

| | | | | | | |
|---|-----|-----|-----|-----|-----|----|
| हस्तलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | ३४ |
| हस्तदण्डनिर्माणप्रकारः | ... | ... | ... | ... | ... | ३५ |
| तदेवतानां स्थानवेधे फलम् | ... | ... | ... | ... | ... | ३६ |
| तासां स्थानविशेषेषु करधारणे फलम् | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| प्राशयादीनां त्रयाणां हस्तविशेषाणां लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | ३७ |
| पुरादीनां माने तेषां विनियोगप्रकारः | ... | ... | ... | ... | ... | " |

विषयः

पृष्ठम्

| | | | | | |
|---|-----|-----|-----|-----|----|
| मात्राकलादिकानां सामान्यमानानां लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ३७ |
| एकादीनि सद्व्यास्थानानि | ... | ... | ... | ... | ३८ |
| निमेषादीनि कालमानानि | ... | ... | ... | ... | " |

१०. पुरनिवेशाध्यायो दशमः —

| | | | | | |
|---|-----|-----|-----|-------|----|
| उत्तमाधमसध्यमपुराणां मानम् | ... | ... | ... | ... | ३९ |
| सर्वपुराणां सामान्यविधिः | ... | ... | ... | ... | " |
| उत्तमादिपुरेषु कचित् कचिद् योजनीया विशेषाः | ... | ... | ... | ... | " |
| तेषु महारथ्यादिविधानम् | ... | ... | ... | ... | " |
| वपविधानम् | ... | ... | ... | ... | ४० |
| परिखाविधानम् | ... | ... | ... | ... | " |
| वपोर्ध्वमागगतपाकारविधानम् | ... | ... | ... | ... | ४१ |
| कपिशीर्षकस्य काण्डवारिण्याश्च प्रमाणम् | ... | ... | ... | ... | " |
| अड्डालकादिविधानम् | ... | ... | ... | ... | " |
| चरिकाविधिः | ... | ... | ... | ... | " |
| पुरद्वारप्रमाणादिकम् | ... | ... | ... | ... | " |
| प्रतोल्यादिकल्पनम् | ... | ... | ... | ... | ४२ |
| जलअमविधानम् | ... | ... | ... | ... | ४३ |
| छिन्नर्कण्डीनि गर्हितानि पुराणि, तन्निवासफलं च | ... | ... | ... | ... | " |
| पुरनिवेशादिपुराणानि निवेशनस्थानस्थिकता, तद्विधौ नियोज्याः | | | | | |
| स्थपत्यादयस्थ | ... | ... | ... | ... | ४४ |
| खेटग्रामादीनां प्रमाणादिकम् | ... | ... | ... | ... | ४५ |
| उत्तमादिपुरेषु राष्ट्रेषु आमसंस्था | ... | ... | ... | ... | " |
| पुरेषु सुवर्णकारादीनां निवेशनस्थानम् | ... | ... | ... | ... | " |
| प्रपादीनां निवेशनस्थानम् | ... | ... | ... | ... | ४६ |
| बलाध्यक्षादीनां निवेशनस्थानम् | ... | ... | ... | ... | " |
| लक्ष्मीवैश्रवणयोनिवेशनस्थानादिकम् | ... | ... | ... | ... | ४७ |
| नगरारक्षकदेवतानां बाह्याभ्यन्तरभूमिषु स्थापनप्रकारादिकम् | | | | ४७—५० | |

विषयः

पृष्ठम्.

११. वास्तुत्रयविभागाध्याय एकादशः —

| | | | | |
|--|-----|-----|-----|--------|
| एकाशीतिपदवास्तौ देवतानां निवेशः पदभोगश्च | ... | ... | ... | ५०, ५१ |
| शतपदवास्तौ तासां पदभोगः | ... | ... | ... | ५२ |
| चतुष्प्रष्टिपदवास्तौ तासां पदभोगः | ... | ... | ... | " |
| सिरानयनप्रकारः | ... | ... | ... | " |

१२. नाड्यादिसिरादिविकल्पाध्यायो द्वादशः —

| | | | | |
|---|-----|-----|-----|----|
| बोडशपदवास्तौ देवतानां पदभोगः | ... | ... | ... | ५३ |
| सहस्रपदवास्तौ तासां पदभोगः | ... | ... | ... | ५४ |
| चतुष्प्रष्टिपदवृत्तवास्तुविधानम् | ... | ... | ... | " |
| शतपदवृत्तवास्तुविधानम् | ... | ... | ... | " |
| अश्रादिवास्तुषु इत्त्वास्तुगतपदविभागातिदेशः | ... | ... | ... | ५५ |
| वास्तुपुरुषाङ्कतौ मुखाद्यवयवकल्पनवचनम् | ... | ... | ... | " |
| वास्तुशरीरगतानां नाडीवंशादीनां परिगणनम् | ... | ... | ... | " |
| तत्र नाडीस्वरूपप्रदर्शनं, तत्प्रमाणं च | ... | ... | ... | " |
| वेशानुवंशमहावंशानां मर्मोपर्मर्मणोः सन्ध्यनुसन्ध्योक्त्वा स्वरूपप्रदर्शनं | | | | |
| प्रमाणं च | ... | ... | ... | " |
| तत्रद्वृहदन्त्यर्महावंशादीनां पीडने फलम् | ... | ... | ... | ५६ |

१३. मर्मवेधाध्यायस्त्रयोदशः —

| | | | | |
|---|-----|-----|-----|----|
| नगरादिषु मध्ये एकाशीतिपदेन शतपदेन च विभजनीयं वस्तु | ... | ... | ... | " |
| चतुष्प्रष्टिपदेन विभजनीयं वस्तु | ... | ... | ... | ५७ |
| एकाशीतिपदादिषु वास्तुषु मर्मादीनां स्थानानि | ... | ... | ... | " |
| द्वारभित्यादिभिर्मर्मवेदे फलम् | ... | ... | ... | " |
| द्वारमध्यादिषु द्रव्यान्तर्विद्वेषु, तेष्वनुवंशादिनिहितेषु च फलम् | ... | ... | ... | ५८ |
| वेदेऽपि केषाच्चित् कचिद् दोषाभावकथनम् | ... | ... | ... | " |

१४. पुरुषाङ्गदेवतानियष्टादिनिर्णयाध्यायश्चतुर्दशः —

| | | | | | | |
|----------------------------------|-----|-----|-----|-----|-----|----|
| पुमाङ्कतेर्वास्तोरङ्गदेवताविभागः | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| वास्तुपुरुषस्य शिरःस्थानम् | ... | ... | ... | ... | ... | ५९ |

विषयः

पृष्ठम्.

| | | | | | |
|------------------------------|-----|-----|-----|-----|-------|
| शतपदधोडशपदवास्त्वोः प्रकृतिः | ... | ... | ... | ... | ५९ |
| वास्तुदेवानां निधण्टुः | ... | ... | ... | ... | ५९-६१ |
| वास्त्ववयवविहिता वर्णाः | ... | ... | ... | ... | ६१ |

१५. राजनिवेशाध्यायः पञ्चदशः —

| | | | | | |
|---|-----|-----|-----|-----|----|
| पुरे राजवेशमनिवेशनस्थानम् | ... | ... | ... | ... | ” |
| दुर्गेषु तन्निवेशनस्थानम् | ... | ... | ... | ... | ६२ |
| उत्तमादीनां राजवेशमनां प्रमाणम् | ... | ... | ... | ... | ” |
| तेषां ज्येष्ठादिषु पुरेषु विनियोगः | ... | ... | ... | ... | ” |
| राजवेशमसन्निवेशसम्बद्धा विशेषाः | ... | ... | ... | ... | ” |
| तत्र द्वारादिनिवेशनस्थानम् | ... | ... | ... | ... | ” |
| नृपवासप्रासादनिवेशनस्थानम् | ... | ... | ... | ... | ” |
| नृपवसतियोग्याः प्रासादविशेषाः | ... | ... | ... | ... | ” |
| धर्माधिकरणकोषागारमहानसादीनां स्थानानि | ... | ... | ... | ... | ६३ |
| स्थादीनां स्थानानि | ... | ... | ... | ... | ” |
| अन्तःपुरकीडागृहकुमारीभवनादीनां स्थानानि | ... | ... | ... | ... | ” |
| अशोकवनिकास्थानम् | ... | ... | ... | ... | ” |
| झानगृहधारागृहलतागृहदारुशैलवापुष्पविश्यादीनां स्थानानि | ... | ... | ... | ... | ” |
| आयुधागारभाण्डागारयोः स्थानानि | ... | ... | ... | ... | ६४ |
| उलूसलशिलायन्त्रदारुकर्मन्तभवनादीनां स्थानानि | ... | ... | ... | ... | ” |
| पुरोधसः, अभिषेचनस्य, दानाध्यवनशान्तिकर्मणां, | | | | | |
| छत्रचामरयोश्च स्थानानि | ... | ... | ... | ... | ” |
| मन्त्रगृहस्थानम् | ... | ... | ... | ... | ” |
| अधशालास्थानम् | ... | ... | ... | ... | ” |
| राजकुमाराणां राजमातृश्च गृहस्थानम् | ... | ... | ... | ... | ” |
| कुमारविद्याधिगमशालानां स्थानम् | ... | ... | ... | ... | ” |
| शिविकाशश्यासनानां स्थानानि | ... | ... | ... | ... | ” |
| नृपद्विपानां विषाणिनां च स्थानानि | ... | ... | ... | ... | ” |
| सलिलाशयानां स्थानम् | ... | ... | ... | ... | ” |
| राजवन्धूनां पितृव्यमातुलादीनां स्थानम् | ... | ... | ... | ... | ” |

| विषयः | | | | | | पृष्ठम्. |
|---------------------------------------|-----|-----|-----|-----|-----|----------|
| सामन्तानां गृहस्थानम् | ... | ... | ... | ... | ... | ६५ |
| देवकुलस्थानम् | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| ज्योतिर्विद्यां सेनापतेश्च गृहस्थानम् | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| शास्त्रकर्मान्तस्थानम् | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| ब्रह्मस्थानविनियोगः | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| विषाणिनां स्थानान्तरप्रदर्शनादि | ... | ... | ... | ... | ... | " |

१६. वनप्रवेशाध्यायः षोडशः —

| | | | | | | |
|---|-----|-----|-----|-----|-----|----|
| द्रव्यानयनार्थं वनप्रस्थानाय विहितो नक्षत्रराश्यादिः | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| द्रव्यच्छेदनभेदनवनप्रवेशनकार्यरम्भाणां राशयः | ... | ... | ... | ... | ... | ६६ |
| वृक्षपरीक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| इमशानाद्युद्धानां, बालानां वृद्धानां च वृक्षाणां वर्जन्यीयत्वक्यनम् | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| सारद्धमाणां वयः | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| तत्र गृहकर्माहौ वृक्षवयः | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| अतदर्थे वयसि स्थितानां वृक्षाणां लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| तदर्थे वयसि स्थितेष्वपि तेषु वकरुक्षादीनां त्यजनीयत्वक्यनम् | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| कुदुम्बिनामही वृक्षाः | ... | ... | ... | ... | ... | ६७ |
| गृहकर्मण्युपादेयानामन्येषामपि वृक्षाणां सामान्यलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| गृहार्थं गर्हिता वृक्षाः | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| वृक्षप्रमाणविज्ञानम् | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| वृक्षनक्षत्रविज्ञानम् | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| वृक्षच्छेदनशान्तिप्रयोजकं स्वस्तिवाचनबलिदानादि | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| वृक्षच्छेदनविधिः | ... | ... | ... | ... | ... | ६८ |
| छित्तमानानां वृक्षाणां स्वादिनापि तद्देयोपादेयतानिर्णयप्रकारः | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| वृक्षपातादिना तज्ज्ञानम् | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| छेदारम्भे खरोष्टादीनां दर्शने फलम् | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| छेदादुत्क्षिसेष्ववक्षिसेषु च वृक्षेषु फलम् | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| छित्त्वा पातितानां वृक्षाणां भागशश्छेदने विधिः | ... | ... | ... | ... | ... | ६९ |
| गोधादिगर्भितानां तेषां लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| मण्डलगतेन तत्तद्वर्णविशेषेण गर्भस्थतत्जन्मवादीनां विज्ञानम् | ... | ... | ... | ... | ... | " |

| विषयः | | पृष्ठम् |
|---|-----|---------|
| जन्तवादिगर्भितानां वृक्षाणामुपयोजने फलम् | ... | ६९ |
| वनान्तराच्छिल्लवानीतानां तेषां परिग्रहप्रकारः | ... | " |

१७. इन्द्रध्वजनिरूपणाध्यायः संसदशः —

| | | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|----|
| इन्द्रध्वजोत्थापनसम्बद्धा कथा | ... | ... | ... | ... | ७० |
| इन्द्रध्वजस्यावश्यकता, तद्विधानप्रकारोपकमश्च | ... | ... | ... | ... | ७१ |
| इन्द्रध्वजस्योत्तमाधममध्यमानि मानानि | ... | ... | ... | ... | " |
| तस्य मूलाग्रभागयोर्मानम् | ... | ... | ... | ... | " |
| कुप्यस्य मानम् | ... | ... | ... | ... | " |
| अग्रमपीठमूलपादादीनां मानम् | ... | ... | ... | ... | ७२ |
| इन्द्रगृहनिर्माणविधिः | ... | ... | ... | ... | " |
| मल्लस्य, शक्रमातुः, कुमारीणां, कन्यकोदयादीनां च मानम् | ... | ... | ... | ... | " |
| लकटस्य सूच्याश्च मानादिकम् | ... | ... | ... | ... | " |
| मृगालीकल्पनादिकम् | ... | ... | ... | ... | ७३ |
| ध्वजयष्टीयन्त्राणां चोत्थेषणसमयः | ... | ... | ... | ... | " |
| तेषां जलाधिवासनप्रकारः | ... | ... | ... | ... | " |
| ध्वजस्थाने तेषां निवेशनक्रमः | ... | ... | ... | ... | " |
| इन्द्रप्रतिमाप्रतिष्ठा | ... | ... | ... | ... | ७४ |
| ध्वजप्रतिष्ठापनविधिः | ... | ... | ... | ... | ७५ |
| कुटन्यादियोजनम् | ... | ... | ... | ... | ७६ |
| ध्वजपट्टविधानम् | ... | ... | ... | ... | ७७ |
| शान्तिहोमविधिः | ... | ... | ... | ... | ७८ |
| यथावद्वृत्तयोर्मर्त्त्वादिना शुभाशुभपरीक्षणम् | ... | ... | ... | ... | " |
| हेमद्रव्याणामात्यसमित्खुशपुष्पप्रादीनां दुष्टत्वे फलम् | ... | ... | ... | ... | ७९ |
| बलिदानप्रकारः | ... | ... | ... | ... | " |
| शीलवृत्तविद्यावयस्सम्पन्नानां त्रास्त्राणानां सन्तर्पणम् | ... | ... | ... | ... | " |
| तैः स्वरितवाचनम् | ... | ... | ... | ... | ८० |
| प्रतिष्ठाङ्गभूतोऽभिषेकः | ... | ... | ... | ... | " |
| ध्वजदण्डसमुच्छ्रुयविधिः | ... | ... | ... | ... | " |
| सपरिकरे ध्वजदण्डे यथावदविलभितं स्वस्थानस्थिते फलम् | ... | ... | ... | ... | ८१ |

विषयः

| | | | | | पृष्ठम् |
|---|-----|-----|-----|-----|---------|
| समुच्छूतस्य शकध्वजस्य प्राच्यादिदिगाश्रयणे फलम् | ... | ... | ... | ... | ८१ |
| अमं भित्त्वा भूमौ प्रतिष्ठमाने तस्मिन् फलम् | ... | ... | ... | ... | ८२ |
| तस्य स्थानान्तरभ्रंशादिषु फलम् | ... | ... | ... | ... | " |
| रज्जुच्छेदे फलम् | ... | ... | ... | ... | " |
| इन्द्रध्वजस्य भज्ञे फलम् | ... | ... | ... | ... | " |
| छत्रादीनाभिन्दध्वजस्य वा पाते फलम् | ... | ... | ... | ... | " |
| माल्यविभूषणादीनां च्युतौ फलम् | ... | ... | ... | ... | ८३ |
| शकवेशमादीनां विशरणे फलम् | ... | ... | ... | ... | " |
| मृगालीलकटादीनां भज्ञे फलम् | ... | ... | ... | ... | " |
| ध्वजे निर्वातादीनां पाते फलम् | ... | ... | ... | ... | " |
| शकोपरि मक्षिकाभिर्मधुच्छत्रकरणे फलम् | ... | ... | ... | ... | " |
| शकपार्थं मक्षिकादीनां अमणे फलं | ... | ... | ... | ... | " |
| शकमूर्धनि इयेनादीनां सज्जे फलम् | ... | ... | ... | ... | " |
| केतौ वायसादीनां सज्जे फलम् | ... | ... | ... | ... | " |
| चित्रपटे सुराद्याकाराणां यथावत्तिवेशने फलम् | ... | ... | ... | ... | " |
| एतेषां कुट्टनपातच्छेदप्पोषादिषु फलम् | ... | ... | ... | ... | ८४ |
| चित्रपटस्य पातादिषु फलम् | ... | ... | ... | ... | " |
| ध्वजोच्छूयविधौ नरादीनां चेष्टादिभिर्मित्तावलोकनम् | ... | ... | ... | ... | " |
| तदानीं हृषिपाते फलम् | ... | ... | ... | ... | ८५ |
| उत्सवान्तिमदिवसकृत्यम् | ... | ... | ... | ... | " |
| इन्द्रस्थानभूतस्य क्षेत्रस्य मानादिकम् | ... | ... | ... | ... | " |
| क्षेत्रप्रमाणेन ध्वजायामादिकल्पनम् | ... | ... | ... | ... | " |
| प्रतिवत्सरं केतुप्रमाणस्य वर्धनम् | ... | ... | ... | ... | " |
| यन्त्रपादकुमारिकादीनां निवेशनस्थानानि | ... | ... | ... | ... | ८६ |

१८. नगरादिमंडळाद्योऽष्टादशः—

| नगरपर्यायाः | ... | ... | ... | ... | ... | " |
|---|-----|-----|-----|-----|-----|----|
| नृपाध्युषितस्य नगरस्य संज्ञा | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| शास्वानगरकर्वटनिगमग्रामसंज्ञितानां स्वरूपकथनम् | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| पत्तनपुटमेदनपङ्गीजनपदराष्ट्रशब्दितानां तत्कथनम् | ... | ... | ... | ... | ... | ८७ |

| विषयः | | | | | | | पृष्ठम् |
|------------------------------------|-----|-----|-----|-----|-----|-----|---------|
| गृहपर्यायाः | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ८७ |
| हर्म्यस्य स्वरूपनिर्देशः | ... | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| सोपानस्य „ | ... | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| अधिरोहणस्य „ | ... | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| निःश्रेप्याः „ | ... | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| काष्ठविटङ्कस्य „ | ... | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| सौधस्य „ | ... | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| अभिगुप्त्यास्यस्य | ... | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| बातायनस्य „ | ... | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| अवलोकनस्य „ | ... | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| उलोकस्य „ | ... | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| हर्म्यप्राकारस्य „ | ... | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| वितर्दिकायाः „ | ... | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| ईहामृगस्य „ | ... | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| निर्यूहस्य „ | ... | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| वलीकस्य „ | ... | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| चतुश्शालत्रिशालद्विशालैकशालानाम् „ | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ८८ |
| शालायाः „ | ... | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| वापीसंज्ञस्य „ | ... | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| गर्भगृहस्य „ | ... | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| उपस्थानाभिधस्य | ... | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| प्रासादस्य „ | ... | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| वलभ्याः „ | ... | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| अलिनदस्य „ | ... | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| वलभायाः „ | ... | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| अपवरकस्य „ | ... | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| शुद्धास्तन्य | „ | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| प्रतोल्याः „ | ... | ... | ... | ... | ... | ... | " |
| कक्षायाः „ | ... | ... | ... | ... | ... | ... | " |

| विषयः | | | | | | पृष्ठम् |
|-------------------------------|-----|-----|-----|-----|-----|---------|
| कोष्ठकस्य स्वरूपनिर्देशः | ... | ... | ... | ... | ... | ८८ |
| भित्तेः | „ | ... | ... | ... | ... | „ |
| महानसस्य | „ | ... | ... | ... | ... | „ |
| द्वारकोष्ठकस्य | „ | ... | ... | ... | ... | „ |
| प्रवेशनस्य | „ | ... | ... | ... | ... | „ |
| उदकत्रमस्य | „ | ... | ... | ... | ... | „ |
| भवनाजिरवनाजिरा- | | | | | | |
| श्रमाजिराणाम्,, | ... | ... | ... | ... | ... | „ |
| देहल्याः | „ | ... | ... | ... | ... | „ |
| द्वारपक्षस्य | „ | ... | ... | ... | ... | ८९ |
| अर्गेलार्गेलसूच्योः,, | ... | ... | ... | ... | ... | „ |
| परिघफलिहगवाक्षाणाम्,, | ... | ... | ... | ... | ... | „ |
| तोरणस्य तद्रिशेषाणां च,, | ... | ... | ... | ... | ... | „ |
| सिंहकर्णस्य | „ | ... | ... | ... | ... | „ |
| संयमनाष्ट्यस्य | „ | ... | ... | ... | ... | „ |
| मरालपालीप्रणालीप्रद्वाराणां,, | ... | ... | ... | ... | ... | „ |
| प्राकारस्य | „ | ... | ... | ... | ... | „ |
| आस्थलकाल्यस्य | „ | ... | ... | ... | ... | ९० |
| अमेध्यभूमे: | „ | ... | ... | ... | ... | „ |
| अवस्करस्य | „ | ... | ... | ... | ... | „ |
| परिसरस्य | „ | ... | ... | ... | ... | „ |
| अद्वाभिधस्य | „ | ... | ... | ... | ... | „ |
| अद्वालकस्य | „ | ... | ... | ... | ... | „ |
| अद्वाल्याः | „ | ... | ... | ... | ... | „ |
| अद्वालिकायाः,, | ... | ... | ... | ... | ... | „ |
| काष्ठप्रणाल्याः,, | ... | ... | ... | ... | ... | „ |
| धारागृहस्य | „ | ... | ... | ... | ... | „ |
| दर्पणगृहस्य | „ | ... | ... | ... | ... | „ |
| पक्षद्वारस्य | „ | ... | ... | ... | ... | „ |

| विषयः | | | | | | पृष्ठम् |
|------------------------------|-----|-----|-----|-----|-----|---------|
| गोपुरद्वारस्य स्वरूपनिर्देशः | ... | ... | ... | ... | ... | १० |
| उपकार्यायाः „ | ... | ... | ... | ... | ... | „ |
| क्षौमाद्यस्य „ | ... | ... | ... | ... | ... | „ |
| पुरीभंवरणस्य „ | ... | ... | ... | ... | ... | „ |
| उपनिषक्लस्य „ | ... | ... | ... | ... | ... | „ |
| उचानस्य „ | ... | ... | ... | ... | ... | „ |
| जलोद्यानजलवेशमनोः,, | .. | ... | ... | ... | ... | „ |
| कीडागारस्य „ | ... | ... | ... | ... | ... | ११ |
| विहारभूमेः „ | ... | ... | ... | ... | ... | „ |
| चैत्यस्य „ | ... | ... | ... | ... | ... | „ |
| सभायाः „ | ... | ... | ... | ... | ... | „ |
| गोष्ठस्य „ | ... | ... | ... | ... | ... | „ |

१९. चतुश्शालविधानाध्याय एकोनविंशः—

| | | | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|-----|----|
| एकशालादिष्टशालान्तानां गृहभेदानां | | | | | | |
| पृथक्पृथगेकीकृता सङ्ख्या | ... | ... | ... | ... | ... | „ |
| अष्टाङ्गयुक्तानां तेषां दशशाला- | | | | | | |
| न्तानां पृथक्पृथगेकीकृता सङ्ख्या | ... | ... | ... | ... | ... | „ |
| गृहद्वितययोगेन निष्पत्तानां गृहविशेषणां संख्या | ... | ... | ... | ... | ... | १२ |
| उत्तमवर्णिनां विहितानि गृहमालादी- | | | | | | |
| न्यन्यान्यष्ट वेशमानि | ... | ... | ... | ... | ... | „ |
| विप्रादिविषये चतुश्शालादीनां मानविकल्पाः | ... | ... | ... | ... | ... | „ |
| तेषु शालालिन्दादीनां प्रमाणम् | ... | ... | ... | ... | ... | १३ |
| मूषावकोसिमयोः स्वरूपकथनादिकम् | ... | ... | ... | ... | ... | „ |
| भद्रायाः संज्ञाभेदाः | ... | ... | ... | ... | ... | „ |
| प्रवहणायाः स्वरूपं फलं च | ... | ... | ... | ... | ... | १४ |
| मूषासङ्ख्याज्ञानोपयोगी प्रस्तारः | ... | ... | ... | ... | ... | „ |
| चतुश्शालगतानां मूषाभेदानां सङ्ख्या | ... | ... | ... | ... | ... | „ |
| पृथग्नेकधा निवेशितैः संवृतैर्विवृतैरप्य- | | | | | | |
| लिन्दादिभिर्गृहाणामानन्यकथनम् | ... | ... | ... | ... | ... | „ |
| प्रस्तारे एकभद्राणां विवेचनम् | ... | ... | ... | ... | ... | „ |

| विषयः | | | | | पृष्ठम् |
|---|-----|-----|-----|-----|----------|
| अष्टानामेकभद्रगृहमेदानां नामानि | ... | ... | ... | ... | ९४ |
| अष्टाविंशतिमेदानां द्विभद्रगृहाणां नामानि | ... | ... | ... | ... | ९५ |
| षट्पञ्चाशतसिभद्राणां नामानि | ... | ... | ... | ... | " |
| सप्ततेष्वतुर्भद्राणां चामानि | ... | ... | ... | ... | " |
| षट्पञ्चाशतः पञ्चभद्राणां नामानि | ... | ... | ... | ... | ९६ |
| अष्टाविंशते: पद्मभद्रमेदानां नामानि | ... | ... | ... | ... | " |
| अष्टानां सप्तभद्राणां नामानि | ... | ... | ... | ... | ९७ |
| अष्टभद्रस्य नाम | ... | ... | ... | ... | " |
| एषु मूषाविन्यासक्रमः | ... | ... | ... | ... | " |
| उक्तानामेकभद्रादीनां सर्वेषां | | | | | |
| चतुश्शालमेदानां पिण्डीकृता सङ्ख्या | ... | ... | ... | ... | " |
| कचित् कचिद् गृहविशेषेषु मूषायकासिम- | | | | | |
| योन्यसनकमादिक्रम् | ... | ... | ... | ... | " |
| अथ एकभद्रमेदेषु प्रागायत्रादिषु मूषास्थितिः | ... | ... | ... | ... | " |
| तेषां प्रत्येकं फलप्रदर्शनम् | ... | ... | ... | ... | ९८ |
| द्विभद्रमेदेषु ईरादिषु मूषास्थितिः | ... | ... | ... | ... | " |
| त्रिभद्रमेदेषु ऐन्द्रादिषु मूषास्थितिः | ... | ... | ... | ... | ९८-१०० |
| चतुर्भद्रमेदेषु कृतादिषु मूषास्थितिः | ... | ... | ... | ... | १०१-१०५ |
| पञ्चभद्रमेदेषु कानलादिषु मूषास्थितिः | ... | ... | ... | ... | १०५-१०७ |
| षट्भद्रमेदेषु किञ्चरादिषु मूषास्थितिः | ... | ... | ... | ... | १०७, १०८ |
| सप्तभद्रमेदेषु भाण्डीरादिषु मूषास्थितिः | ... | ... | ... | ... | १०८ |
| अष्टभद्रे सर्वतोभद्रास्ये मूषास्थितिः | ... | ... | ... | ... | " |

२०. निष्ठोच्चादिफलाध्यायो विशः —

| | | | | | |
|---|-----|-----|-----|-----|-----|
| अग्रपृष्ठशब्दयोः परिभाषा | ... | ... | ... | ... | १०९ |
| द्रव्यायामादिभिः शालाया आधिक्ये फलम् | ... | ... | ... | ... | " |
| गृहभूमेर्वामदक्षिणादिभागेषु निष्ठोन्नतत्वे फलम् | ... | ... | ... | ... | " |
| सच्छत्रादिकं चतुर्विंशं गृहं, तत्त्वक्षणं च | ... | ... | ... | ... | " |
| गृहस्य मुखादिभागेष्वलिन्दकल्पना, तत्कलं च | ... | ... | ... | ... | " |
| तत्रैव हलकालिन्दकल्पना, तत्कलं च | ... | ... | ... | ... | ११० |

विषयः

पृष्ठम्

| | | | | |
|---|-----|-----|-----|-----|
| सुसमापिते सति वास्तुनि फलम् | ... | ... | ... | ११० |
| बहुप्रकारेषु त्रिशालेषु निन्यौ प्रकारौ | ... | ... | ... | " |
| तत्रैव घन्यौ प्रकारौ | ... | ... | ... | १११ |
| तेषां चतुर्णां नामानि | ... | ... | ... | " |
| सिद्धार्थादीनां पण्णां द्विशालवेशमनां स्वरूपं फलं च | ... | ... | ... | " |
| सप्तशालेषु मणिच्छन्दादीनां स्वरूपप्रकटनम् | ... | ... | ... | " |
| गृहसङ्कृदस्य स्वरूपं फलं च | ... | ... | ... | " |

२१. द्वासप्ततित्रिशाललक्षणाध्याय एकविंशः —

| | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|
| मुद्यानां चतुर्णां त्रिशालानां नामानि लक्षणं फलं च | ... | ... | ... | ११२ |
| अष्टादशानां हिरण्यनामभेदानां संज्ञाः | ... | ... | ... | " |
| तत्सङ्कृतानां सुक्षेत्रचुल्लीपक्षप्रभेदानां | | | | |
| पृथक्पृथक् नामनिर्देशः | ... | ... | ... | ११३ |
| हिरण्यनामभेदेषु जाग्नूनदहिरण्यरूपम् | | | | |
| हेमसंज्ञितानां लक्षणम् | ... | ... | ... | " |
| अवशिष्टानां कनकादीनां लक्षणम् | ... | ... | ... | ११४ |
| सुक्षेत्रभेदानां नागादीनां लक्षणम् | ... | ... | ... | " |
| चुल्लीभेदानां भुजङ्गमादीनां लक्षणम् | ... | ... | ... | ११५ |
| पक्षप्रभेदानां राक्षसादीनां लक्षणम् | ... | ... | ... | ११६ |
| पञ्चभद्रकस्वरूपम् | ... | ... | ... | " |

२२. द्विशालगृहलक्षणाध्यायो द्वाविंशः —

| | | | | |
|---|-----|-----|-----|-----|
| द्विशालगृहेषु मुद्यानां पण्णां सिद्धार्थादीनां लक्षणम् | ... | ... | ... | ११७ |
| तेषु प्रत्येकमेकादशाधा भिन्नानां सिद्धार्थयम्- | | | | |
| सूर्यदण्डवाताद्यानां, चतुर्धा भिन्नयोश्चुल्लीकाचयोश्च संज्ञाः | ... | ... | ... | ११८ |
| सिद्धार्थभेदानां वसुधारादीनां, यमसूर्यभेदानां | | | | |
| संहारादीनां च लक्षणम् | ... | ... | ... | ११९ |
| दण्डगृहभेदानां प्रचण्डादीनां, वातभेदानां | | | | |
| मरुदादीनां, चुल्लीभेदस्य रोगाद्यस्य च लक्षणम् | ... | ... | ... | १२० |
| अवशिष्टानां चुल्लीभेदानां, काचभेदान | | | | |
| छलादीनां च लक्षणम् | ... | ... | ... | १२१ |

विषयः

पृष्ठम्

२३. एकशाललक्षणाध्यायसूत्रयोर्विशः —

| | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|
| एकशालेष्वलिन्दप्रस्तारः | ... | ... | ... | १२१ |
| षोडशानां ध्रुवाध्यास्त्यानामेकशालभेदानां निर्देशदि | ... | ... | ... | १२२ |
| एष्वेव भेदेष्वलिन्दविन्याससैचित्येण निष्पत्तानां | | | | |
| रस्यनन्दश्रीधरमुदितारूप्यानामन्येषा- | | | | |
| मेकशालविशेषाणां लक्षणं फलं च | ... | ... | ... | " |
| ताहशानामेव वर्धमानाचारूप्यानां लक्षणं फलं च | ... | ... | ... | १२३ |
| पूर्वमुक्तेषु ध्रुवादिषु षोडशवेशमनु पद्दारुकल्पनया | | | | |
| रूपान्तरं प्राप्तानामन्येषां षोडशगृहभेदानां संज्ञाः | ... | ... | ... | " |
| एषामेव भेदानां शालापुरतो विन्यस्तैः पद्दारुभिरुत्य- | | | | |
| नानां षोडशगृहभेदानां संज्ञाः | ... | ... | ... | " |
| शालामध्यविन्यस्तैः पद्दारुभिरेतेभ्य उत्पत्तानां | | | | |
| षोडशगृहभेदानां संज्ञाः | ... | ... | ... | १२४ |
| शालान्तविन्यस्तपद्दार्थादिभिः प्रकारान्तरमाप- | | | | |
| नानामपरेषां षोडशवेशमनां संज्ञाः | ... | ... | ... | " |
| अनन्तरोक्तेषु गृहेषु प्रत्येकं चतुर्दिक्षु अलि- | | | | |
| न्दपरिष्कारेण प्रसूतानां षोडशगृहाणां संज्ञाः | ... | ... | ... | " |
| एवं भेदप्रभेदैर्वर्धितानामेकशालानामाहत्य सङ्ख्याकथनं | ... | ... | ... | " |
| सिद्धार्थस्थितयोर्हस्तिनीमहिष्यास्त्ययोः, दण्डगृह- | | | | |
| स्थितयोर्गावीछगल्याद्ययोश्च शालयोर्गायथं | | | | |
| मेलनेनात्र संभूतानां चतुर्णां गृहविशेषाणां | | | | |
| संज्ञाः फलं च | ... | ... | ... | " |

२४. द्वारपीठभित्तिपानादध्यायश्चतुर्विशः —

| | | | |
|--|-----|-----|-----|
| हलकारूप्यानां पञ्चदशगृहाणां संज्ञाविशेषाः लक्षणं फलं च | ... | ... | १२५ |
| प्रकृताध्याय एवोपरि वक्ष्यमाणानां विषयाणां सङ्ग्रहः | ... | ... | १२६ |
| पञ्चानां वर्गाविपानां स्वरूपकथनम् | ... | ... | " |
| तत्र सामान्यतो भित्तिलिन्दपीठद्वारोच्चायादीनां | | | |
| प्रमाणप्रदर्शनम् | ... | ... | १२७ |
| भद्रनन्दपीठसौरभपुष्करारूप्यानां चतुर्णां | | | |
| गृहविशेषाणां लक्षणं फलं च | ... | ... | १२८ |

विषयः

पृष्ठम्

| | | |
|--|---|----------|
| २५. | समस्तगुहाणां सङ्कल्पाकथनाध्यायः पञ्चविंशः — | |
| तत्र पञ्चशालानामाहत्य सङ्कल्प्या, पञ्चशालोत्पत्तिप्रकारश्च | ... | १२९ |
| अष्टानां पञ्चशालानां संज्ञाः | ... | " |
| प्रकारान्तरेण निष्पत्तानां तेषां संज्ञाः | ... | १३० |
| विभद्रादिदशभद्रान्तानां तेषां प्रत्येकं सङ्कल्प्या ... | ... | " |
| पट्शालोत्पत्तिप्रकारः | ... | १३१ |
| पौडशविधानां पट्शालानां संज्ञाः लक्षणं च | ... | " |
| अखिलवर्णिनां शुभानि पट्शालानि, तद्वेदाश्च | ... | " |
| राजोचितानि विंशतिः पट्शालानि | ... | १३२ |
| विभद्रादिद्वादशभद्रान्तानां पट्शालानां प्रत्येकं संख्या | ... | " |
| सप्तशालनिष्पत्तिः, तद्वेदाश्च | ... | १३३ |
| राजयोग्यानि सप्तशालानि | ... | १३३, १३४ |
| प्रकारान्तरेण निष्पत्तानि अन्यानि | | |
| तादृशानि सप्तशालानि | ... | १३५ |
| विभद्रादिचतुर्दशभद्रान्तानां सप्तशालानां | | |
| प्रत्येकं सङ्कल्प्या | ... | १३६ |
| अष्टशालनिष्पादनप्रकाराः | ... | १३७ |
| विभद्रादिषोडशभद्रान्तानामष्टशालानां प्रत्येकं सङ्कल्प्या | ... | " |
| तेषां सर्वेषामेकीकृता सङ्कल्प्या | ... | १३८ |
| नवशालनिष्पादनप्रकाराः | ... | " |
| विभद्रादृष्टादशभद्रान्तानां नवशालानां | | |
| पृथक्पृथक् सङ्कल्प्या | ... | १३९ |
| दशशालनिष्पादनप्रकाराः | ... | १४० |
| विभद्रादिविंशतिभद्रान्तानां दशशालानां | | |
| पृथक्पृथक् सङ्कल्प्या | ... | " |
| तेषां सर्वेषामेकीकृता सङ्कल्प्या | ... | १४१ |
| चतुर्दशालादिदशशालान्तानां सर्वेषां वेश्मनां | | |
| मूषावहनादिना निर्दिष्टाः सङ्कल्प्याः | ... | " |
| २६. आयादिनिर्णयाध्यायः पदविंशः — | | |
| प्रासादकर्मणि सूत्रपातविधिः | ... | १४२ |

| विषयः | | | | पृष्ठम् |
|---|-----|-----|-----|----------|
| प्राच्यादिदिग्मुखानां वेश्मनाभारम्भे निषिद्धा मासाः | ... | ... | ... | १४३ |
| आवे परिज्ञातव्ये क्षेत्रमानसाधननियमः | ... | ... | ... | " |
| आयानयनप्रकारः | ... | ... | ... | " |
| प्राच्यादिदिक्षूत्पज्ञानामायानां यथाक्रममु- | | | | |
| हिष्टा ध्वजादिसंज्ञाः, तेषां फलं च | ... | ... | ... | " |
| विप्रादीनां प्रशस्ता आया: | ... | ... | ... | १४४ |
| तत्त्वज्ञेवशनानि प्रति तत्तदायानां विनियोगः | ... | ... | ... | " |
| तेष्वधमानां कचिददोषत्वकथनम् | ... | ... | ... | " |
| व्यायानयनप्रकारः | ... | ... | ... | १४५ |
| समाधिकादिभेदेन त्रिप्रकारस्य व्यवस्थ्य यथा- | | | | |
| क्रममुहिष्टा: पिशाचादिसंज्ञाः | ... | ... | ... | " |
| अंशकानयनप्रकारः | ... | ... | ... | " |
| गृहादिष्वंशकस्य मुख्यत्वव्यवस्थापनम् | ... | ... | ... | " |
| अंशकत्रयस्य संज्ञाः | ... | ... | ... | " |
| गृहतारास्तसंज्ञाश्च | ... | ... | ... | " |
| वर्ज्या मध्यमाश्च ताराः | ... | ... | ... | " |
| त्रयाणां नक्षत्रगणानां संज्ञास्तदन्तर्भूतानि | | | | |
| नक्षत्राणि च | ... | ... | ... | " |
| भर्तुर्नक्षत्रगणसाम्यादिना विहितस्य गृहस्य | | | | |
| शुभमफलप्रदत्वकथनम् | ... | ... | ... | १४६ |
| गृहविघाववश्यचिन्तनीयानि षट् करणानि | ... | ... | ... | " |
| व्यादिभिः शुभैस्तैर्यशोत्तरं शुभकरत्वकथनम् | ... | ... | ... | " |
| समायव्ययादिवेश्मनां वर्जनीयत्वकथनम् | ... | ... | ... | " |
| समसप्तकादीनां गृहाणां कर्तव्यत्वोपदेशः | ... | ... | ... | " |
| षट्कोष्टकादिगृहाणां वर्जनीयत्वकथनम् | ... | ... | ... | " |
| गृहजीवितादिविज्ञानोपायादिक्रम् | ... | ... | ... | " |
| मेर्वादीनि षट् छन्दांसि तद्विन्यसनप्रकारश्च | ... | ... | ... | १४६, १४७ |
| तेभ्यो गृहमूषासङ्ख्यादिज्ञानम् | ... | ... | ... | १४८ |

विषयः

पृष्ठम्

२७. सभाष्टकाध्यायः सप्तविंशः —

| | | | | |
|--------------------------------|-----|-----|-----|-----|
| अष्टानां समानां संज्ञादिकम् | ... | ... | ... | १४८ |
| नन्दादिसंज्ञानां तासां लक्षणम् | ... | ... | ... | १४९ |

२८. गृहद्रव्यप्रमाणाध्यायोऽष्टाविंशः —

| | | | | |
|---|-----|-----|-----|-----|
| द्वारप्रमाणम् | ... | ... | ... | " |
| शकारान्तरेण तत्पर्दर्शनम् | ... | ... | ... | १५० |
| पेदापिण्डोदुम्बरद्वारशाखारूपशाखाखलवशा- | | | | |
| खादीनां प्रमाणम् | ... | ... | ... | " |
| शुभाः पञ्च द्वारशाखाः | ... | ... | ... | " |
| तलोच्छायः | ... | ... | ... | " |
| शालाप्रमाणम् | ... | ... | ... | १५१ |
| तलन्यासविधिः | ... | ... | ... | " |
| पद्मकस्तम्भविधिः | ... | ... | ... | " |
| घटपलबकस्तम्भविधिः | ... | ... | ... | " |
| कुवेरारूपस्तम्भविधिः | ... | ... | ... | १५२ |
| श्रीधरारूपस्तम्भविधिः | ... | ... | ... | " |
| तलपट्टहीरग्रहणादीनां प्रमाणम् | ... | ... | ... | " |
| प्रतिमोकादीनां लक्षणम् | ... | ... | ... | १५३ |
| मूतारूपादीनां चतुर्णां गृहच्छाद्यानां लक्षणम् | ... | ... | ... | " |
| सिंहकर्णादीनां गृहेषु वर्जनीयत्वकथनम् | ... | ... | ... | " |
| अन्येषामप्येवंविधानां निषेधः | ... | ... | ... | १५४ |

२९. शयनासनलक्षणाध्याय एकोनत्रिंशः —

| | | | | |
|---|-----|-----|-----|-----|
| शयनासनकर्मारम्भसमयः | ... | ... | ... | " |
| शयनासननिर्माणार्थं विहिता वृक्षाः | ... | ... | ... | " |
| हेमादिनद्वानां शयनासनानां श्रेष्ठत्वकथनम् | ... | ... | ... | " |
| शयनासनार्थकवृक्षादाने तत्कर्मारम्भे च | | | | |
| लक्षणीयानि निमित्तानि | ... | ... | ... | " |
| नृपादीनां शयनायाः प्रमाणम् | ... | ... | ... | १५५ |

| विषयः | | | | पृष्ठम् |
|---|--------------------------------|-----|-----|---------|
| शश्याङ्गानां विधानम् | ... | ... | ... | १५५ |
| एकद्रव्यजायाः शश्यायाः श्रेष्ठत्वं, मिश्रद्रव्यजाया | द्विदार्देशं तस्या निन्यत्वं च | ... | ... | १५६ |
| शश्यादारुसन्धानविधिः | ... | ... | ... | " |
| मध्यवृणाद्युपलक्षितस्य शश्यनासनस्य दुष्टत्वम् | ... | ... | ... | " |
| सुखिष्टत्वादिगुणयुक्तलेन तेषां निमित्तेरावश्यकता | ... | ... | ... | " |
| निष्कुटादीनां पण्णां छिद्राणां लक्षणं फलं च | ... | ... | ... | " |
| शश्यनासनद्रव्यसामान्यविधिः | ... | ... | ... | १५७ |
| आसनवलृसौ शश्योक्तदारूणामतिदेशः | ... | ... | ... | " |
| आसनाङ्गानां विधानम् | ... | ... | ... | " |
| तेषां द्रव्योपाधिकृतोत्तमादिता | ... | ... | ... | " |
| आसनालङ्घाराः | ... | ... | ... | " |
| पादुकासह्यादीनां मानम् | ... | ... | ... | १५८ |

३०. राजगृहाध्यायविधिः—

| | | | | |
|---|-----|-----|----------|---|
| उत्तमादीनां राजवेशमनां मानम् | ... | ... | ... | " |
| पृथ्वीजयप्रासादलक्षणम् | ... | ... | १५९, १६० | |
| मुक्तकोणप्रासादलक्षणम् | ... | ... | १६१ | |
| श्रीवत्सप्रासादलक्षणम् | ... | ... | १६२ | |
| सर्वतोभद्रप्रासादलक्षणम् | ... | ... | " | |
| शत्रुमर्दनास्त्रप्रासादलक्षणम् | ... | ... | १६३ | |
| राज्ञः कीडार्थानि क्षोणीविभूषणादीनि पञ्च गृहाणि | ... | ... | " | |
| अवनिशेखरप्रासादलक्षणम् | ... | ... | १६४ | |
| भुवनतिलकप्रासादलक्षणम् | ... | ... | " | |
| विलासस्तबकास्त्रप्रासादलक्षणम् | ... | ... | " | |
| कीर्तिपताकप्रासादलक्षणम् | ... | ... | १६६ | |
| भुवनमण्डनप्रासादलक्षणम् | ... | ... | " | |
| क्षोणीभूषणप्रासादलक्षणम् | ... | ... | " | |
| पृथ्वीतिलकप्रासादलक्षणम् | ... | ... | १६६ | |
| श्रीनिवासास्त्रप्रासादलक्षणम् | ... | ... | " | |

| विषयः | | | | पृष्ठम् |
|--|-----|-----|-----|---------|
| प्रतापवर्धनप्रासादलक्षणम् | ... | ... | ... | १६७ |
| लक्ष्मीविलासास्त्वप्रासादलक्षणम् | ... | ... | ... | " |
| क्षोणीभूषणादिषु पञ्चसु प्रासादेषु भूमिकासंस्था | ... | ... | ... | " |
| उक्तानां सर्वेषां प्रासादानां द्वारमानादिकम् | ... | ... | ... | १६८ |
| तुम्भिवन्याद्याः सप्त लुमाः | ... | ... | ... | " |
| मदलादीनां निषेशनस्थानादि | ... | ... | ... | " |
| राजासनमत्तवारणादीनां विधानम् | ... | ... | ... | १६९ |

३१. यन्त्रविधानाध्याय एकत्रिंशः—

| | | | | |
|---|-----|-----|-----|-----|
| इष्टदेवतावन्दनमध्यायोपकमप्रतिज्ञा च | ... | ... | ... | " |
| यन्त्रशब्दनिर्वचनम् | ... | ... | ... | १७० |
| यन्त्रबीजानि | ... | ... | ... | " |
| तत्र पक्षान्तरप्रदर्शनं, तत्खण्डनं, स्वमतस्थापनं च | ... | ... | ... | " |
| बीजशक्तिस्वभावासूत्रणम् | ... | ... | ... | " |
| तज्ज्ञानस्य सर्वार्थसाधकता | ... | ... | ... | १७१ |
| पार्थिवादीनां पदार्थानां बीजानि | ... | ... | ... | " |
| तत्त्वपदार्थेषु बीजभूतानां कार्याणि | ... | ... | ... | १७२ |
| बीजबीजभावविकल्पनानां नानात्वम् | ... | ... | ... | १७३ |
| कियानिष्पादनाधिष्ठानम् | ... | ... | ... | " |
| यन्त्रगुणाः | ... | ... | ... | " |
| तेषुकृष्टा गुणाः | ... | ... | ... | " |
| यन्त्रसाध्याः कियादयस्तद्विवरणं च | ... | ... | ... | " |
| प्रकृतग्रन्थोक्तदिशा युक्त्या सम्यङ् निष्पादितै- | | | | |
| यन्त्रैः साध्यानां विचित्राणां दिङ्मात्रप- | | | | |
| दर्शनपरो निर्देशः | ... | ... | ... | १७४ |
| तत्र प्रथमभूमिकात उपरिभूमिकासु पञ्चसु कल्पि- | | | | |
| तासु प्रतिप्रहरमैकेकभूमिकां प्रति यन्त्रेण शय्यायाः | | | | |
| प्रसर्पणम् | ... | ... | ... | १७५ |
| पुत्रिक्या नाडीप्रबोधनम् | ... | ... | ... | " |
| तोये बहिदर्शनादीन्यत्यद्गुतानि यन्त्रकार्याणि | ... | ... | ... | " |

| विषयः | | | | | पृष्ठम् |
|---|-----|-----|-----|-----|---------|
| सूर्यादिग्रहगतिप्रदर्शनपरं गोलअभ्यरणम् | ... | ... | ... | ... | १७५ |
| दारवस्य पुरुषस्यैकनाडिकैकयोजनगमनम् | ... | ... | ... | ... | " |
| तालगत्यनुसारेण नृत्यन्त्या पुत्रिकाया दीपे कीण- | | | | | |
| कीणतैलप्रक्षेपः | ... | ... | ... | ... | " |
| यन्त्रहस्तिनः प्रदीयमानभूरिवारिपानम् | ... | ... | ... | ... | " |
| यन्त्रशुकानां तालगत्या गाननर्तनादीनि | ... | ... | ... | ... | " |
| पुत्रिकाणां गजानां तुरगादीनां च ताल- | | | | | |
| गत्या बलनर्वतननर्तनादीनि | ... | ... | ... | ... | " |
| बापीकूपादितः क्षेत्रेषु यन्त्रेण जलानयनापन- | | | | | |
| यनवैचित्र्यम् | ... | ... | ... | ... | " |
| कृत्रिमाणां गजादिरूपाणां यथेच्छं निर्गमन- | | | | | |
| धावनयुद्धकरणादिकाशेषाः | ... | ... | ... | ... | " |
| स्वसुद्धिपरिकल्पितानामुकानामेषामन्येषां च | | | | | |
| यन्त्राणां घटनारीतिप्रदर्शनं प्रति ग्रन्थक- | | | | | |
| र्तुरप्रवृत्तौ कारणम् | ... | ... | ... | ... | १७६ |
| पुरातनोक्तिदिशा वक्ष्यमाणानां यन्त्राणां सु- | | | | | |
| प्रहाय वीजभूतानां भूतानां पुनः स्मारणम् | ... | ... | ... | ... | " |
| एताहशिविचित्रनानायन्त्रनिर्माणप्रावीष्यसामग्री | ... | ... | ... | ... | " |
| स्वनोद्गारियन्त्रद्वयघटना | ... | ... | ... | ... | १७७ |
| घटहमुरजादिस्वनोद्गारियन्त्राणां तत्त्वम् | ... | ... | ... | ... | " |
| अम्बरचारिविमानघटना | ... | ... | ... | ... | " |
| दुष्टगजोचाटनाय रसयन्त्रेण सिंहनादविधा- | | | | | |
| नप्रकारः | ... | ... | ... | ... | " |
| दासादिपरिजनवर्गेविना तत्कृत्यानां सर्वेषां | | | | | |
| यथावन्निर्वहणाय कल्पितस्य छ्रीपुरुष- | | | | | |
| प्रतिमायन्त्रस्य घटना | ... | ... | ... | ... | १७८ |
| अनभिमतजनप्रवेशनिरोधनाय द्वारदेशे स्था- | | | | | |
| पनीयं द्वारपालयन्त्रम् | ... | ... | ... | ... | " |
| निशि प्रविशतश्चौरस्य प्रसभघातनाय स्थापनी- | | | | | |
| यं योधयन्त्रम् | ... | ... | ... | ... | " |

विषयः

पृष्ठम्

| | | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|---------|
| दुर्गगुप्तै कीडायर्थे च युक्तया योजितैर्यन्त्रै- | | | | | |
| श्वापशतध्यादितच्छ्रुत्विधानवचनम् | ... | ... | ... | ... | १७८ |
| अथ वारियन्त्रप्रस्तावः | ... | ... | ... | ... | " |
| तत्र पातयन्त्रस्वरूपम् | ... | ... | ... | ... | " |
| उच्छ्रायसमपातयन्त्रस्वरूपम् | ... | ... | ... | ... | १७९ |
| पातसमोच्छ्राययन्त्रस्वरूपम् | ... | ... | ... | ... | " |
| उच्छ्राययन्त्रस्वरूपम् | ... | ... | ... | ... | " |
| धारागृहादिवारिगृहपञ्चकम् | ... | ... | ... | ... | " |
| तत्र धारागृहविधानम् | ... | ... | ... | ... | १७९-१८१ |
| प्रबर्धणगृहविधानम् | ... | ... | ... | ... | १८१ |
| प्राणालगृहविधानम् | ... | ... | ... | ... | १८२ |
| जलमगृहविधानम् | ... | ... | ... | ... | " |
| नन्द्यावर्तगृहविधानम् | ... | ... | ... | ... | १८३ |
| अथ रथदोलाप्रस्तावः | ... | ... | ... | ... | १८४ |
| वसन्तादयः पञ्च दोलाः | ... | ... | ... | ... | " |
| तत्र वसन्तदोलाविधानम् | ... | ... | ... | ... | " |
| मदननिवासार्थदोलाविधानम् | ... | ... | ... | ... | १८५ |
| वसन्ततिलकार्थदोलाविधानम् | ... | ... | ... | ... | " |
| विश्रमकदोलाविधानम् | ... | ... | ... | ... | १८६ |
| त्रिपुरार्थदोलाविधानम् | ... | ... | ... | ... | १८६-१८८ |
| यन्त्राध्यायविधातुरभिधानम् | ... | ... | ... | ... | १८८ |

३२. गजशालाध्यायो द्वात्रिंशः —

| | | | | | |
|----------------------------------|-----|-----|-----|-----|-----|
| सुभद्रारूप्याया गजशालाया लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | " |
| नन्दिन्यारूप्याया लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १८९ |
| सुमोगदाया लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | " |
| भद्रिकाया लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | " |
| वर्ष्यारूप्याया लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | " |
| प्रमारिकाया लक्षणं फलं च | ... | ... | ... | ... | " |

विषयः पृष्ठम्

| ३३. अश्वशालाध्यायस्त्रयस्त्रिशः— | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|
| अश्वशालनिवेशनस्थानम् | ... | ... | ... | १८९ |
| अश्वशालनिर्माणे निषिद्धा वृक्षाः, भूमयश्च | ... | ... | ... | १९० |
| निषिद्धदेशजैर्वृक्षस्तच्छालानिर्माणे फलम् | ... | ... | ... | " |
| निषिद्धभूमिषु तत्त्विवेशने फलम् | ... | ... | ... | " |
| भर्तुर्गृहपरिसरे तत्त्विवेशने स्थाननियमाः | ... | ... | ... | १९१ |
| अश्वशालाविद्यानम् | ... | ... | ... | " |
| शालायामध्यानां स्थानकल्पना | ... | ... | ... | " |
| यवसस्थानकल्पना | ... | ... | ... | " |
| खादनकोष्ठकल्पना | ... | ... | ... | १९२ |
| पादवन्धनकीलककल्पना | ... | ... | ... | " |
| शालानिर्माणाङ्गवलिहोमादिकरणकथनम् | ... | ... | ... | " |
| प्रत्यृतु शालासंस्करणविशेषाः | ... | ... | ... | " |
| बहूनां तुरगाणामवस्थापननियमाः | ... | ... | ... | " |
| अश्वरक्षाद्यर्थानामुपकरणानां संग्रहः | ... | ... | ... | " |
| प्रावृत्तुखायां शालायां तुरगवन्धनस्थानम् | ... | ... | ... | १९३ |
| अध्यानां प्राच्याभिमुख्येन वन्धनस्य सर्वस- | | | | |
| वृद्धिहेतुत्वस्थापनम् | ... | ... | ... | " |
| खानाधिवासनादिकरणे दिङ्गनियमः | ... | ... | ... | " |
| दक्षिणाभिमुखायामुत्तराभिमुखायां च शाला- | | | | |
| यामधवन्धनस्थानादिकम् | ... | ... | ... | " |
| सन्नात्यादीनामध्यानां दक्षिणापश्चिमाऽद्येयीनैर्क्रि- | | | | |
| त्याभिमुख्येन वन्धनस्य निषेधः | ... | ... | ... | १९४ |
| वायव्यशान्याभिमुख्येन वन्धनस्य निषेधः | ... | ... | ... | १९५ |
| त्राह्म्यां दिश्यनुवंशस्थाने च तद्वन्धननिषेधः | ... | ... | ... | " |
| रुणानामितरेषां च वन्धने नियमाः | ... | ... | ... | " |
| भेषजतदुपकरणारिष्टव्याधिताश्वमन्दिराणां | | | | |
| स्थानानि, चिकित्सोपकरणानि च | ... | ... | ... | " |
| उत्कानां चतुर्णां मन्दिराणां सामान्यविधिः | ... | ... | ... | " |

विषयः

पृष्ठम्

३४. अप्रयोज्यप्रयोज्याध्यायशतुर्क्षिणः —

| | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|
| राजादीनां वेशमस्वप्रयोज्यानां परिगणनम् | ... | ... | ... | १९६ |
| तेषु प्रयोज्यानां प्रदर्शनोपकमः | ... | ... | ... | १९७ |
| तत्र प्रयोज्या देवता | ... | ... | ... | " |
| द्वारेषु प्रयोज्याः प्रतीहार्यादिप्रतिकृतयः | ... | ... | ... | १९८ |
| तत्रैव निधीनां लक्ष्म्याश्च निवेशनप्रकारः | ... | ... | ... | " |
| गृहव्याधाभ्यन्तरभित्तिष्वालेष्यानां नियमाः | ... | ... | ... | " |
| वासधान्नि निवेशनीयानामालेष्यानां विधिः | ... | ... | ... | " |
| मृहभित्तीनामधोभागेषु, व्रेक्षासङ्गीतभूम्या- दिषु च प्रयोज्यानां लेष्यानां विधिः | ... | ... | ... | १९९ |
| वेशमनि प्रयोक्तव्यत्वेनोक्तानां सर्वेषां पीठ- शब्द्यासनसमादेवकुलादिष्वप्यतिदेशः | ... | ... | ... | " |

३५. शिलान्यासविध्यध्यायः पञ्चत्रिंशः —

| | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|
| शिलान्यासविधये विहितोऽयनपक्षतिथिनक्षत्रादिः | ... | ... | ... | २०० |
| प्रथमेष्टकालक्षणम् | ... | ... | ... | " |
| वर्जनीयाः शिलाः | ... | ... | ... | " |
| नन्दादिकाश्वतसः शिलास्तदेवताश्च | ... | ... | ... | " |
| वेदीप्रकल्पनम् | ... | ... | ... | " |
| नन्दाप्रतिष्ठापनविधिः | ... | ... | ... | २०१ |
| उपशिलान्यसनम् | ... | ... | ... | २०२ |
| नन्दादीनामङ्गाः, निवेशनस्थानानि च | ... | ... | ... | " |
| तासां प्रतिष्ठापनमन्त्रादिकम् | ... | ... | ... | " |
| वैदिकाः शिलाचयनमन्त्राः | ... | ... | ... | २०३ |
| विधिना स्थापितानां तासां पुनश्चालनादिषु फलम् | ... | ... | ... | " |

३६. बलिदानविध्यध्यायः पट्टत्रिंशः —

| | | | | |
|--------------------|-----|-----|-----|-----|
| मण्डलकरणम् | ... | ... | ... | २०४ |
| कलशन्यसनम् | ... | ... | ... | " |
| वास्तुदेवताकल्पनम् | ... | ... | ... | " |

| विषयः | पृष्ठम् |
|---------------------------------------|----------|
| अर्धनिवेदनम् | २०४ |
| विश्वकर्मणो वास्तुदेवानां च पूजाविधिः | २०४, २०५ |
| शान्तिवलिकर्मार्हाणि वास्त्वादीनि | २०६ |

३७. कीलकसूत्रपाताध्यायः सप्तत्रिंशः —

| | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|
| प्रशस्ता: कीलकवृक्षाः | ... | ... | ... | " |
| विप्रादीनां विहिताः कीलकवृक्षाः | ... | ... | ... | " |
| अशोकादीनां विनियोगे कचिद् विशेषः | ... | ... | ... | " |
| तत्तद्वर्णानधिकृत्यापरो वृक्षविधिः | ... | ... | ... | २०७ |
| वर्णानां कीलकप्रमाणम् | ... | ... | ... | " |
| तेषां सूत्रविधिः | ... | ... | ... | " |
| कीलकस्थापनप्रकारः | ... | ... | ... | " |
| तत्र कीलकस्थानपूजा | ... | ... | ... | " |
| वेदीकस्थानम् | ... | ... | ... | " |
| वेदां ब्रह्मकुम्भस्थापनम् | ... | ... | ... | २०८ |
| कीलसंस्करणम् | ... | ... | ... | " |
| परश्चाशुपकरणपूजा | ... | ... | ... | " |
| अग्निकार्यम् | ... | ... | ... | " |
| सुलभपरीक्षणम् | ... | ... | ... | " |
| पुरोहितसांबत्सरिकस्थपत्यादीनां पूजा | ... | ... | ... | २०९ |
| सूत्रपातसम्बद्धं बलिकर्म | ... | ... | ... | " |
| यथोक्तवल्यलाभे कार्यो बलिविशेषः | ... | ... | ... | " |
| विप्रपूजनम् | ... | ... | ... | " |
| स्थापनाय प्रथमशङ्कोरुद्धरणनियमः | ... | ... | ... | २१० |
| भूमौ प्रतिष्ठापितस्य तस्य परशुना हनने मन्त्राः ... | ... | ... | ... | " |
| शङ्कुमूर्धनि दातव्यानां प्रहाराणां संस्था | ... | ... | ... | " |
| हन्यमाने तस्मिन् शुभाशुभनिमित्तोपलक्षणम् | ... | ... | ... | " |
| ताडनसाधननियमः | ... | ... | ... | " |
| ताडितस्य कीलस्य प्राच्यादिषु नमने फलम् | ... | ... | ... | २११ |
| तस्मिन् कूर्चके जाते फलम् | ... | ... | ... | " |

| विषयः | | | | पृष्ठम् |
|---|-----|-----|-----|---------|
| तस्य स्फुटनहस्तञ्चशादिषु फलम् | ... | ... | ... | २११ |
| प्रथमप्रहाराष्ट्रेन कीलकस्य स्वास्थ्याभावे | | | | |
| कर्तव्यं कर्म | ... | ... | ... | " |
| शङ्कुभिषेकादि | ... | ... | ... | " |
| सूत्रबन्धनप्रकारः | ... | ... | ... | " |
| कीलकस्थानेषु बलिदानविधिः | ... | ... | ... | २१२ |
| साम्ना मन्त्रितेन कुम्भोदकेन वास्तुप्रोक्षणम् | ... | ... | ... | " |
| ३८. वास्तुसंस्थानमातृकाध्यायोऽष्टात्रिंशः— | | | | |
| चत्वारिंशतः क्षेत्रसंस्थानानां संज्ञास्तद्वि- | | | | |
| नियोगश्च | ... | ... | ... | २१३ |
| तत्र राजस्तत्कुमाराणां पुरोहितस्य सेनाप- | | | | |
| तेश्च वासोचितानि क्षेत्रसंस्थानानि | ... | ... | ... | " |
| वाहनानामन्तःपुरस्य वणिजां वैश्यानां सुवर्ण- | | | | |
| कृतां नगरगोष्ठिकानां च क्षेत्रसंस्थानानि | ... | ... | ... | " |
| पुत्राभिलाषिणां महामात्राणां मृगलुब्धकाना- | | | | |
| मेकहश्वनां गणाचार्याणां प्रजाध्यक्षाणां मा- | | | | |
| लिकानां च तत्संस्थानानि | ... | ... | ... | " |
| सौचिकवाजियोषकतक्षवन्दिमागधवेष्वादिवा- | | | | |
| दक्षानां तत्संस्थानानि | ... | ... | ... | २१४ |
| रथिनां नौचानां श्वपाकानां धान्यजीविनां | | | | |
| श्रमणानां हस्त्यारोहिणां च तत्संस्थानानि | ... | ... | ... | " |
| बन्धनामारिणां सुराकाराणां कर्मकारिणां | | | | |
| नापितानां कोशरक्षिणां वहिजीविमानो- | | | | |
| पजीविनोश्च तत्संस्थानानि | ... | ... | ... | " |
| चैत्यवृक्षवाट्यज्ञवाटादीनां क्षेत्रसंस्थानानि | | | | " |
| ३९. द्वारगुणदोषाध्याय एकोनचत्वारिंशः— | | | | |
| विप्रादिविषये गृहाणां द्वाराणां च स्थानानि | ... | ... | ... | २१५ |
| तेषु वास्तुद्वारगृहद्वाराणां निवेशननियमाः | ... | ... | ... | " |
| उत्सङ्गादयश्चत्वारो निवेशाः | ... | ... | ... | " |

| विषयः | | | | पृष्ठम् |
|--|-----|-----|-----|---------|
| तत्रोत्सङ्गलक्षणम् | ... | ... | ... | २१५ |
| हीनवाहुकादीनां लक्षणम् | ... | ... | ... | २१६ |
| त्राप्त्वा वाचासस्थानकल्पनेतु विशेषविधिः | ... | ... | ... | " |
| वर्णनामुत्तमा भूमिकासंस्था | ... | ... | ... | " |
| तेषां गृहोर्ध्वप्रमाणम् | ... | ... | ... | २१७ |
| देवादिविषये विशेषविधिः | ... | ... | ... | " |
| तत्तद्वर्णनामवरा भूमिकासंस्था | ... | ... | ... | " |
| उत्कृष्टस्य वास्तुद्वारस्य गुणाः | ... | ... | ... | " |
| द्वारकल्पनसम्बद्धा नियमाः | ... | ... | ... | २१८ |
| रथ्यादिभिर्द्वारवेदे फलम् | ... | ... | ... | २१९ |
| भिन्नदेहास्त्वयस्य वास्तुनो लक्षणं | ... | ... | ... | " |
| पूर्वादिद्वाराणां नियेशनस्थानानि | ... | ... | ... | " |
| द्वारेष्वविहितस्थाने विनियेशितेषु फलम् | ... | ... | ... | " |

४०. पीठमानास्यायश्चत्वारिंशः —

| | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|
| उत्तमाधममध्यमानां पीठानामुच्छ्रायः, विष्णवा- | | | | |
| दिषु तद्रिनियोगश्च | ... | ... | ... | २२० |
| मनुष्यवास्तुपीठानां सामान्यविधिः | ... | ... | ... | " |
| विप्रादिषु विषये पीठोत्सधाः | ... | ... | ... | २२१ |
| तेष्वेव प्रकारान्तरेण पीठविमागः | ... | ... | ... | " |

४१. चयविध्यस्याय एकचत्वारिंशः —

| | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|
| विशतिश्चयगुणाः | ... | ... | ... | " |
| तद्रिपरीताश्चयदोषा अपि विशतिरिति कथनम् | ... | ... | ... | २२२ |
| दक्षिणपश्चिमादिकुञ्जानां वहिर्मुखत्वेन विच- | | | | |
| यने फलं | ... | ... | ... | " |
| कुञ्जेषु दलितादिषु फलम् | ... | ... | ... | " |
| प्रामदक्षिणादिकर्णानां वहिर्मुखत्वेन प्रवर्तने | ... | ... | ... | " |
| फलम् | ... | ... | ... | " |
| सर्ववाहुपु चयनेन विशालीकरणे तसमिवेशः | ... | ... | ... | " |
| इहायव्ययव्यवस्था | ... | ... | ... | " |

| विषयः | | | | | पृष्ठम् |
|---|-----|-----|-----|-----|---------|
| चीयमानस्यातिसंक्षिप्तिविस्तृतत्वादिषु संज्ञा- | | | | | |
| न्तरं फलं च | ... | ... | ... | ... | २२३ |
| भित्तिचयनप्रकारः | ... | ... | ... | ... | " |
| ४२. शान्तिकर्मविध्यध्यायो द्विचत्वारिंशः — | | | | | |
| कर्णिकास्थापनम् | ... | ... | ... | ... | २२४ |
| कर्णिकासु वायसादीनामधिरोहणे फलम् | ... | ... | ... | ... | २२५ |
| तासां गृह्णादिभिर्धर्षणे शान्तिकविधिः | ... | ... | ... | ... | २२६ |
| गृहाङ्गानां मधुसञ्चयादिभ्यो रक्षणीयत्वक- | | | | | |
| यनम् | ... | ... | ... | ... | " |
| गृहदारूणामिन्द्रकीलादीनां भज्जादिषु फलम् | ... | ... | ... | ... | " |
| नवदारुभज्जादिषु प्रतिविधानम् | ... | ... | ... | ... | २२७ |
| स्थूणामङ्गकपृष्ठवंशानां भज्जे शान्तिकविधिः | ... | ... | ... | ... | " |
| वारणसङ्ग्रहस्थूणोपधिकायतुलानां भज्जे | | | | | |
| तद्विधिः | ... | ... | ... | ... | २२८ |
| कर्णिकाभ्यन्तरस्थूणाशालापादयुग- | | | | | |
| तुलापादादीनां भज्जे तद्विधिः | ... | ... | ... | ... | २२९ |
| प्रधानस्थूणाग्रवक्रतादिषु फलम् | ... | ... | ... | ... | २३० |
| विशेषतश्चतुर्णीं तुलादीनां वास्तुमुख्याङ्गानां | | | | | |
| हिंसने शान्तिकविधानकथनम् | ... | ... | ... | ... | " |
| ४३. द्वारभज्जफलाध्यायत्रिचत्वारिंशः — | | | | | |
| उक्तानां नवकर्मविधीनां ग्रामादिष्वप्यतिदेशः | ... | ... | ... | ... | " |
| नवकर्मणि खिंचत्वादिगुणयुक्तेषु तद्विहीनेषु | | | | | |
| च द्रव्येषु फलम् | ... | ... | ... | ... | २३१ |
| पूर्वादिषु नगरभागेषु रम्येषु सत्सु राज्ञः फलम् | ... | ... | ... | ... | " |
| तेष्वरम्येषु तस्य फलम् | ... | ... | ... | ... | २३२ |
| देवागारपुरद्वारादिषुत्पन्नानि | | | | | |
| शुभाशुभानि राज्ञ एवेति कथनम् | ... | ... | ... | ... | " |
| उक्तेषु स्थलविशेषेषु नवकर्मण्यूर्धवंशार्गला- | | | | | |
| दीनां मुख्याङ्गानां भज्जे राज्ञः फलम् | ... | ... | ... | ... | " |

| विषयः | | | | | पृष्ठम् |
|---|-----|-----|-----|-----|---------|
| तद्भजे ग्रामे सति फलम् | ... | ... | ... | ... | २३२ |
| दिगुत्थिते गृहोत्थिते च तस्मिन् फलभाजः | ... | ... | ... | ... | " |
| इह सर्वनिमित्तेषु शुभाशुभानां फलानां | | | | | |
| कालनियमः | ... | ... | ... | ... | " |
| वास्तुनि पुराणस्वव्यपदेशस्य कालः | ... | ... | ... | ... | " |
| नवकर्मणि निष्ठिते तुम्बिकादीनां भजे फलम् | ... | ... | ... | ... | " |
| लुमामुण्डकानुपूर्वमुण्डगोधानागपाशाख्यानां | | | | | |
| गृहद्रव्याणां भजे फलम् | ... | ... | ... | ... | २३३ |
| कपाटस्यार्गलापार्थस्य तोरणस्य वास्तुमध्यस्य | | | | | |
| सोपानस्य वेदिकायाः गवाक्षस्य पट्टस्त- | | | | | |
| म्भस्य च विनाशे फलम् | ... | ... | ... | ... | " |
| गजशुण्डायाः कपोताख्याः स्थपनीष्ठिकायाः | | | | | |
| विटक्कस्य तुलायाः शालास्तम्भस्य स्त- | | | | | |
| म्भशीर्षादेश भजे फलम् | ... | ... | ... | ... | " |
| प्रतिमोक्तभज्जवाहिन्याकाशतलकपतिच्छन्न भा- | | | | | |
| सादमण्डलवलभीनां भजे फलम् | ... | ... | ... | ... | २३४ |
| प्रलीने विलीने विनष्टे च प्रासादे फलम् | ... | ... | ... | ... | " |
| पूर्वोक्तेषु गृहावयवेषु ग्निघत्वादिगुणवि- | | | | | |
| शिष्टेषु फलम् | ... | ... | ... | ... | " |
| कर्णिकाभ्यन्तरस्थूणाशालापादहानौ फलम् | ... | ... | ... | ... | " |
| ४४. स्थपतिलक्षणाध्यायश्चतुश्चत्वारिंशः — | | | | | |
| स्थपतेलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | २३५ |
| वास्तुशास्त्रस्याष्टाङ्गानि | ... | ... | ... | ... | " |
| स्थपतेः कृत्यविशेषाः | ... | ... | ... | ... | " |
| शास्त्रमविज्ञाय प्रयोक्तुः स्थपतेर्धार्तः | ... | ... | ... | ... | " |
| अविदुयः स्थपतेर्निन्दा | ... | ... | ... | ... | " |
| केवलशास्त्रज्ञस्य केवलकर्मज्ञस्य वा तस्य प्रयो- | | | | | |
| गकाले सम्पदमाना दोषाः | ... | ... | ... | ... | " |
| कर्मविदः स्थपतेलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | " |

| विषयः | पृष्ठम् |
|--|---------|
| शास्त्रकर्मसामर्थ्ये विद्यमानेऽपि प्रज्ञाभावे तस्य | |
| सम्भाव्यमाना दोषाः | २३५ |
| प्रज्ञावत् एव तस्य सर्वकर्मनिर्वहणक्षमत्वस्थापनम् | २३६ |
| सर्वेषु स्थपतिगुणेषु सत्स्वपि शीलाभावे कर्म- | |
| वैफल्यस्य विपरीतफलोपनमनस्य च निरूपणम् | " |
| आलेख्याद्यष्टविधकर्मविज्ञानस्याप्यावद्यकता | " |

४१. अष्टाङ्गलक्षणाध्यायः पञ्चचत्वारिंशः —

| | |
|---|-----|
| स्थापत्याष्टाङ्गविवरणम् | २३७ |
| नृपालस्थपतेर्गुणाः | " |
| अङ्गेषु सप्तमस्य यज्ञशालामानस्य प्रयोगः | " |
| तत्र यज्ञशालानिवेशनविधिः | " |
| यज्ञमानकुटीप्रमाणादिकम् | २३८ |
| प्रावृंशपारिकल्पनम् | " |
| प्रक्रमनिवेशनविधिः | " |
| वेदीकल्पनम् | " |
| होमस्थानकल्पनम् | " |
| यज्ञमानस्थानकल्पनम् | " |
| कोटिहोमलक्षहोमस्थानादि | " |
| सर्वाङ्गेषु याज्ञिकाङ्गस्य प्राशस्त्यम् | २३९ |
| यज्ञभूमिमापने विहितं वास्तुपदम् | " |
| अष्टमस्य राजशिविरनिवेशाद्यस्याङ्गस्य निरूपणम् | " |
| तत्र शिविराणामाकृतिविशेषाः | " |
| शिविरद्वारसङ्क्षया | " |
| रथ्याप्रमाणम् | " |
| नरपतेः स्थानम् | " |
| मन्त्रपुरोहितबलाध्यक्षान्तः — | |
| पुरभाण्डागाराणां स्थानानि | " |
| अध्यानां दन्तिनां च स्थानानि | " |

| विषयः | | | | पृष्ठम् |
|--|-----|-----|-----|---------|
| परिखाप्रमाणम् | ... | ... | ... | २३९ |
| शिविरस्थानमापनोचितं वास्तुपदम् | ... | ... | ... | " |
| अष्टमाङ्गेऽवशिष्टस्य दुर्गकर्मणो निरूपणप्रारम्भः | ... | ... | ... | " |
| तत्र वदविधानां दुर्गाणां संज्ञाः | ... | ... | ... | २४० |
| तेषु प्रशस्तं दुर्गम् | ... | ... | ... | " |
| दुर्गस्थानविभाजनाहैं वास्तुपदम् | ... | ... | ... | " |
| हर्ष्यप्रमाणादिकम् | ... | ... | ... | " |
| रथ्योपरथ्याद्वाराणां प्रमाणानि | ... | ... | ... | " |
| दुर्गेश्वरप्रासादानां स्थानानि | ... | ... | ... | " |
| दुर्गरक्षार्थी स्थाप्यानां वीराणां लक्षणम् | ... | ... | ... | " |
| अन्तःपुरादीनामपि तत्र निवेशनीयत्वकथनम् | ... | ... | ... | " |

४६. तोरणभङ्गादिशान्तिकाध्यायः पृचत्वारिंशः —

| | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|
| तोरणभङ्गप्लोषादिषु दोषाः, तत्प्रश्नमनविषिष्ठ | ... | ... | ... | २४१ |
| आसादं गृहं वा प्रविष्टाः सन्तो दोषसूचकाश्र- | | | | |
| तुर्विधाः कपोताः, तत्प्रवेशफलं च | ... | ... | ... | २४२ |
| कपोतप्रवेशदोषप्रश्नमनार्थो विधिः | ... | ... | ... | २४३ |

४७. वेदीलक्षणाध्यायः सप्तत्वारिंशः —

| | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|
| चतुर्विधानां वेदीनां संज्ञाः तद्विनियोगश्च | ... | ... | ... | २४४ |
| तत्र सर्वतोमद्रालक्षणम् | ... | ... | ... | " |
| श्रीधरीलक्षणम् | ... | ... | ... | " |
| पश्चिनीलक्षणम् | ... | ... | ... | " |
| चतुरश्रालक्षणम् | ... | ... | ... | " |
| सर्ववेदीगता विशेषाः | ... | ... | ... | " |
| तास्विष्टकाचयनविध्यादि | ... | ... | ... | " |
| स्तम्भविन्यसनविधिः | ... | ... | ... | २४५ |
| स्तम्भस्थापनाङ्गं देवतापूजादिकम् | ... | ... | ... | " |

४८. गृहदोषनिरूपणाध्यायोऽष्टत्वारिंशः —

| | | | | |
|-----------|-----|-----|-----|---|
| भूषुवफलम् | ... | ... | ... | " |
|-----------|-----|-----|-----|---|

विषयः

| | | | | | पृष्ठम् |
|--|-----|-----|-----|-----|---------|
| गृहविधौ वर्ज्या भूमयः | ... | ... | ... | ... | २४६ |
| चैत्रादिमासेषु निर्मितानां गृहाणां फलम् | ... | ... | ... | ... | ” |
| कीलादीनां स्थानम् | ... | ... | ... | ... | ” |
| तच्छिद्मूढेषु वेशम् फलम् | ... | ... | ... | ... | ” |
| पुरे प्रासादादीनां निवेशनस्थानम् | ... | ... | ... | ... | ” |
| बलितादीनि चतुर्विधानि दुष्टगृहाणि | ... | ... | ... | ... | ” |
| तेषां लक्षणं फलं च | ... | ... | ... | ... | ” |
| मूष्कोत्करादिभिर्दृष्टानां भुवां वर्जनीयत्वकथनम् | ... | ... | ... | ... | ” |
| तासु वास्तुनिवेशने फलम् | ... | ... | ... | ... | ” |
| वेशमस्वनिष्ठो मुख्यायामः | ... | ... | ... | ... | ” |
| मानुषशालायां मूषालिन्दयोरावश्यकता, देवा- | | | | | |
| गारशालायां तदाभावश्य | ... | ... | ... | ... | २४७ |
| खादकाख्यस्य वेशमनो लक्षणं फलं च | ... | ... | ... | ... | ” |
| सशल्यादिकं मर्मदोषचतुष्यम् | ... | ... | ... | ... | ” |
| छिन्नाख्यस्य वास्त्वाङ्गस्य लक्षणं फलं च | ... | ... | ... | ... | ” |
| स्वगृहद्वयमध्येन वर्तमनो निर्वाहे फलम् | ... | ... | ... | ... | ” |
| मार्गवेषस्य स्वरूपं फलं च | ... | ... | ... | ... | ” |
| उत्सङ्गादीनां चतुर्णा प्रवेशानां स्वरूपं फलं च | ... | ... | ... | ... | ” |
| शालभेदस्य स्वरूपं फलं च | ... | ... | ... | ... | २४८ |
| विकोकिलगृहस्य स्वरूपं फलं च | ... | ... | ... | ... | ” |
| सीमाशालाप्रभिन्नेषु प्रासादादिषु फलम् | ... | ... | ... | ... | ” |
| गर्भे चन्द्रावलोकिताया निषेधः | ... | ... | ... | ... | ” |
| गवाक्षके मूषानिवेशनस्थावश्यकता | ... | ... | ... | ... | ” |
| गण्डकुक्षिपृष्ठकक्षाख्यानामङ्गानां गृहात् पृथक्करणे फलम् | ... | ... | ... | ... | ” |
| गण्डादीनां स्वरूपनिर्देशः | ... | ... | ... | ... | ” |
| स्थापितानां द्वाराणां संरोधे फलम् | ... | ... | ... | ... | ” |
| गृहश्रोत्रादीनां रोधे फलम् | ... | ... | ... | ... | ” |
| कृत्तानां गवाक्षालोकनानां चयने फलम् | ... | ... | ... | ... | २४९ |
| प्राच्यादिषु चीयमानाया भित्तेर्वहिर्गमने फलम् | ... | ... | ... | ... | ” |

| विषयः | | | | | पृष्ठम् |
|---|-----|-----|-----|-----|---------|
| चीयमानानां प्राग्दक्षिणादिकर्णानां वहिर्गमने फलम् | ... | ... | ... | ... | २४९ |
| मल्लिकाकृतिमन्दिरस्य लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | " |
| तत्रायव्यव्यवस्था | ... | ... | ... | ... | " |
| संक्षिसगृहस्य लक्षणं फलं च | ... | ... | ... | ... | " |
| मृदज्जाकृतिगृहस्य लक्षणं फलं च | ... | ... | ... | ... | " |
| मृदुमध्यगृहस्य लक्षणं फलं च | ... | ... | ... | ... | २५० |
| कर्णेषु विषमोक्तेषु फलम् | ... | ... | ... | ... | " |
| गृहमध्ये द्वारकरणनिषेधः | ... | ... | ... | ... | " |
| द्वारवेषेऽनिष्टद्रव्ययोजने च फलम् | ... | ... | ... | ... | " |
| नवेन पुराणयोजने फलम् | ... | ... | ... | ... | " |
| मिश्रजातिद्रव्यत्थेषु गृहादिषु फलम् | ... | ... | ... | ... | " |
| तत्ततस्थानेष्वधिवास्य प्रतिष्ठितानां पुनश्चालने | | | | | |
| फलम् | ... | ... | ... | ... | " |
| अन्यवास्तुच्युतस्यान्यवास्तौ योजने फलम् | ... | ... | ... | ... | " |
| देवदग्धेन द्रव्येण गृहकरणे फलम् | ... | ... | ... | ... | " |
| सर्यद्रुमध्वजच्छायानां गृहद्वारातिकमणे | | | | | |
| फलम् | ... | ... | ... | ... | " |
| ध्वजच्छायायाः स्वरूपनिर्देशः | ... | ... | ... | ... | " |
| निषिद्धा गृहताराः | ... | ... | ... | ... | " |
| निष्मोक्तत्वादिदोषयुक्तस्याग्रतरद्वारस्य करणे | | | | | |
| फलम् | ... | ... | ... | ... | " |
| नागदन्तादीनां द्वारमध्ये निवेशनस्य, तेषां | ... | ... | ... | ... | " |
| विषमस्थितेश्च निषेधः | ... | ... | ... | ... | २५१ |
| गृहे इतिहासायुक्तवृत्तान्तप्रतिरूपणस्य निषेधः ... | ... | ... | ... | ... | " |
| इन्द्रजालतुल्यानां, मिथ्याकृतानां, भीषणानां | | | | | |
| च प्रतिरूपणस्य निषेधः | ... | ... | ... | ... | " |
| स्वयमुद्घाटनं पिघानं च कुर्वतः, सशब्दस्य, | | | | | |
| पादशीतलस्य च, द्वारस्य निवेशने फलम् ... | ... | ... | ... | ... | " |
| अधोमुखत्वेन प्रत्यग्याम्याननत्वेन च द्रव्यस्य | | | | | |
| निवेशने फलम् | ... | ... | ... | ... | " |

| विषयः | | | | | पृष्ठम् |
|---|-----|-----|-----|-----|---------|
| स्तम्भद्वारस्य भित्तेश्च वैपरीत्येन निवेशनस्य निषेधः | ... | ... | ... | ... | २५१ |
| उपर्युपरिभूमिकाकल्पने, तत्र क्षणकल्पसौ च | | | | | |
| नियमाः | | | | | |
| शालाया निष्ट्रत्वे अलिन्दस्याधिक्ये च फलम् | ... | ... | ... | ... | " |
| उपरिभूमिषु द्वारनियमाः | ... | ... | ... | ... | " |
| आधमातादिद्वाराणां निवेशने फलम् | ... | ... | ... | ... | " |
| चत्वररथ्यादिभिर्द्वारवेदे फलम् | ... | ... | ... | ... | २५२ |
| हीनाधिकप्रमाणस्य द्वारस्य निवेशने फलम् | ... | ... | ... | ... | " |
| कृशादिद्वाराणां निवेशने फलम् | ... | ... | ... | ... | " |
| अन्तर्द्वारादुच्चस्य बहिर्द्वारस्य; विशङ्कटस्य च | | | | | |
| द्वारस्य निवेशने फलम् | ... | ... | ... | ... | " |
| पद्मसन्धौ द्वारमध्ये निवेशिते फलम् | ... | ... | ... | ... | " |
| तुलायामुपतुलायां च द्वारि तिर्यङ्ग्निवेशितायां | | | | | |
| फलम् | ... | ... | ... | ... | २५३ |
| जयन्त्यामनुवंशमनुप्राप्तायां फलम् | ... | ... | ... | ... | " |
| ललाटिकास्त्वयायास्तुलायाः स्वरूपं फलं च | ... | ... | ... | ... | " |
| यज्ञोपवीतिन्यास्त्वयायास्तस्याः स्वरूपं | | | | | |
| फलं च | ... | ... | ... | ... | " |
| भारतुलाया मध्यवेदे फलम् | ... | ... | ... | ... | " |
| अखिलैस्तुलाग्रैभित्तिमेदकरणस्य निषेधः | ... | ... | ... | ... | " |
| भारपटे ब्रह्मपदन्यस्ते फलम् | ... | ... | ... | ... | " |
| अयुक्तयोर्युक्तयोर्वा सन्वेर्भारपटगतसन्धौ | | | | | |
| योजने फलम् | ... | ... | ... | ... | " |
| अनुवंशमाश्रित्य भोजने शयने च कृते फलम् | ... | ... | ... | ... | " |
| नागदन्तके तिर्यक्स्थे शयनागारविन्यस्ते च | | | | | |
| फलम् | ... | ... | ... | ... | " |
| पक्षिराजघण्टाध्वजच्छत्रादीनां गृहे निषेधः | ... | ... | ... | ... | " |
| गृहनमने पञ्च हेतवः | ... | ... | ... | ... | " |
| अनुचितस्थौल्यादिकैद्रव्यैर्गृहस्य वैरूप्ये दृष्टान्तः | ... | ... | ... | ... | २५४ |

| विषयः | | | | पृष्ठम् |
|--|-----|-----|-----|---------|
| जीर्णघुणक्षतादीनां दारूणां वर्जनीयत्वकथनम् | ... | ... | ... | २५४ |
| गृहकर्मणि वर्जनीया वृक्षाः | ... | ... | ... | " |
| द्वारैर्भित्तिभिश्च मर्मपीडायां फलम् | ... | ... | ... | " |
| कायसन्धिपालादिषु मर्मस्थानस्थितेषु फलम् | ... | ... | ... | " |
| स्तम्भादिभिर्द्वारमध्ये निपीडिते फलम् | ... | ... | ... | " |
| अहदारुकाणां द्वाराणां च मध्येषु कर्णीद्रव्या- दिभिर्विद्धेषु फलम् | ... | ... | ... | २५५ |
| नागदन्तादिभिः शय्यावेषे फलम् | ... | ... | ... | " |
| गृहमध्यभागे द्वारे निवेशिते फलम् | ... | ... | ... | " |
| द्रव्येण महामर्मपीडायां फलम् | ... | ... | ... | " |
| गृहस्य शून्यतापादका दोपाः | ... | ... | ... | " |
| विमागपद्हीनेषु वास्त्वादिषु फलम् | ... | ... | ... | " |
| पुरप्रासादवेशमनां परिसरे वर्जनीया वृक्षाः | ... | ... | ... | " |
| द्रव्यायामोच्छायविस्ताराणामाधिक्ये फलम् | ... | ... | ... | " |
| वातितेषु पातितेषु च स्तम्भद्वारादिषु फलम् | ... | ... | ... | " |
| भर्तुरनिष्टफलदायिनो गृहस्य सामान्यलक्षणम् | ... | ... | ... | २५६ |

४९. रुचकादिप्रासादलक्षणाध्याय एकोनपञ्चाशः —

| | | | | |
|---|-----|-----|-----|-----|
| पुरा ब्रह्माणां सृष्टानि पञ्च विमानानि | ... | ... | ... | " |
| तेषां विनियोगः | ... | ... | ... | २५७ |
| सूर्यादीनामुपयोगायान्यान्यपि बहूनि विमानानि | | | | |
| स कल्पयामासेति वचनम् | ... | ... | ... | " |
| ब्रह्मसृष्टानां वैराजादीनां पञ्चानां विमानविशेषाणामाकृतिः | ... | ... | ... | " |
| वैराजभेदानां संज्ञाः | ... | ... | ... | " |
| कैलासभेदानां संज्ञाः | ... | ... | ... | " |
| पुष्पकमणिकत्रिविष्टपास्थविमानत्रयभेदानां संज्ञाः | ... | ... | ... | २५८ |
| श्वासुचमाघममध्यमानि मानानि | ... | ... | ... | " |
| अथ चतुर्विंशतेर्वैराजभेदानां लक्षणप्रस्तावः | ... | ... | ... | " |

| विषयः | | | | पृष्ठम् |
|---|-----|-----|-----|---------|
| तत्र रुचकलक्षणम् | ... | ... | ... | २५८ |
| चित्रकूटलक्षणम् | ... | ... | ... | २५९ |
| सिंहपञ्चरलक्षणम् | ... | ... | ... | " |
| भद्रलक्षणम् | ... | ... | ... | " |
| श्रीकूटलक्षणम् | ... | ... | ... | " |
| उष्णीषलक्षणम् | ... | ... | ... | " |
| शालास्त्र्यलक्षणम् | ... | ... | ... | " |
| गजयूथपलक्षणम् | ... | ... | ... | २६० |
| नन्द्यावर्तलक्षणम् | ... | ... | ... | " |
| अवतंसलक्षणम् | ... | ... | ... | २६१ |
| स्वस्तिकलक्षणम् | ... | ... | ... | " |
| क्षितिभूषणलक्षणम् | ... | ... | ... | २६२ |
| भूजयलक्षणम् | ... | ... | ... | २६३ |
| विजयनन्दश्रीतरुप्रमदाप्रियामिधानां चतुर्णा- | | | | |
| विमानानां लक्षणम् | ... | ... | ... | २६४ |
| व्यामिश्रहस्तिजातीयकुबेरवसुधाधराणां लक्षणम् | ... | ... | ... | २६५ |
| सर्वतोभद्रविमानस्त्रमुक्तकोणानां लक्षणम् | ... | ... | ... | " |
| अथ दशानां कैलासविमानमेदानां लक्षणप्रस्तावः | ... | ... | ... | २६६ |
| तत्र वलयदुन्दुभिप्रान्तपद्मकान्तचतुर्मुखमण्ड- | | | | |
| काष्यानां सप्तानां विमानानां लक्षणम् | ... | ... | ... | " |
| अवशिष्टानां कूर्माद्यास्त्रयानां त्रयाणां लक्षणम् | ... | ... | ... | २६७ |
| अथ दशानां पुष्पकविमानमेदानां लक्षणप्रस्तावः | ... | ... | ... | " |
| तत्र भवविशालसाम्मुद्ध्यास्त्रयानां लक्षणम् | ... | ... | ... | " |
| प्रभवशिविरागृहमुखशालद्विशालगृहराजामल- | | | | |
| विभ्वास्यानां सप्तानां लक्षणम् | ... | ... | ... | २६८ |
| चतुरश्रायतानामेषामेव सन्निवेशान्तरप्रदर्शनम् | ... | ... | ... | २६९ |
| अथ दशानां मणिकमेदानां लक्षणप्रस्तावः | ... | ... | ... | २७० |
| तत्राशोदैतिकतुङ्गचारभूत्यास्त्रयानां पद्मानां | | | | |
| विमानानां लक्षणम् | ... | ... | ... | " |

| विषयः | | | | | पृष्ठम् |
|--|-----|-----|-----|------|---------|
| निषेवकनिषेधसिंहसुप्रभास्यानां लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | २७१ |
| लोचनोत्सवविमानलक्षणम् | ... | ... | ... | | २७२ |
| अथ दशानां त्रिविष्टपविमानभेदानां लक्षण- | | | | | |
| प्रस्तावः | ... | ... | ... | ... | " |
| तत्र बज्रकनन्दनशब्दकुवामनमेखललयमहा- | | | | | |
| पद्मानां लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | " |
| हंसविमानलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | २७३ |
| व्योमचन्द्रोदयविमानयोर्लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | " |
| ५०. प्रासादशुभाशुभलक्षणाध्यायः पञ्चाशः— | | | | | |
| शुभकरणां प्रासादानां लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | " |
| तद्विपरीतलक्षणेषु प्रासादेषु प्रत्येकं फलानि | ... | ... | ... | ... | २७४ |
| ५१. आयतननिवेशाध्याय एकपञ्चाशः— | | | | | |
| उत्तमादिभेदेन त्रिधा भिन्नस्य नृपायतनस्य | | | | | |
| मानं विन्यासश्च | ... | ... | ... | ... | २७५ |
| नृपानुजीविनृपपक्षीगृहाणां देवधिष्ण्यानां च | | | | | |
| दिग्भागादिकम् | ... | ... | ... | ... | " |
| मन्त्रिसेनानीप्रतीहारपुरोधःप्रासादानां | | | | | |
| दिग्भागादिकम् | ... | ... | ... | ... | " |
| राजमातृस्वसुमातुलकुमारप्रासादानां दिग्भा- | | | | | |
| गादिकम् | ... | ... | ... | ... | " |
| द्विजमुख्यसामन्तकुञ्जरारोहमटपौरजनगृहाणां | | | | | |
| दिग्भागादिकम् | ... | ... | ... | ... | " |
| सर्वेषां गृहाणां सामान्यविधिः | ... | ... | ... | ... | २७६ |
| इतरेषां गृहाणां भूषणादिभी राजगृहैः साम्य- | | | | | |
| माधिक्यं च परिहरेदिति वचनम् | ... | ... | ... | ... | " |
| अवशिष्टस्य भूमागस्य विनियोगः | ... | ... | ... | ... | " |
| ५२. प्रासादजात्यध्यायो द्विपञ्चाशः— | | | | | |
| वैराजविमानसामान्यविधिः | ... | ... | ... | ... | २७७ |
| वैराजविमानप्रभवाः प्रासादविशेषाः | ... | ... | ... | ... | " |

विषयः

पृष्ठम्

तथाविधा अस्ते शिखरोत्तमाः प्रासादाः २७८

वैराजजन्मनां सर्वेषामेषां प्रासादानां सर्वकाम-

फलप्रदत्वकथनम् "

एष्वन्यजातिदृष्टिपेषु फलम् "

५३. जघन्यवास्तुद्वाराध्यायस्त्रिपञ्चाशः—

जघन्यवास्तुद्वारप्रमाणम् २७९

तत्र पेद्यापिण्डादीनां मानम् "

रूपशाखाखल्वशाखातुङ्गशाखानां मानम् "

तुङ्गाया बाह्यतः क्रियमाणानां शाखानां

मानम् "

तलोदयमण्टपादीनां मानम् २८०

उत्तममध्यमयोः प्रासादयोस्तलमानम् "

कुम्भिकादिपु हीनाधिकमानकल्पननिषेधः "

५४. प्रासादद्वारमानाध्यायश्चतुष्पञ्चाशः—

प्रासादद्वारमानम् "

पेद्यामानम् "

शाखामानम् "

उत्तराङ्गमानम् "

रूपशाखामानम् "

पीठबन्धमानम् "

भरणमानम् "

कपोतमानम् २८१

रथिकामानम् "

द्वारभूषा "

कपोतादिविधानम् "

परिमण्डलीकरणम् "

पद्मपत्रिकामानम् "

रसनामानम् "

जह्नामानम् "

| विषयः | | | | पृष्ठम् |
|---|-----|-----|-----|---------|
| खस्वशाखामानम् | ... | ... | ... | २८१ |
| बाद्यशाखामानम् | ... | ... | ... | " |
| द्वारशाखानां सहस्र्या | ... | ... | ... | " |
| शाखानां निर्गमविस्तारयोर्मानम् | ... | ... | ... | " |
| पिण्डोदुम्बरमानम् | ... | ... | ... | २८२ |
| तलन्यासमानम् | ... | ... | ... | " |
| सिंहमुखमानम् | ... | ... | ... | " |
| त्रिविधं पद्मपिण्डमानम् | ... | ... | ... | " |
| हीरग्रहणमानम् | ... | ... | ... | " |
| कुम्भिकोत्कालकयोर्निवेशनप्रकारः | ... | ... | ... | " |
| उत्तरपद्मतद्वीरयोर्मानम् | ... | ... | ... | " |
| तदूर्ध्वमागपरिष्करणम् | ... | ... | ... | " |
| सप्तानां लुमानां संज्ञाः | ... | ... | ... | " |
| तत्र तुम्बिनीनिष्पादनप्रकारः | ... | ... | ... | २८२ |
| अन्यासां लुमानां निष्पादनप्रकारः | ... | ... | ... | २८३ |
| पञ्चविशतिविंतानानां नामाणि | ... | ... | ... | " |
| कोलादीनां नागबन्धान्तानां सप्तानां | | | | |
| वितानानां रूपनिर्माणप्रकारः | ... | ... | ... | २८४ |
| पुष्पकादीनां विद्युन्मन्दारकान्तानां तेषां रूप- | | | | |
| निर्माणप्रकारः | ... | ... | ... | २८५ |
| दशच्छायोदयाः | ... | ... | ... | २८६ |
| सप्त वृत्तच्छायोदयाः | ... | ... | ... | " |
| छादक्षेत्रानुसारेण कल्प्याणि लुमामानाणि | ... | ... | ... | " |
| छादलुमानां गणिडकाच्छेदादिकम् | ... | ... | ... | २८७ |
| उत्तमादिप्रासादानां छादनिर्गमाः | ... | ... | ... | २८८ |
| सिंहकर्णलक्षणम् | ... | ... | ... | २८८-२९० |

शुभम् ।

॥ श्रीः ॥

श्रीगणेशाय नमः ।

महाराजाधिग्राजश्रीभोजदेवविरचितं

समराङ्गणसूत्रधारापरनामधेयं

वास्तुशास्त्रम् ।

महाममागमनो नाम प्रथमोऽयायः ।

देवः स पातु ॥ भुवनत्रयसूत्रधार-

स्त्रीं वालचन्द्रकलिकाक्षितजृष्टकोटिः ।

एतत् *समग्रमपि कारणमन्तरेण

कात्मन्योदमूलितममूल्यतः येन विष्वम् ॥ १ ॥

सुखं धनानि कुद्धिश्च सन्ततिः सर्वदा नुणाम् ।

प्रियाण्येषां तु संसिद्धैः सर्वं स्याच्छ्रुभलक्षणम् ॥ २ ॥

यच निन्दितलक्ष्मा(चैव)तदेतेषां विवातकृत् ।

अतः सर्वमुषादेवं (यद्) भवेच्छ्रुभलक्षणम् ॥ ३ ॥

देशः पुरं निवासश्च सभा वेशपासनानि च ।

यथदीदशमन्यच्च ततच्छ्रेष्ठस्करं मतम् ॥ ४ ॥

वास्तुशास्त्रादते तस्य न स्याछ्लक्षणनिश्चयः ।

तस्माछोकस्य कृपया शास्त्रमेतदुदीर्यते ॥ ५ ॥

४ भुवनत्रयसूत्रधारः लोकत्रयशिल्पी । शिल्पवैचित्र्यमुत्तरार्थे प्रतिपादयते । * समग्रं
कारणमन्तरेणपि समवाच्यसमवाचिनिमित्तात्मना त्रिप्रकारमन्योन्यविलक्षणस्वरूपं लोकप्रतीतं
कारणकलापं कार्यमात्रसाधारणं विनाशीत्यर्थः, जगद्रूपत्वं हि कार्यस्यैकं एवेश्वरं उपादानं
न निमित्तं नाशात् इति । † असूच्यत आकारोलेखपूर्वमनुव्यत ।

अथैकदा जगज्जन्महेतुप्रभुरुहासनम् ।
 पृथ्वी पृथुभयच्चान्ता चकिताक्षी समाययौ ॥ ६ ॥
 प्रणम्य प्रणतिप्रहनिखिलत्रिदशोऽवरम् ।
 सगद्वाचेति भूतधात्री पितापदम् ॥ ७ ॥
 भगवन्नहमेतेन पृथुना पृथुतेजसा ।
 उप(इ? हु)ता त्वां शरणं प्राप्ना त्रायस्व मां ततः ॥ ८ ॥
 चदन्त्यामिति मेदिन्यामाविरासीदथो पृथुः ।
 संरम्भमुक्तहृदयो ब्रह्माणं प्रणनाम च ॥ ९ ॥
 जगादैनमथ मिथ्यध्वनिगम्भीरया गिरा ।
 कुर्वस्तद्यानहंसानां पयोदध्वनिशङ्कितम् ॥ १० ॥
 त्वयास्मि जगतां नाथ ! जगतोऽधिष्ठितः कुतः ।
 स्थापितानि च भूतानि सर्वाण्यपि वशे मम ॥ ११ ॥
 तेष्वियं मम विश्वेश ! कदाचिद् वशवर्तिनी ।
 समीकरोमि पापाणजालान्यस्याः किलाधुना ॥ १२ ॥
 व्यस्तानि धनुषा तावद् गोभूत्वेयं पलायिता ।
 दोग्धुकामोऽहमप्येनां चिरमन्वगमं महीम् ॥ १३ ॥
 यत्रकापि प्रयान्त्येषा तत्र मापेव पश्यति ।
 अपश्यन्त्यन्यतस्त्राणमदृग्धा त्वामृपस्थिता ॥ १४ ॥
 अस्यां वर्णश्रमस्थानविभागश्च विशास्यते ।
 इयं च दुर्गमानेकक्षोणीश्चरकुलाकुला ॥ १५ ॥
 विशास्येऽस्यां कथं त्वेतदिति मे शङ्कितं मनः ।
 पृथुनेत्यथ विज्ञप्तो भगवानवजसम्भवः ॥ १६ ॥
 उवाच वोथयन्नेनं कुत्वा भूमिं च निर्भयाम् ।
 इयं मही महीपाल ! विधिवत् पालिता सती ॥ १७ ॥
 सस्यैरुपा(य?य)निष्पन्नैस्तत्र भोग्या भविष्यति ।
 यच्च ते स्यादभिप्रेतं स्थानादिविनिवेशनम् ॥ १८ ॥

तदेप त्रिदशाचार्यः सर्वसिद्धिप्रवर्तकः ।
 'मुतः प्रभासस्य विभोः स्वस्त्रीयथ बृहस्पतेः ॥ १९ ॥
 विश्वातिशायिधीः सर्वं विश्वकर्मा करिष्यति ।
 राजद्वासौ महेन्द्रस्य त्रिदशावमरावतीम् ॥ २० ॥
 'अन्या अप्यमुना रम्याः पुर्यो लोकभृतां कृताः ।
 त्वया क्षेत्रीकृतां मृत्ति दृष्टा साद्रिदुमामसौ ॥ २१ ॥
 सन्निवेशान् पुरग्रामनगराणां विधास्यति ।
 तद् गच्छ वत्स ! लोकानामितस्त्वं हितकाम्यया ॥ २२ ॥
 भयोजिष्ठता त्वमप्युत्तिः पृथोः प्रियकरी भव ।
 काले स्मृतः स्मृतः पुण्यो राज्ञः प्रियचिकीर्षया ॥ २३ ॥
 'त्वमप्युत्तिमेवैतद् विश्वकर्म(न) ! करिष्यसि ।
 इत्युक्त्वा गमनमुपेयुपि प्रजेशे स्वं स्थानं क्षितिभृति चाश्रिते मुदोर्व्याम् ।
 प्रालेयाचनिभृतमाजगाम खेलत्सद्वीपरिगतमाशु विश्वकर्मा ॥ २४ ॥
 इति महाराजाधिगजश्चीमोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनामिन् वास्तुशास्त्रे
 'महासमागमनो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥

अथ विश्वकर्मणः पुत्रसंवादो नाम द्वितीयोऽध्यायः ।

अथ पृष्ठे हिमगिरेः शशाङ्कशुचिरोचिपि ।
 सिद्धामरख्युभुक्तमणिमञ्जुगुहागृहे ॥ १ ॥
 विस्तीर्णसनमासीनं सर्वज्ञमयं संस्मृताः ।
 आयुर्विश्वकर्माणं चत्वारो मानसाः सुताः ॥ २ ॥
 जयो विजयसिद्धार्थौ चतुर्थशापराजितः ।
 तमुपागम्य शिरसा नेमुः प्राञ्जलयो मुनिम् ॥ ३ ॥

१. 'श्रुतप्रभावथ विभो प्रीतये ते बृहत्पतिः', २. 'मुरणामपि चान्येषां पु',
 ३. 'तवाय', ४. 'विश्वकर्मा करिष्यति' का पाठः । ५. पृथिव्याख्याना शास्त्रसंबन्धा,
 (१)प्र' ख पाठः ।

तानुवाच मुनिर्वत्स ! विदितं वो यथा पुरा ।
 'वास्तु व्रह्मा स(पर्यासर्जा)दौ विश्वमध्यस्थिलं तथा ॥ ४ ॥
 धर्म्यं कर्म तदा श्रैष्टुचप्राप्त्यै लोकावनानि च ।
 व्यवस्थाप्य चकारैष लोकपाल(श्रस्य) कल्पनाम् ॥ ५ ॥
 अहमप्यमुना विश्वनाथेनाम्बुजजनन्मना ।
 लोकानां सन्निवासार्थमादिष्ठोऽस्मि स्वयम्भुवा ॥ ६ ॥
 रम्याणि नगरोद्यानसभास्थानान्यथो मया ।
 सुरासुरोरगादीनां निर्मितान्यात्मबुद्धिः ॥ ७ ॥
 गत्वोर्वा * वैन्यनृपतेर्वत्सः ! प्रियचिकीर्षया ।
 नगरग्रामखेटादीन् करिष्यामि पृथक् पृथक् ॥ ८ ॥
 कार्ये त्वमुपिन सकले मम विश्वमृजार्पिते ।
 सम्यक्साहायकं धर्म्यं भवद्विरिति नः स्थितम् ॥ ९ ॥
 यतस्मिभुवनालोकपद्योतस्याद्विजनीपतेः ।
 सहायतां तपश्छेदे कलयन्ति मरीचयः ॥ १० ॥
 स्वयं करिष्येऽहमयो निवासाय पृथोः पुरीम् ।
 विचित्रनगरग्रामखेटांमतिमनोहराम् ॥ ११ ॥
 भवन्तः पुनरागत्य चत्वारोऽपि चतुर्दिशम् ।
 तांस्तान् निवेशान् कुर्वन्तु पृथग्जनकृताश्रयान् ॥ १२ ॥
 अन्तरेष्वव्याशोधिश्चलानां सरितां तथा ।
 विधातव्यानि दुर्गाणि३ रूपाणां भयशान्तये ॥ १३ ॥
 वर्णप्रकृतिवेशानि संस्थानानि च लक्ष्माभिः ।
 विधेयानि प्रतिग्रामं प्रतिपूः प्रतिपत्तनम् ॥ १४ ॥

१. 'वास्तुव्रह्मा सदा विश्वं व्याप्तोति सकलं जगत्', २. 'यानातिमनोहरान्'
 क. पाठः । ३. 'णि संजातभय' स्व. पाठः ।

* वैन्यनृपतेः वैनस्तुनोर्भूपतेः पृथोरित्यर्थः ।

तानित्यमात्मतनयानभिधाय सम्यक्
सारार्थभूतमपरिस्फुटतोज्जितं च ।
‘स्थानार्पितोरुभरनिर्वृतचित्तवृत्ति-
स्तृष्णीं ६ प्रभासतनयो नयविजगाम ॥ १५ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गसूत्रधारापरनार्भन वालुशास्त्रे
‘विश्वकर्मणः पुत्रसंवादो नाम द्वितीयोऽयायः ॥

अथ प्रश्नो नाम तृतीयोऽयायः ।

अथ तेषु जयो नाम वाक्यं तद् विश्वकर्मणः ।
श्रुत्वा कृताञ्जलिः प्राह स्निग्धगम्भीरस्या गिरा ॥ १ ॥
ज्ञानैकनिधिरप्यस्पान् यत् सहायतया किल ।
वृणोपि तेन न वयमात्मानं वहुमन्महे ॥ २ ॥
तदिदानीं हितार्थे नः प्रजानामपि च ३प्रभो !।
अप्रमेयप्रभावस्त्वं सर्वमारुण्यातुमर्हसि ॥ ३ ॥
पूर्वमेकार्णवे जाते जगति प्रलयं गते ।
महाभूतामरपुरीज्योतिषां कथमुद्भवः ॥ ४ ॥
किमाकारा किमाधारा किमप्रमाणा च मेदिनी ।
विस्तृतिः परिधिशास्या वाहूल्यमपि कीदृशम् ॥ ५ ॥
उच्छ्रायव्यासदीर्घत्वैः कैः केऽस्यां कुलभूतः ।
कति ख्यातानि वर्षाणि द्वीपा नद्योऽव्ययस्तथा ॥ ६ ॥

काः मूर्येन्दुग्रहक्षादिगतयश्च पृथक्पृथक् ।
भूमेरुपरि किं चैषामन्योन्यं प्रोक्तमन्तरम् ॥ ७ ॥

१. ‘स्थानार्पणातिशयनि’, २. ‘जयविजयसिद्धार्थापराजितमुतागमनो नाम’
क. पाठः । ३. ‘प्रभोः’ ख. पाठः ।

६ तृष्णीं सौनमित्यर्थः ।

किमाथारं दिवि ज्योतिश्चकं भ्रमयते च कः ।
 लोके कथं महाभूतान्युद्धाधो विभ्रति स्थितिम् ॥ ८ ॥
 युगर्थमव्यवस्थाभिः काशादौ लोकवृत्तयः ।
 कथादिमस्ततो राजां ग्रहाणां वर्णिनां कथम् ॥ ९ ॥
 कति देशाः कति भुवः पृथक्त्वेन निरूपिताः ।
 कार्यः क च कथं सञ्चिवेशो जनयदाश्रयः ॥ १० ॥
 व्यक्तचिह्नैः स्वनस्पर्शगन्धवर्णरसादिभिः ।
 काः शस्ता निन्दिताः काश पुराणामपि भूमयः ॥ ११ ॥
 कार्यं केन विवानेन भूमृत्पुरनिवेशनम् ।
 किं फलं सुनिविष्टस्मिन् दुर्निविष्टे च किं पुनः ॥ १२ ॥
 कतिप्रकारं दुर्गं च दुर्गकर्पकमथ कः ।
 किमग्रपुरसंस्थानमनिन्द्यं किं च निन्दितम् ॥ १३ ॥
 कथात्रानुक्रमविधिः प्रमाणैरूपपादितः ।
 प्राकारगोपुराद्वालपरिखावशकर्म च ॥ १४ ॥
 तपङ्गनिर्गमद्वारप्रतोल्यद्वालकादिभिः ।
 कीटशः प्रविभागश्च स्थानाचत्वरवर्त्मभिः ॥ १५ ॥
 भूमिप्रमाणसंस्थानं सीमा च क्षेत्रदिव्यपैः ।
 नगरग्रामखेदानां निवेशाः स्युः पृथक्पृथक् ॥ १६ ॥
 पुरस्याभ्यन्तरे पूर्वं केद्रव्यावयवकर्मः ।
 कस्मिन् स्थाने कथं कार्यं शक्वधजनिवेशनम् ॥ १७ ॥
 प्रतिसंवत्सरं तस्य नियुक्तस्य कथं पुनः ।
 हिताय नृपलोकानां विधातव्यो महोत्सवः ॥ १८ ॥
 शुहेषु केषु केषवत्र कासु कासु ककुप्सु च ।
 भागैर्वाहान्तरैः कैः कैः कार्याः काः काश देवताः ॥ १९ ॥
 कैः कैर्यानपरीवारवर्णरूपविभूपणैः ।
 कार्याः कैः कैः सुरा वस्त्रवयोवेषायुधवजैः ॥ २० ॥

१ 'भू' क, ग, पाठः ।

प्रमाणमितिसंस्थानसङ्कृत्यानोच्छ्रूयलक्ष्मभिः ।
प्रासादाः कस्य के वा स्युः सुरराजद्विजातिषु ॥ २१ ॥

प्राकारपरिखागुप्तं पुरे स्याद् गोपुरं क च ।
ॐ युग्ममध्याम्बुदेश्मानि क च स्युः क महानसम् ॥ २२ ॥

कोष्ठागारायुथस्थानभाण्डागारनिवेशनैः ।
व्यायामनृतसज्जीतस्त्रानधारागृहादिभिः ॥ २३ ॥

शश्यावासगृहप्रेक्षावेशमादशीश्वरः पृथक् ।
क्रीडादोलाश्रयारिष्टगृहान्तः पुरवेशभिः ॥ २४ ॥

विट्ठलभ्रमनिर्युहकक्षासंयमनादिभिः ।
अशोकवनिकाभिश्च लतागण्डपवेशभिः ॥ २५ ॥

वापीभिर्दाहगिरिभिश्चित्राभिः पुष्पवीथिभिः ।
एतैविंशेषरन्यैश्च विचित्रैविषिनाश्रयैः ॥ २६ ॥

मानोन्मानक्रियायापद्रव्याकृतिविनिर्मितः ।
निकेतननिवेशः स्याद् राजां भागाश्रितः कथम् ॥ २७ ॥

पुरोधः सैन्यभूतेषु द्वचिनतकमन्त्रिणाम् ।
कं कं च भागं प्राप्य स्युनिवेशा नृपवेशमनः ॥ २८ ॥

पुरे स्युर्दिक्षु भागेषु पदमागेषु केषु च ।
विप्रराजन्यविद्युद्रास्तज्जन्तरज्जः समम् ॥ २९ ॥

तथा कृष्णतुलाशिलकलापणरोपजीविनः ।
हिंसाश्रिताश्च पुरुषाः निवेश्याः स्युः कर्त्तव्यं च ॥ ३० ॥

निवेशाः कीटशाश्रैपां कियन्तो वा भवन्ति ते ।
शस्पन्ते केन वा केवां कैः प्रवेशजलध्वयैः ॥ ३१ ॥

धिष्यमाचं कतिरेवं द्रव्याण्याद्यानि कानि वा ।
हेतुरेषां च सर्वेषां स्याच्य कीटगनुक्रमः ॥ ३२ ॥

ॐ युग्मं मिथुनं मध्ये येषां तानि युग्ममध्यानि क्रीडागृहाणि तानि च अम्बुदेश्मानि
चेति द्रव्यसमाप्तः ।

समराङ्गणसूत्रधारे

भजन्ते योगमन्योन्यं कानि द्रव्याणि कैः सह ।
 कानि योगं न गच्छन्ति केवा कः क्व वसेत् पुमान् ॥ ३३ ॥

इष्टकाकर्म किं चेष्टं कीर्तिंता कतिथा च भूः ।
 परिकर्मक्रमस्तासां बद्धम्बुपवनेश कः ॥ ३४ ॥

गुरुवर्णिध्वजोर्वीशतज्ज्ञत्यप्रतिमा(?) पुराम् ।
 वृक्षाः के के प्रशस्ताः स्युर्युहार्थं के च गहिताः ॥ ३५ ॥

तच्छेदस्तावसंभूतं शब्ददिव्यपातगर्भजम् ।
 विज्ञायते कथं कर्तुकारकादिशुभाशुभम् ॥ ३६ ॥

प्रमाणं तक्षणच्छेदैः 'शोधितानां कथं भवेत् ।
 आहृत्य स्थापने पूर्वं दारूणां स्थानके क्व च ॥ ३७ ॥

सामान्यतोऽग्निलानां काः काश जातेर्विशेषतः ।
 प्रशस्तैर्क्षमभिर्युक्ता भूमयः परिकीर्तिः ॥ ३८ ॥

शल्योदारविधिः कीटक कीटशं भूमिकर्म च ।
 दिग्ग्रहः मूत्रणं चाधिवासनं च कथं भवेत् ॥ ३९ ॥

प्रमाणं मूलपादस्य 'शिलान्यासे च को विधिः ।
 विभज्यते कथं वेशम शालालिन्दविभाजनैः ॥ ४० ॥

मानानि कानि भित्तीनां पीडानामुच्छयाश्च के ।
 कथं तानि विकल्प्यानि वर्णानां मेखलादिभिः ॥ ४१ ॥

सप्तस्तकानां स्तम्भानां द्वारस्तम्भासनैः सह ।
 नागवीध्युपथानानां समं कण्ठविनिर्गमैः ॥ ४२ ॥

जयन्तीसह्यहतुलाकार्याणां वास्तुनोऽपि च ।
 कीटशं फलकानां च प्रमाणं परिकीर्तिम् ॥ ४३ ॥

स्वप्नानात् सर्ववर्णानां तलोच्छायास्तु कीटशाः ।
 का गवाक्षकपोतालिवेदिकाजालकक्रियाः ॥ ४४ ॥

स्थूणा 'निष्ठिकोत्सूका मृगा(ल्यो?ल्यु)पतुलास्तथा ।
 सान्तःप्राणिशिरोवंशाः किंप्रमाणाः प्रकीर्तिः ॥ ४५ ॥

१. 'साधितानां' ख. ग. पाठः । २. 'शिलान्यासे', ३. 'गिमुषि' ख. पाठः ।

छायोदयाः कियन्तः स्युर्वृत्तचलाद्यक्रमश्च कः ।
व्यश्चाणां खण्डवृत्तानां लुपानां च क्रियाः कथम् ॥ ४६ ॥

सीमालिन्दशिर(स्त्वा?स्स्वा)सां कीटशी चावलम्बना ।
कतिप्रकाराः प्रासादशिरसां च विकल्पनाः ॥ ४७ ॥

यच्चान्यदेवमादि स्यात् प्रासादभवनादिषु ।
द्रव्यकाष्ठकलासङ्गे प्रमाणं तस्य कीटशम् ॥ ४८ ॥

शालालिन्दप्रमाणानि चतुःशालेषु धामसु ।
ज्यायोमध्ययवीयस्मु मृपाभिः काष्ठकल्पना ॥ ४९ ॥

एकद्वित्रिचतुःशालान्येषां संयोगतोऽपि च ।
कथं कति च वेशमानि कल्पयन्ते प्रविभागशः ॥ ५० ॥

कथं च पोडशचतुःषष्ठ्येकाशीतयः शतम् ।
संविभागाः पदानां स्पुः कथमत्रामरमिथतिः ॥ ५१ ॥

आद्यो नवपदो वास्तुरन्त्यः साहस्रिकः कथम् ।
अङ्गप्रत्यङ्गभागेषु केषु केषु क तस्युपः ॥ ५२ ॥

कथयन्ते सुराः सर्वे वास्तोरस्य व्यवस्थिताः ।
एतद्विशिरश्चक्षुः कुशिहृन्मर्यमर्पसु ॥ ५३ ॥

जायेत पीडा द्रव्येषु सञ्चिविष्टेषु कस्य का ।
वास्त्वारम्भप्रवेशेषु यावायां स्थापनेषु च ॥ ५४ ॥

दृतस्वप्रनिमित्ताद्यः कथं ज्ञेयं शुभाशुभम् ।
दारुकियासु चित्रेषु तथा लेप्यक्रियासु च ॥ ५५ ॥

योज्यं किं कियोज्यं च किं भूयभवनादिषु ।
हस्तस्य लक्षणं मानसंज्ञा वै जायने कथम् ॥ ५६ ॥

किं हव्येष्वग्निलक्ष्म स्यात् किं च निर्युक्तलक्षणम् ।
अनुक्रमेण वर्णानां वलिकर्म च कीटशम् ॥ ५७ ॥

विधेयं विधिना केन भवने च प्रवेशनम् ।
परिते सुषुटिने जीर्णे प्लुषे वज्राशनिक्षते ॥ ५८ ॥

१. 'द्रव्यं' क. पाठः । २. 'रःकक्षकृ', ३. 'अङ्गप्रत्यङ्गयोज्यं किं किं गृ' च. पाठः ।

निष्पश्यभग्ननिभिन्नप्रशीर्णेषु च वास्तुषु ।
 मधुवल्मीकसंभूतौ प्रविरुद्धे च दारणि ॥ ५९ ॥

जायते किं फलं कुत्र प्रायश्चित्तेन को विधिः ।

इत्येवमादिकमनेकविधिं विधानं वेश्मोपगं च पृथगात्रयसंभृतं च ।
 अस्मास्वनल्पकरुणाद्वितचित्तवृद्ध्यातुर्महासि सगस्तमनुक्रमेण ॥ ६० ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
 प्रश्नाद्यायस्त्रुतीयः ॥

अथ महादिसर्गश्चतुर्थोऽध्यायः ।

जयस्येति सपाकर्ण्य विश्वकर्मा च तद् वचः ।
 जगाद् गर्जदम्भोदध्वनिगम्भीरया गिरा ॥ १ ॥

साधु वत्स ! त्वया सम्पक प्रङ्गयानिविशुद्धया ।
 प्रश्नोऽयमीरितो वास्तुविद्याद्वज्जवनभास्करः ॥ २ ॥

स त्वं निधाय प्रश्नानां समुदायममुँ हृदि ।
 वदतो मेऽवधानेन शृणु यद् ब्रह्मणोदितम् ॥ ३ ॥

इदमासीद् युगान्तान्निष्टुष्टं संवर्तकादिभिः ।
 समुत्सृजद्विरम्भांसि विश्वमेकार्णवीकृतम् ॥ ४ ॥

तपोभूते ततस्तस्मिन् भोगिष्यङ्गमाश्रितः ।
 हरिः सुष्वाप सलिले कृत्वोदरगतं जगत् ॥ ५ ॥

अथास्य नाभावम्भोजमभूत् तस्मिन्नजायत ।
 सर्वज्ञानाश्रयः श्रीमांश्चतुर्वक्त्रः सुरेश्वरः ॥ ६ ॥

स कदाचिद् दध्वेतः प्रजासृष्टि प्रति प्रभुः ।
 महान्तमसृजत् तत्र पूर्वं विश्वस्य हेतवे ॥ ७ ॥

त्रिधाहव्यक्तपेतसमान्वनोऽभूत् साच्चिकादतः ।
राजसादपि चाक्षाणि तन्मात्राणि च तामसात् ॥ ८ ॥

तेभ्यः पञ्च महाभूतान्याविरासच्चनुक्रमात् ।
व्योमादीनि धरान्तानि स्वः स्वैर्युक्तानि तैर्गुणैः ॥ ९ ॥

अधरोत्तरभावश्च सम्यगेषामयोच्यते ।
आदौ पृथ्वी ततोऽधस्तादायस्तासां च पावकः ॥ १० ॥

तस्याप्यथस्तात् पवनस्ततः खमवकाशदम् ।
भूतादिस्थं वियत् सोऽपि महता परिवारितः ॥ ११ ॥

महांश्च विशति व्यक्तं व्यक्तमव्यक्तकं पुनः ।
ग्राहयग्राहकभावेन व्यक्तो भूतसमुद्भवः ॥ १२ ॥

आधाराधार्यमावश्च यथाश्चौ च स्थितिव्ययौ ।
महाभूतानि सगुणान्येवं सृष्टा ततः प्रसुः ॥ १३ ॥

मनः पुनरसाँ सर्गे भौतिके सम्यगादधौ ।
सुरासुरान् सगन्धर्वान् यक्षरक्षांसि पञ्चगान् ॥ १४ ॥

नागान् मुनीनप्सरसो मनसा समजीजनत् ।
अर्केन्दू चक्षु (पीपो) जातौ गगनभ्रमणक्षमाँ ॥ १५ ॥

गत्रेभ्योऽपि च नक्षत्रचक्रमस्पादजायत ।
इन्द्रियेभ्यश्च पञ्चभ्योऽभूत् ताराग्रहपञ्चकम् ॥ १६ ॥

ग्रहत्वं पुनरेतेषामिन्द्रियग्रहणाद् विदुः ।
सुरेन्द्रचापचिह्नानां विद्युद्वलयशालिनाम् ॥ १७ ॥

भीमाशनिभूतां चासीत् केशेभ्योऽम्बुमुचां भवः ।
विश्वमापूरयन् कृत्स्नमाविरासीत् तदिच्छया ॥ १८ ॥

त्रिलोकीपावनस्तिर्यग्गार्णी चण्डः समीरणः ।
ततश्चण्डानिलोदृतमुपर्यकांशुतापितम् ॥ १९ ॥

१. '(सवित्री पुनरप्सरसः ? सावित्री चाष्पसरसः)' ख, ग, पाठः ।
२. 'कुवां भ' ख, पाठः ।

वायुर्भः शोषयानीतं जगाम यनतां पयः ।
 तस्योपरिष्ठादम्भोधेरथः कुण्डलितं वपुः ॥ २० ॥

विष्णोः (सच्या? शश्या)त्वमभ्येत्य धत्तेऽनन्तोऽखिलां भुवम् ।
 न तसं येषु येष्वम्भः प्रदेशेष्वकरमिभिः ॥ २१ ॥

नीतं न वानिलैः शोषं तत्र तत्राव्ययोऽभवन् ।
 महाम्भोवीचिसह्नाता विक्षिपाश्वण्डमारुतैः ॥ २२ ॥

यत्र यत्रापुरुक्यं ते तत्र तत्राद्रयोऽभवन् ।
 निश्चलत्वार्थमवनिश्चर्मवद् वितताथ तैः ॥ २३ ॥

शैलैः कीर्लिरिव स्थानेष्वाचिता तेषु तेष्वियम् ।
 वृद्धिं गताद्रिनिःप्यन्देष्वभूतां प्रविभागजा ॥ २४ ॥

निम्नगामूत ततोऽम्भोधेः कान्ता निम्नानुसारिणी ।
 मेदिन्यन्तेषु जलधिर्पर्यन्तेषु विनिर्युः ॥ २५ ॥

अम्भांसि यत्र यत्रासंस्ते द्वीपाश्वित्ररूपिणः ।
 सनिम्नगाम्बुधिदीपा विभक्ताखिलभूधरा ॥ २६ ॥

व्यक्ता वभूत कृत्स्नैवं भूषिर्भूतानि विभ्रती ।
 स चक्रे राँरवादीनां निरयाणामधः श्वितेः ॥ २७ ॥

स्वकर्मफलभुत्यर्थं स्थानं दुष्कृतकर्मणाम् ।
 जरायुजाण्डजोद्दिजस्वेदर्जैः सह स प्रभुः ॥ २८ ॥

चतुर्थेत्यस्तुजलोके भूतग्रामं चराचरम् ।
 द्वेष्या जरायुजास्तत्र मनुष्याः पशवस्तथा ॥ २९ ॥

ग्राम्याः सप्ताभवंस्तेषु सप्तारण्यकृतालयाः ।
 पुमान् गाँस्तुरगच्छागाँ मेषो वेगसरः खरः ॥ ३० ॥

ग्रामवासैकनिरताः सप्तते परिकीर्तिताः ।
 सिंहद्विषोष्ट्रमहिषा शरभो गवयः कपिः ॥ ३१ ॥

अरण्यगौचरा जीवाः सम्मते वत्स ! निर्मिताः ।
 धर्माधर्मविवेकित्वाच्छ्रेयान् ग्राम्येषु पूरुपः ॥ ३२ ॥

अरण्यचारिषु श्रेष्ठः सिंहः शार्यवलादिभिः ।
 सुपर्णा भुजगाः कीटाः येऽपि च स्युः पिरीलिकाः ॥ ३३ ॥

चतुर्भेत्यण्डजन्मानो जन्मिनस्ते प्रकीर्तिताः ।
 'क्लेद' (केप?केश) समुद्राताः कुमियूकादिजन्तवः ॥ ३४ ॥

सर्वेऽपि स्वेदजन्मानस्ते प्रजापतिना कृताः ।
 उद्दिज्जाः पञ्चधा भू(त्वा? त्था) निर्दिष्टाः स्थावराश्च ते ॥ ३५ ॥

द्रुमा वल्लयश्च गुल्माश्च वंशाः सतुण्जातयः ।
 छन्नान्तःकरणत्वं च स्वस्थानात्यागितापि च ॥ ३६ ॥

लिङ्गप्ररोहिता चैषां वैशेषिकगुणत्रयम् ।
 गायत्री भूतसंज्ञैः(पां? पा) चतुर्विंशतिपरिंका ॥ ३७ ॥

ज्ञात्वैनां पुरुपः पुण्यां भवति स्वर्गमाजनम् ।
 भुवनभूजलवद्विमरुद्दियत्यस्तु एष भवस्तव कीर्तिः ।

वसुभूतीपरिमाणविनिश्चयं कथयतः श्रुणु सम्प्रति वत्स ! मे ॥ ३८^१_२ ॥

इति महाराजाधिगुजारामोजदेवविरचिते समराङ्गासूत्रधारापरनामिन वास्तुशास्त्रे
 महदादिस(ज्ञा ? गी)ध्यायश्चतुर्थः ॥

अथ भुवनकोशः पञ्चमोऽध्यायः ।

अथो यथाक्रमं भूमेः कृत्स्नायाः कथयामि ते ।
 विष्णुमभपरिधी वत्स ! वाहुल्यमपि च स्फुटम् ॥ १ ॥

विष्णुमभोऽस्याः समुदिष्टो दग्धयोजनकोटयः ।
 लक्ष्माण्यपि च मेदिन्यास्तद्रूदेकोनविशतिः ।

विष्णुमभत्रिगुणो यावद् विष्णुमभांशश्च पञ्चमः ॥ २ ॥

१. 'क्लेशकोमुख' (?), २. 'ये' ख, ग, पाठः ।

मेदिन्याः परिभिस्तावद्योजनैः परिकीर्तिः ।
 द्वाविंशत्कोट्यः पष्टुर्लक्ष्माणि परिधिः क्षितेः ॥ ३ ॥
 अशीतिश्च सहस्राणि योजनानां ग्रकीर्तिः ।
 योजनानां सहस्राणि विंशतिर्लक्ष्मयोद्दयम् ॥ ४ ॥
 इति वाहुल्यमेतस्याः क्षितेर्वत्स ! तवोदितम् ।
 चतुर्णा सलिलादीनां भूतादेर्महतोऽपि च ॥ ५ ॥
 उच्चरोत्तरम्बुद्धींतो मानं शतगुणं विदुः ।
 तोयादिषु स्थितेयं भूत्वक्वद् वृत्तशालिनी ॥ ६ ॥
 पात्रस्थापरपात्रश्रीहारीण्यन्यान्यपि क्रमात् ।
 प्रमाणमिदमेतेपां क्षित्यादीनां तवोदितम् ॥ ७ ॥
 दीपादीनां तु पाथोधिनिवेशः पुनरुच्यते ।
 दीपानामम्बुद्धीनां च सप्तानामपि मध्यगः ॥ ८ ॥
 जम्बूद्वीपो भवेद् वृत्तः सहस्रशतविस्तृतः ।
 हिमाद्रिर्द्वेष्मकूटाख्यो निषधो नीलसंज्ञितः ॥ ९ ॥
 श्वेतः शृङ्गी च पडमी भवन्त्यस्मिन् कुलाचलाः ।
 एतस्मादुत्तरेणाद्रेस्तुपाराङ्कितमेखलात् ॥ १० ॥
 पूर्वापरायताः सर्वेऽप्यद्रयो यावदम्बुधि ।
 अन्तरा नीलनिषधौ जम्बूद्वीपस्य नाभिगः ॥ ११ ॥
 वृत्तः पुण्यजनाकीर्णः श्रीमान् मेरुमहाचलः ।
 उदग्याम्यायते मेरोः प्राग्भागे माल्यवान् गिरिः ॥ १२ ॥
 सेवितः सिद्धनारीभिरानीलनिषधायतः ।
 सुमेरोः पश्चिमेनाद्रिग्न्धर्वकुलसङ्कुलः ॥ १३ ॥
 माल्यवत्सदशायामो महीभृद् गन्धमादनः ।
 पर्वतावुभयान्तस्थौ हिमवान् शृङ्गवांस्तथा ॥ १४ ॥

१. 'वर', २. 'हारी', ३. 'पावनीषु पाथोधेनिवे' ख. ग. पाठः ।
 ४. 'समवि' क. पाठः ।

योजनानां सहस्रे देवे सार्वे स्यादुच्छ्रयस्तयोः ।
श्वेतश्च हेमकुटथेत्यन्तयोः पृथिवीधरौ ॥ १५ ॥

योजनानां सहस्रार्थमेकैकस्योच्छ्रयस्तयोः ।
निषधाचलनीलाद्रिपालयवद्वन्यमादनाः ॥ १६ ॥

सहस्रयोजनोच्छ्रायाशत्वारोऽग्नि पृथक्पृथक् ।
एतेऽष्टावपि शैलेन्द्राः सहस्रदयविस्तृताः ॥ १७ ॥

उच्छ्रयार्थमध्यापि विलगाः सह मेरुणा ।
मेरोः समुच्छ्रयोऽशीतिः सहस्राणि चतुर्युता ॥ १८ ॥

पोडशाधः सहस्राणि द्राविंशन्मूर्खिं विस्तृतिः ।
जम्बूतरुपंहान् पद्ये सुमेरोनिषधस्य च ॥ १९ ॥

दीपस्यामुष्यं यदेगाजम्बूदीप इति श्रुतिः ।
शृङ्गैर्हिमशिलानद्दैः सर्वतो हिमवानयम् ॥ २० ॥

महान्तो निवसन्त्यत्र पिशाचा यक्षगक्षसाः ।
कूर्त्तेष्येष्येष्येमकूट इत्यवर्तीयरः ॥ २१ ॥

यं सर्वतो निषेवन्ते सदा चारणगुबकाः ।
तरुणार्कंत्रभाजालप्रतिवो निषधाचलः ॥ २२ ॥

निवसन्ति सुखं तत्र शेषवातुकितकाः ।
हेमाद्वजकणिकाकारः सुमेरुणिकन्दरः ॥ २३ ॥

अत्रामराः सापसरसस्त्रशिंशद् यसन्ति ते ।
वैदृथ्येनद्दैः शिवरैर्मीलो नीलमहीयरः ॥ २४ ॥

कलयन्ति तयोनित्या यत्र ब्रह्मविषः स्थितिम् ।
श्वेतः स काञ्चनैः शृङ्गैर्गनोऽलिमिर्ष्टः ॥ २५ ॥

दोर्दर्पशालिनां यत्र निवासत्तिद्विपाम् ।
महानीलमयो वर्द्धिपिञ्चत्त्वायो वर्द्धिहान् ॥ २६ ॥

१. 'द्वे द्वे सार्वे उच्छ्रू' ख. ग. पाठः । २. 'त', ३. 'ततो नि', ४. 'स्थिताः' क पाठः ।

पितृणामालयः शृङ्गरुच्छ्रुतैः शृङ्गवान् गिरिः ।
 हिमाचलस्य याम्येन क्षाराद्विवृतमन्यतः ॥ २७ ॥

वर्ष स्याद् भारतं नाम प्रथमं कार्मुकाकृति ।
 तुपारनिलयस्याद्रेहेमकूटाचलस्य च ॥ २८ ॥

मध्ये किंपुरुषं नाम द्वितीयं वर्षमीरितम् ।
 अन्तरे हेमकूटस्य निषधस्य च भूभृतः ॥ २९ ॥

हरिवर्षमिति प्रोक्तं त्रुतीयं वर्षमुत्तमम् ।
 निषधाचलनीलाद्रिमालयवद्वन्धभूमृताम् ॥ ३० ॥

चतुर्णा मध्यगां वर्षं तुर्यमस्मिन्निलावृतम् ।
 उत्तरे नीलशैलस्य याम्ये च खेतभूमृतः ॥ ३१ ॥

पञ्चमं वर्षमत्यर्थरम्यं रम्यकसंज्ञितम् ।
 खेतशृङ्गवतोः शैलराजयोरनयोरिह ॥ ३२ ॥

मध्ये पष्टुं हिरण्यांशुरम्यं हैरण्यकाहयम् ।
 अस्पोत्तरे शृङ्गवतो याम्ये च ध्वारवासिः ॥ ३३ ॥

कुरुवर्षाभित्रं वर्षमुत्तरेण प्रचक्षते ।
 अन्तरा नीलनिषधीं प्राप्तभागे माल्यवद्विरेः ॥ ३४ ॥

भद्राश्वमृष्टम् वर्षं प्रावसमुद्रान्तमीरितम् ।
 गन्यपादनशैलस्य प्रत्यक्षं प्राक् चापराम्युषेः ॥ ३५ ॥

नवमं वर्षमाचार्याः केतुयालं प्रचक्षते ।
 इति प्रोक्तानि वर्षाणि नवामूनि मया ततः ॥ ३६ ॥

साम्यतं पुनरेतेषां प्रमाणमवधारय ।
 प्रमाणेन सहस्राणि चतुर्ख्निशब्दतुर्दिशम् ॥ ३७ ॥

योजनानामिहेन्द्रनित चतुरश्चमिलावृतम् ।
 प्राक्प्रत्यग्भागे वर्षे तस्योदय्याम्यतः समे ॥ ३८ ॥

एकत्रिंशत्सहस्राणि किञ्चित् प्राकपत्यगायते ।
 यान्युक्तानि पडन्यानि वर्षाण्येभ्योऽवराणि ॥ ३९ ॥
 तेषां नवसहस्राणि प्रत्येकं विस्तृतिर्मता ।
 वर्षे किम्पुरुषे नार्यो नराश्च पुक्षभोजनाः ॥ ४० ॥
 जीवन्त्ययुतमब्दानां जात्यजाम्बूनदत्तिषः ।
 हरिवर्षे नरा नार्यो वसन्तीक्षुरसाशिनः ॥ ४१ ॥
 सायुतं च सहस्रं ते जीवन्ति रजतत्त्विषः ।
 इलावृते नराः पश्चरागभासोद्भ्रातास्तथा ॥ ४२ ॥
 जम्बूफलरसाहाराः सपादायुतजीविनः ।
 नास्मिन् मेरुतटच्छन्ने तारकार्केन्दुरझयः ॥ ४३ ॥
 स्वाङ्गप्रभाभिः किन्त्वत्र कृतोदयोता वसन्त्यमी ।
 कैरबोदरसच्छाया भद्राष्वे साहना नराः ॥ ४४ ॥
 नीलाम्रकफलाहारा भवन्त्यत्रायुतायुषः ।
 दलत्कुबलयश्यामाः केतुमाले शरीरिणः ॥ ४५ ॥
 शरदामयुतं तेषामायुः पनसधोजिनाम् ।
 श्वेताभो रम्यके रम्ये न्यग्रोधफलभुग् जनः ॥ ४६ ॥
 हरिवर्षे इव प्रोक्तपेतस्मिन् मानमायुषः ।
 श्यामत्तिषः स्त्रियो वर्षे पुमांसश्च हिरण्यके ॥ ४७ ॥
 जीवन्त्ययुतमब्दानां सर्वेऽपि लकुचाशिनः ।
 कुरुष्वभीष्टैर्वृक्षैर्जीवन्ति स्त्रीयुता नराः ॥ ४८ ॥
 सपादमयुतं देवगर्भभा गौरकान्तयः ।
 पुण्यकर्मा वसत्येषु वर्षेषु निखिलो जनः ॥ ४९ ॥
 शोकव्याधिजरातङ्कशङ्कोन्मुक्तः सदासुखी ।
 वनैः कीर्णानि सर्वाणि कुमुमस्तवकानतैः ॥ ५० ॥
 उद्दिजाउद्दिनदीभिश्च तैस्तैस्तुङ्गश्च पादैः ।
 उद्द्वद्वीचिमालेन लावणेनाविधिना वहिः ॥ ५१ ॥

* ते तव ।

परिक्षिपोऽयमुक्तस्ते जम्बूदीपो मयाखिलः ।
 द्वादशाभ्युनिधावत्र पृथग् भूमिभूतः स्थिताः ॥ ५२ ॥
 त्रयख्यो दिशि दिशि स्फारोमिस्थगितोपलाः ।
 मैनाकश्च वलाहश्च चक्रनामा च दक्षिणे ॥ ५३ ॥
 नारदाख्यो वराहाख्यः सौमकाख्यश्च पश्चिमे ।
 उदगभागेऽपिच द्रोणकङ्कचन्द्रा इति त्रयः ॥ ५४ ॥
 धूम्रको दुन्दुभिश्चैव सार्दिकश्चेति पूर्वतः ।
 सहस्रं योजनानां ते दीर्घास्तस्यार्थमुच्छ्रिताः ॥ ५५ ॥
 मप्रास्तदर्थमभ्योश्च विस्तृताश्च धराधराः ।
 जुष्टाः सर्वे सुरः शृङ्गप्रौढिलीढविहायमः ॥ ५६ ॥
 ज्वलितापथयः कान्तविचित्रदुम्बीरुथः ।
 द्वीपाः शाककुशकौञ्चशालमल्य इति च क्रमात् ॥ ५७ ॥
 गोमेदः युक्तराख्यश्च पटमी वाश्वतः स्थिताः ।
 धीराज्यदधिमध्यश्चुरसस्वाद्वम्भसोऽर्णवाः ॥ ५८ ॥
 द्वीपान् शाकादिकानेते परिवार्य स्थिताः क्रमात् ।
 स्वदीपतुल्याः सर्वे ते प्रमाणेन यथाक्रमम् ॥ ५९ ॥
 अमी शाकादयो द्वीपा जम्बूदीपप्रमाणतः ।
 यथाक्रमं स्युद्धिगुणास्तथाभ्योनिधयोऽपिच ॥ ६० ॥
 शाके सप्ताद्रयस्तेषुदयो जलधरस्तथा ।
 नारको रैवतः श्यामो राजतोऽथांम्बिकेयकः ॥ ६१ ॥
 चतुःसाहस्रिकस्तेषां विष्कम्भोऽर्थं समुच्छ्रयः ।
 तदर्थं भूत्रदेशश्च सेवितानां सुरर्थिभिः ॥ ६२ ॥
 वृत्तानां द्वीपवत् तेषां वाश्वतोऽमूल्यनुक्रमात् ।
 वर्षाणि सञ्चिविष्टानि सप्त तानि ब्रवीमि ते ॥ ६३ ॥
 जलदाख्यं कुमारं च सुकुमारं मणीचकम् ।
 कुमुमोन्तरमोदाकीमहाद्रमवनानि च ॥ ६४ ॥

१. 'तालकु', २. 'जा' ख. पाठः । ३. 'जयः' ग. पाठः ।

कुरु विद्रुमहेमारुद्यौ द्युतिमानथ पुण्यवान् ।
 कुरुशयो हरिक्षमाभृन्मन्दरश्च कुलाचलाः ॥ ६५ ॥

विष्णुम्भोऽष्टसहस्राणि तेषां प्रत्येकमीरितः ।
 तदर्थमुच्छ्रयस्तद्दुच्छ्रयार्थमधोगमः ॥ ६६ ॥

उद्दिदं वेणुवत्संज्ञं सरालमथ लम्बनम् ।
 वर्षं श्रीमत् प्रभाकृत्त्वं कपिलं पत्रगामिधम् ॥ ६७ ॥

क्रौञ्जे क्रौञ्जोऽन्धकारश्च देवो गोविन्दवामनौ ।
 द्विविदः पुण्डरीकश्चेत्यस्मिन् सप्त कुलाद्रयः ॥ ६८ ॥

विष्णुम्भोऽयुतमेतेषां विष्णुम्भार्थं समुच्छ्रयः ।
 अधोगतिस्तदर्थं च वर्षाण्येषां तु वाच्यतः ॥ ६९ ॥

कुसलारुद्याष्टवर्षारुद्ये परापतमनोनुगे ।
 मुनिवर्षान्धकारारुद्ये सप्तमं दुन्दुभीति च ॥ ७० ॥

गिरयः शालमलिद्वीपे रक्तः पीतः सितस्तथा ।
 वैपुल्यमेषां द्वात्रिंशत्सहस्राणि प्रचक्षते ॥ ७१ ॥

वैपुल्यार्थं समुच्छ्रयस्तदर्थमवनौ गतिः ।
 वर्षं शान्तभयं वीतभयं चेत्यत्र संस्थिते ॥ ७२ ॥

गोमेदे तु सुरश्चेति कुमुदश्चेति भूथरौ ।
 योजनानां चतुःषष्ठिस्तौ सहस्राणि विस्तृताँ ॥ ७३ ॥

उच्छ्रायो विस्तरस्यार्थं तदर्थं चाप्यधोगतिः ।
 धातकीखण्डनामास्य मध्ये वर्षमुदीरितम् ॥ ७४ ॥

अस्त्यद्रिः पुष्करद्वीपे मानसोन्तरसंज्ञितः ।
 वाहृतो वर्षमेतस्य महावीतमिति स्मृतम् ॥ ७५ ॥

विस्तृतोऽष्टौ सहस्राणि शैलोऽयं द्वे तथायुते ।
 सहस्रशतमन्यत्र सुरसिद्धिं सेवितः ॥ ७६ ॥

व्यासार्थेनोच्छ्रयस्तस्य तदर्थेनाप्यधोगमः ।
 सुरेशानां नगर्योऽस्मिन् मया वत्स ! निवेशिताः ॥ ७७ ॥

१. 'स्वरात्' ख., 'स्वायत्' ग, पाठः । २. 'कुलाचलाः' ख, ग, पाठः ।

ऐन्द्री वस्वोक्तसारा प्राग् याम्या संयमनी ततः ।
 प्राचेतसी सुखा पश्चात् तथा सौम्युत्तरे विभा ॥ ७८ ॥
 धर्मरक्षार्थमेतासु चत्वारथतस्तुष्ट्वपि ।
 तथा लोकव्यवस्थार्थं पृथग् लोकभृतः स्थिताः ॥ ७९ ॥
 लोकालोकाचलः स्वादुसलिलाद् द्विगुणो वहिः ।
 स्वादूदाव्युप्रमाणात् स विस्ताराद् द्विगुणोऽपिच ॥ ८० ॥
 समुच्छ्रूतोऽसौ नियुतं नियुतार्थमधो गतः ।
 पञ्च क्रोशाः प्रतिदिशं नियुतानि तथा नव ॥ ८१ ॥
 तद्रूच नियुतस्यार्थं मेरुमध्यात् तदन्तरम् ।
 समुद्भासितदेहार्थस्तिमांशोः किरणैरयम् ॥ ८२ ॥
 तत्समेन च भूम्यर्थेनाहृतः परतः पुनः ।
 भौतान्यावरणान्युवर्णा यस्यैतानि स्थितान्यधः ॥ ८३ ॥
 वाहितोऽपिच भूम्यर्थं निविष्टानि तथानय ! ।
 इति वत्स ! तव प्रोक्तः सन्निवेशोऽखिलः क्षितेः ॥ ८४ ॥
 स्थितिं गतिं च कथयाम्यकांदीनामतःपरम् ।
 सूर्येन्दुधिष्ठयज्ञसितभौमाकिंत्रिदशाचिताः ॥ ८५ ॥
 सपूर्णयो ध्रुवथेति भूमेरुर्ध्वं क्रमात् स्थिताः ।
 चत्वारि द्वे तथा भूमेरुर्ध्वमा सूर्यनन्दनात् ॥ ८६ ॥
 पदेवपन्तराणि स्युः सहस्राणां शतं शतम् ।
 ग्रहान्तराणि यान्यन्यान्यवशिष्टान्यनुक्रमात् ॥ ८७ ॥
 तानि चत्वार्यपि द्वे द्वे लक्षे प्रोक्तानि मानतः ।
 धरित्रीध्रुवयोर्मध्ये योजनानां चतुर्दश ॥ ८८ ॥
 नियुतानि समुत्सेप्तस्त्रैलोक्यस्य प्रकीर्तिः ।
 एकाथ द्वे चतुर्स्रोऽष्टावन्तरं कोटयः क्रमात् ॥ ८९ ॥
 महोजनस्तपः सत्यलोकानामुपरि ध्रुवात् ।
 ये स्थिताः सत्यलोकोर्ध्वमध्यस्तादण्डकर्परात् ॥ ९० ॥
 एका कोटिर्भवेत् तेषां पञ्चाशन्नियुतान्विता ।
 अथावरणयोगोऽस्य विहितः (सैप)व्रजन्मना ॥ ९१ ॥

यथैवाथस्तथा तिर्यक् तथैवोर्वर्षमपि क्रमात् ।
 वहेऽद्वाः प्रवहे सूर्यः स्थितः शीतांशुरुद्धो ॥ ९२ ॥

संवहस्थानि नक्षत्राण्यावहस्थाः पुनर्ग्रहाः ।
 सप्तर्षयः परिवहे ध्रुवश्चापि परावहे ॥ ९३ ॥

प्रदक्षिणमपी सप्त मरुतो भ्रमयन्त्यमून् ।
 मेशीभूतः स्थितो मध्ये सुमेरुक्षमाभूति ध्रुवः ॥ ९४ ॥

सप्तस्तमपि तद्वद्दं ज्योतिश्चकं भ्रमत्यदः ।
 सप्ताख्वेनकचकेण रथेन रथिनां वरः ॥ ९५ ॥

अतेजोमयेन सततं भ्राम्यति ज्योतिषां पतिः ।
 केतुमाले (रजन्यर्धैवजन्नर्धै) करोत्यस्तं कुरुत्वपि ॥ ९६ ॥

मध्यन्दिनं च भद्राख्वे(ष्टद्वैस्तं ग)च्छन भारते रविः ।
 रसाभ्यिपक्षसङ्क्षानि योजनानि निमेषतः ॥ ९७ ॥

सप्तविश्वतिकां चाष्टी भागान् सर्पत्यर्हतिः ।
 योजनान्य(ध्वनंदर्तुः? विभनन्दर्तु) गुणसङ्क्षानि काष्टया ॥ ९८ ॥

नवांशकचतुष्कं च कापत्यहिमदीधितिः ।
 वहयस्त्रिवसुखेनदक्षमासङ्क्षातान्यविजनीपतिः ॥ ९९ ॥

योजनस्य त्रिभागं च प्रयाति कल्यैकया ।
 वियत्स्वब्योमभूताभ्यिगुणपावकसङ्क्षया ॥ १०० ॥

योजनान्युष्णकिरणो मुहूर्तेन प्रसर्पति ।
 रात्र्यहेण सहस्राणि पञ्चाशन्नवकोटयः ॥ १०१ ॥

लक्षणि सप्तनवतिर्गतिः स्यात् तिग्मरोचिपः ।
 मध्येन पुष्करदीपस्याकों गत्यानया व्रजन् ॥ १०२ ॥

नभस्तलेन पुनरप्युदयादुदयं श्रयेत् ।
 इत्थं गतिरियं सम्यक् तिग्मभानोर्निरूपिता ॥ १०३ ॥

गतिं चन्द्रग्रहक्षणां भौगं चार्काद् विभावयेत् ।
 प्रोक्तं तवेत्यहोरात्रप्रमाणमधुनानय! ॥ १०४ ॥

* एतदादित्योकद्वयं ख, ग, मातृकयोर्नासित ।

पश्चमासर्तुवर्षीदीन् व्यवहाराय कल्पयेत् ॥ १०४ १ ॥

इति निगदित एष द्वीपशैलाम्बुधीना-
मवनिवलयवर्ती कात्स्नर्यतः सञ्चिवेशः ।
गतिरपि दिनभर्तुः कीर्तिता विश्वमानं

पुनरिह युगथर्म कीर्त्यमानं निवोध ॥ १०५ २ ॥

इति महाराजाधिगजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरमाभिन वास्तुशास्त्रे
भुवनकोशाध्यायः पञ्चमः ॥

अथ सहदेवाधिकारः पष्ठोऽध्यायः ।

अथ प्राकथितादस्माद् भूतसर्गादनन्तरम् ।
प्रजासीदमर्हः सार्थमियं पूर्णजनाकुला ॥ १ ॥

शोकव्याधिजरातङ्कविमुक्तास्त्रिदशा इव ।
पुराभवन् कृतयुगे पुमांसः स्थिरयैवनाः ॥ २ ॥

ते निकुञ्जेषु शैलानां नदीषु च सरस्सु च ।
वनेषु च विचित्रेषु चिकीदुर्देवतैः सह ॥ ३ ॥

हेलया ते समुत्पत्य कदाचिदमर्हः सह ।
निर्गलाः समासाद्य स्वर्विचेहुः सुरा इव ॥ ४ ॥

चित्राम्बरादृताः सर्वे नानाभरणशालिनः ।
विमानाकृतयस्तेषामासन् कल्पद्रुमा द्रुमाः ॥ ५ ॥
मनोङ्गाभिः सह स्त्रीभिर्विचित्राभर(णास्त्रिणश्रियः ।
कल्पद्रुमेष्वकार्षुस्ते वासं क्रीडां च तेष्वथ ॥ ६ ॥

क्षुत्राङ्गदुःखोजिताः सर्वे वभूत्रयुतायुपः ।
रत्नावदातदेहास्ते कदाचिद् भूरसाशिनः ॥ ७ ॥
रतिप्रायास्तदासंस्ते स्वेच्छाहारविहारिणः ।
स्वीकारविग्रहच्छेदविशदीकृतचेतसः ॥ ८ ॥

नास्मिन्नर्कस्तपत्युग्रं न वाति प्रबलोऽनिलः ।
 नीहारच्छेदसुन्दर्यो निशाः पूर्णेन्दुभूषणाः ॥ ९ ॥
 भिन्नमित्तिग्नाङ्गनश्यामाः सतडिन्मन्त्रनिस्वनाः ।
 अचण्डाशनयश्चासन् कवरीकान्तयो घनाः ॥ १० ॥
 मायतिपिकवधूदण्डमाकन्दमुकुराद्कुराः ।
 आसन् सदापुष्पफलाभोगा येषां वनालयाः ॥ ११ ॥
 एकोऽग्रजन्मा वर्णोऽस्मिन् वेदोऽभूदेक एव च ।
 क्रतुर्वसन्त एवैकः कुसुमायुधवान्यवः ॥ १२ ॥
 रूपशुतसुखैर्वर्यभाजस्ते निखिला अपि ।
 समत्वान्नाभवत् तेषामुत्तमाधममःयता ॥ १३ ॥
 न खेटनगरग्रामपुरक्षेत्रवलादिकम् ।
 न दंशमशकक्रव्याङ्गय वा न ग्रहादि च ॥ १४ ॥
 कल्पदुमाप्तभोगानां न चैषां प्रभुरप्यभूत् ।
 पुरास्मिन् भारते वर्षे तेषां निवसतामिति ॥ १५ ॥
 जगाम सुबहुः कालः सुरः सार्थं सुर(स्त्रीश्री)याम् ।
 अङ्गाततत्प्रभावानां सहस्राससंभवा ॥ १६ ॥
 अर्थेषामभवद् दैवादवज्ञा त्रिदशान् प्रति ।
 अपूज्यमानास्ते पूज्याः सर्वेऽप्यस्तिलवेदिनः ॥ १७ ॥
 आदाय तत्कल्पतरु निषेतुर्वा दिवौकसः ।
 दिवंगमनशक्तिश्च दिव्यो भावश्च तद्वतः ॥ १८ ॥
 सरसः परमो भूमौ भूरसश्च न्यवर्तत ।
 स्मृत्वा कल्पदुमास्तांस्तान् क्रीडास्ताश्च सुरः सह ॥ १९ ॥
 व्यलपन् वहुधात्यर्थमन्तर्थकृतचेतसः ।
 ततो विलपता भूरि स्वैरमाहारहेतवे ॥ २० ॥
 प्राणत्राणार्थमेतेषामभूत् पर्षटको भुवि ।
 भूरसेनैव तेनैते कुर्वाणाः प्राणरक्षणम् ॥ २१ ॥

१. 'नर्थीक' स. पाठः

विना कल्पद्रुमैर्वासमन्यवृक्षेषु चक्रिरे ।
 अथैपां पश्यतामेव कदाचिद् भाग्यसंक्षयात् ॥ २२ ॥
 विपर्ययाच्च कालस्य भूमेः पर्षटकोऽप्यगात् ।
 ततः पर्षटके नष्टे तुषश्चकणोज्जिताः ॥ २३ ॥
 अकृष्टपच्या मेदिन्यामभवत् शालितण्डुलाः ।
 शाल्योदनेन तेनाथ सुस्वादुव्यञ्जनेन ते ॥ २४ ॥
 परमां त्रिपिमासेदुः परितोषात्तचेतसः ।
 तन्नाशशङ्क्या शालितण्डुलानां द्रुमध्यधः ॥ २५ ॥
 ते व्यधुर्महतो राशीस्तत्क्षेत्राणि च चक्रिरे ।
 अजायत ततो लोभो मात्सर्येष्वापुरस्सरः ॥ २६ ॥
 तत्र तत्र शनैश्चक्रे पदन्यासं च मन्मथः ।
 द्रुद्धप्राप्त्या ततस्तेपां विभ्रतामृतमां गतिम् ॥ २७ ॥
 धैर्यध्वंसादभूत् स्त्रीषु भूशं रागतुरङ्गमः ।
 दारक्षेत्रनिमित्तानि भूयांस्येषामनन्तरम् ॥ २८ ॥
 परिक्लैश्चकमूलानि इन्द्रान्यासन् पृथक्पृथक् ।
 ततः स्वक्लृप्तमर्यादोच्छेदिष्वेष्वजितात्मसु ॥ २९ ॥
 आविनीतेष्वभाग्येषु स शालिस्तुष्टामगात् ।
 प्रवृद्धरजसां तेषां सा पुण्यश्लोकता गता ॥ ३० ॥
 मलप्रवृत्तिरभवत् तुषधान्योपसेवया ।
 तुषधान्ये ततो नष्टे परिमुक्ते च सञ्चये ॥ ३१ ॥
 चीरवल्कलवस्त्राणां कन्दमूलफलाशिनाम् ।
 क्रतवः कालपर्यासात् पदवसन्तादयोऽभवन् ॥ ३२ ॥
 ततस्तेषामभूद् दोषरोगशोकाकुलं वपुः ।
 मनश्च कामक्रोधर्ष्यादैन्यामूर्यादिदृष्टिम् ॥ ३३ ॥
 आधिदैवकमुण्णाम्बुशीतादिजनितं महत् ।
 आधिभौतिकमध्यासीद् दुःखं व्यालमूर्गादिजम् ॥ ३४ ॥

१. 'सततः क्षेत्राणि चक्रि' ख. ग. पाठः । २. 'र्यादास्वनिष्टेष्व' क. पाठः ।

इत्यं दुःखत्वात्तास्ते व्यवायादभिगुप्तये ।
हिमनीहारशीताम्बुद्वाताधापच्छिदेऽपि ॥ ३४ ॥

अजातप्रीतयो वृक्षैः कुटिमानि गृहाणि (ते?च) ।
व्यधुश्चिद्वादमभिर्वृक्षानन्यान् दुःखात्तेतसः ॥ ३५ ॥

स्मृत्वा कल्पद्रुमाकारांस्तद्रूपाणि गृहाणि ते ।
एकद्वित्रिचतुःसप्तदशशालानि चक्रिर ॥ ३६ ॥

श(ब्दाः प्प)प्राकारपरिखेष्वाच्छ्लेषु तुणादिभिः ।
हृष्टास्तेष्वनयन् कालमासेषु गृहमेधिनः ॥ ३७ ॥

इत्यमीषु गृहिणो गृहेषु ते शीतवातजलतापनाशिषु ।
हर्षसंवलितमानसाश्चिरं सन्निरस्तविपदोऽवसन् सुखम् ॥ ३८ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीमोऽनेदयविरचिते समराङ्गसूक्तवारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे

सहदेवाधिकारो नाम पष्ठोऽध्यायः ॥

अथ वर्णाश्रमप्रविभागः सप्तमोऽध्यायः ।

अथामरगणैः सार्थमाजगाम पितामहः ।
दुःखच्छेदाय मर्त्यानामादाय तृपतिं पृथुम् ॥ १ ॥

स तानूचे प्रभुवोऽसौ मरुतामिव वासवः ।
दण्डधारी च दुष्टानां प्रभावे लोकपालवत् ॥ २ ॥

प्रतापतापितारौतिसिंहः सिंहपराक्रमः ।
युध्माकमाधिपत्येऽसावभिपिक्तो मया पृथुः ॥ ३ ॥

रक्षाकृत् सर्वशिष्टानामुच्छेत्ता दुष्टेतसाम् ।
वृत्तितो भीतिहर्ता च भविष्यत्येष वो तृपः ॥ ४ ॥

१. 'कामानासे' ल, ग, पाठः । २. 'रातिः वासवत् सि' क, पाठः ।

भवद्विरेतदायत्तं भवितव्यं ममाङ्गया ।
 करिष्यत्येष वा नीत्या चातुर्वर्णीश्वस्थितीः ॥ ५ ॥
 उक्त्वेति ब्रह्मणि गते नाथमासाद्य तेऽथ तम् ।
 अबोचन् दुःखितो दुःखादस्मान् त्रायस्व नः प्रभो! ॥ ६ ॥
 कल्पद्रुमापरत्यक्तान् इन्द्रातिक्लान्तचेतसः ।
 व्यसनार्णवनिर्मशान् पाहि नः पृथिवीपते! ॥ ७ ॥
 अथो पृथुरुहवाचैतान् मा भैषु सुखमास्यताम् ।
 दुःखान्यपहरिष्यामि करिष्ये च सुखानि वः ॥ ८ ॥
 ततः स चतुरो वर्णानाश्रमांश्च व्यभाजयत् ।
 तेषु ये वेदनिरताः स्वाचाराः संयतेन्द्रियाः ॥ ९ ॥
 सूरयथावदाताथ ब्राह्मणास्तेऽध्वरस्तदा ।
 यजनाध्ययने दानं याजनाध्यापनार्थिताः ॥ १० ॥
 धर्मस्तेषां विष्वृद्यान्त्यांस्तुल्याः शब्दवैश्ययोः ।
 ये तु शूरा महोत्साहाः शश्या रक्षणक्षमाः ॥ ११ ॥
 दृढव्यायतदेहाश्च धन्वियास्त इहाभवन् ।
 विक्रमो लोकसंरक्षाविभागो व्यवसार्यिता ॥ १२ ॥
 एतेषामयमप्युक्तो धर्मः शुभफलोदयः ।
 निसर्गान्विष्टुणं येषां रतिविचार्जनं प्रति ॥ १३ ॥
 श्रद्धादाध्यदयाव(न्तो? चा) वैश्यांस्तानकरोदसौ ।
 चिकित्सा कुषिवाणिज्ये स्थापत्यं पशुपोषणम् ॥ १४ ॥
 वैश्यस्य कथितो धर्मस्तदृत् कर्म च तैजसम् ।
 नातिपानभूतो नानिशुचयः पिशुनाश ये ॥ १५ ॥
 ते शुद्धजातयो जाता नातिधर्मरताश्च ये ।
 कलारम्भोपजीवित्वं शिल्विता पशुपोषणम् ॥ १६ ॥
 वर्णत्रितयशुश्रूषा धर्मस्तेषामुदाहतः ।
 ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थस्तथा यतिः ॥ १७ ॥

१. 'न्तो', २. 'शुचय' ख, ग, पाठः ।

इत्याश्रमा: पृथक् तेन चत्वारः प्रविभाजिताः ।
गुरुशुश्रूषणं भैश्च ब्रतचर्याद्विकर्म च ॥ १८ ॥

स्वाध्यायशाभिपेकश धर्मोऽयं ब्रह्मचारिणः ।
पूजान्यतिथिदेवानां स्वदृश्या जीवनं दमः ॥ १९ ॥

असमानर्थिंगोत्रेषु विवाह क्रतुगमिता ।
परस्य स्त्रीषु वैमुख्यं परानुग्रहशीलता ॥ २० ॥

विनिवृत्तिरकार्यभ्यो धर्मोऽयं शुहिणां कृतः ।
देवतातिथिसत्कारो ब्रह्मचर्यं वने स्थितिः ॥ २१ ॥

बल्काजिनजटाचीरधारणं शयनं भुवि ।
उपोषणीव्रतैर्देहकर्शनं नियमस्तथा ॥ २२ ॥

आहारोऽकृष्टपञ्चयश्च धर्मोऽयं वनवासिषु ।
वैराग्यमिन्द्रियैजयश्चिन्तात्यागः प्रशान्तता ॥ २३ ॥

आकिञ्चन्यमनारम्भो यतिर्थमः सदा स्मृतः ।
श्वमत्वं गुर्वधीनत्वं शौचं स्वाध्यायनित्यता ॥ २४ ॥

विशुद्धिर्व्यवहारेषु शिष्यधर्मोऽयमीरितः ।
शुचित्वं वाइमनःकार्यैः पतिशुश्रूषणं क्षमा ॥ २५ ॥

पूजनं पतिषृज्यानां स्त्रीधर्मः शौचमेव च ।
एवं वर्णाश्रमान् सम्यक् कृत्वा वर्णास्तदुद्वान् ॥ २६ ॥

विभज्य तेषां वैन्येन ते ते धर्माः प्रकीर्तिः ।
वृत्तिं कर्माणि चैतेषां पृथगुदिश्य सोऽभ्यधात् ॥ २७ ॥

स्वधर्मावस्थितानां वो भावि लोकद्रव्ये सुखम् ।
य एतां स्थितिमुलहृष्य मोहादन्यद् विधास्यति ॥ २८ ॥

तस्याहं यमवत् कुद्धः कंरिष्याम्यनुशासनम् ।
युक्तानां कर्मसु स्वेषु हृत्यर्थं भवतामहम् ॥ २९ ॥

खेटकग्रामवेशमानि विधास्यामि पुराणि च ।
इत्युक्त्वा तानथो कोऽन्या कार्मुकस्य पृथुर्वृपः ॥ ३० ॥

१. 'भूत्यर्थं' ख. ग. पाठः ।

विषमां साधयामास पृथिवीं पृथुविक्रमः ।
तत्सङ्केतेन गौर्भूत्वा नश्यन्ती तेन मेदिनी ॥ ३१ ॥

विशेनियोगाद् दुदुहे साधु सस्यानि भूतये ।
कलिपतास्तेन शैलानां सरितामन्तरेषु च ॥ ३२ ॥

समेषु चावकाशेषु पुरादीनां विभक्तयः ।
तेन सीराग्रकृष्टेयं धान्यैरुपर्यथाविधि ॥ ३३ ॥

समस्या क्रियते क्षोणी भगवत्यम्बुदागमे ।
इत्युद्ध्वो निगदितः प्रथमो नृपस्य
धर्मेण सार्थमपिचाश्रमवर्णभेदाः ।
प्रोक्ताः कृषिल्यतिकरोऽपिच दर्शितस्ते
कात्सन्येन वत्स ! शृणु देशविभागभूमिम् ॥ ३४ ॥

इति महाराजाधिग्राजश्रीमोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वासुशास्ते
वर्णाश्रमप्रविभागो नाम सम्प्रोऽव्यायः ॥

अथ भूमिपरीक्षा नामाष्टमोऽव्यायः ।

देशात् देशभूम्यश्च समासात् तत्र सम्प्रति ।
तत्सङ्क्षया तद्रिभागात् प्रोच्यन्तेऽवहितः शृणु ॥ १ ॥

देशः स्याज्ञाङ्गलानूपसाधारणतया त्रिधा ।
त्रिविधस्याप्यथैतस्य यथावल्लक्ष्य कथ्यते ॥ २ ॥

दूराम्बुरिरिणप्रायो हस्त्रकण्टकिपादपः ।
रुक्षोष्णचण्डपवनः कृष्णमृतं तेषु जाङ्गलः ॥ ३ ॥

निम्नो भूरिजलः स्त्रिघो वहुमत्स्यामिषो हिमः ।
स्यादनूपः सरित्यायः स्त्रिघोच्छ्रूतवहुद्रुमः ॥ ४ ॥

यः पुनर्नातिशीतोष्णः स्याद् देशद्रव्यलक्षणः ।
स साधारण इत्युक्तो देशो देशविशारदैः ॥ ५ ॥

जाङ्गलादिषु देशेषु त्रिः(पुण्ये?व्याप्ये)षु स्वलक्षणैः ।
 युक्ताः पोडश विज्ञेया भूमयः ग्रविभागतः ॥ ६ ॥
 वालिशस्वामिनी भोग्या सीतागोचररक्षिणी ।
 अपाश्रयवती कान्ता खनिष्ठात्पथधारिणी ॥ ७ ॥
 वणिकप्रसाधिता द्रव्यसम्पदामित्रघातिनी ।
 आश्रेणीपुरुषा शक्यसामन्ता देवमातृका ॥ ८ ॥
 धान्या हस्तिवनोपेता सुरक्षा चेति षोडश ।
 भुवः संज्ञाभिरुदिष्टा लक्ष्मासामथ कथ्यते ॥ ९ ॥
 भूमुजा वालिशेनापि शक्यते या प्रशासितुम् ।
 या च भद्रजना सा स्याद् वालिशस्वामिनी क्षितिः ॥ १० ॥
 वितरन्त्यधिकं यस्यां भागभोगादिकान् करान् ।
 नरा भूरिश्रियः सात्र भोग्येति क्षितिरुच्यते ॥ ११ ॥
 यस्यां नदाश्च नद्यश्च गिरिर्मध्येऽथवा वहिः ।
 विभक्तक्षेत्रसीमा सा सीतागोचररक्षिणी ॥ १२ ॥
 सरिदद्रिवनाथेषु त्रासाद् यस्यां विशेज्जनः ।
 जनापाश्रययोग्यत्वादपाश्रयवतीति सा ॥ १३ ॥
 वनोपवनवत्यद्रिसरित्कुञ्जमनोहरा ।
 देहिनो रमयत्युर्वी या सा कान्तेति कीर्तिता ॥ १४ ॥
 यस्यां सदैव जायन्ते कलधौतादिधातवः ।
 लवणानि च भूयांसि प्राहुः खनिष्ठतीति ताम् ॥ १५ ॥
 यात्यन्तं नानुयृद्वेत दण्डकोशासनादिभिः ।
 स्फीतलोकाश्रया या च सा स्याद् भूरात्पथारिणी ॥ १६ ॥
 प्रसिद्ध्यन्त्यसकुद् यत्र पण्योपक्रयविक्रयाः ।
 वणिकप्रसाधितेत्युक्ता सा भूर्वणिगलहकृता ॥ १७ ॥
 शाकाश्वकर्णखदिरश्रीपर्णीस्यन्दनासनैः ।
 वेणुवेत्रशराद्यश्च युक्ता द्रव्यवतीति भूः ॥ १८ ॥
 यस्यां जनपदाः साधु विभक्तास्त्यक्तविक्रमाः ।
 योगं यान्ति च मित्राणि स्याद् भूः सामित्रघातिनी ॥ १९ ॥

न भुद्रा वन्दिनो यस्यां दुर्गप्रत्यन्तसंश्रयाः ।
 भूः साथेणीमेनुप्येति विनीतैराश्रिता जनैः ॥ २० ॥
 मन्त्रोत्साहादिवैमुख्यं यस्यां सामन्तभूभूजः ।
 भजन्ते सा स्मृता शक्यसामन्ता भूः समन्ततः ॥ २१ ॥
 जीवन्ति क्षेत्रिणो यस्यां न(दी ? द)नद्यादिवारिभिः ।
 तां देवमातृकेत्याहुरनपेक्षितवारिदाम् ॥ २२ ॥
 निष्पद्यन्तेऽधिकं यस्यां वीजान्युप्तान्ययत्नतः ।
 कृष्टानुपहृतक्षेत्रा धान्या सा धान्यशालिनी ॥ २३ ॥
 पर्यन्तेष्वद्रयो यस्यां या च हस्तिवन्नाश्रिता ।
 सा हस्तिवनवत्युर्वा भूभूतः सैन्यवर्धिनी ॥ २४ ॥
 दुष्प्रधृष्ट्यैव या नित्यं विषमत्वादरातिभिः ।
 विषमाद्रिसरिदगुप्ता सा सुरक्षेति भूः स्मृता ॥ २५ ॥
 पोद्वेत्युदिता भूम्यः प्रविभागाद् यथातथम् ।
 अन्या जनपदादीनां शूः सम्मिश्रलक्षणाः ॥ २६ ॥
 धातुस्यन्दोषसत्कुञ्जगुल्मदुमलतादृतैः ।
 उत्सक्षिताः पृथुशिलैः समन्तादवनीधरैः ॥ २७ ॥
 तीर्थावतारकान्ताभिः स्वादुतोयाभिरादृताः ।
 नदीभिः पुलिनप्रान्तैर्विचित्रद्रुमशालिभिः ॥ २८ ॥
 कोकिलालापसुभग्नैर्धुमत्तालिशालिभिः ।
 विचित्रफलपुष्पाङ्गैः काननैररूपशोभिताः ॥ २९ ॥
 दलत्कुवलयश्रेणीक्वणन्मधुपहारिभिः ।
 सरसीदेवस्वातादैर्भूषिताः प्राज्यवारिभिः ॥ ३० ॥
 समैः सुगन्धिभिः स्वादुशीतैः कान्तैरभृगुरैः ।
 क्षेत्रैरक्षतसीमान्तैः सस्यनिष्पादिभिर्दृताः ॥ ३१ ॥
 निष्पटकाश्मवल्मीकैः प्रभृतयवसेन्धनैः ।
 विभक्तक्षेत्रसीमान्तैर्गोचरैररूपशोभिताः ॥ ३२ ॥

१. 'पूर्षेति विभीतै' स. ग. पाठः । २. 'नान्विता' ग. पाठः ।

स्थले तुणसमुद्राणामन्तरेषु वसुन्धराः ।
 प्रशस्यन्ते समासच्चस्वादुशीतलवारयः ॥ ३३ ॥

दुरात्मनामधृष्या यास्तथानेकाश्रयान्विताः ।
 संरम्भत्रासनिर्मुक्तं मनश्च रमयन्ति याः ॥ ३४ ॥

तास्वेवंगुणयुक्तासु महीषु विनिवेशयेत् ।
 यथास्थानं जनपदान् सेट्यामपुरादि च ॥ ३५ ॥

युता महीध्रमूला(स्व? म्बु)प्राकारस्तु पृथक्पृथक् ।
 चतस्रः कीर्तिं ता धन्या भूमयो दुर्गदेतवः ॥ ३६ ॥

दुरारोहतया दुर्गे द्वङ्गच्छब्द इवान्ततः ।
 समपृष्ठेन्दु(?)युक्तेऽद्वौ गिरिदुर्गावनिर्भवेत् ॥ ३७ ॥

कण्टकिद्रुमनीरन्ध्र(तदेशानिदेश सा)म्भसि कानने ।
 गृदप्रवेशमार्गं भूमूलदुर्गेति कीर्तिं ॥ ३८ ॥

द्वीपेषु स्वादुतोयेषु वहगाधजला वहिः ।
 रम्यावकाशदेशा स्याज्जलदुर्गा च मेदिनी ॥ ३९ ॥

स्त्रिघ्नाः सारभृतः शुद्धाः प्रदक्षिणजलाशयाः ।
 वहृदकास्तरुच्छव्वा निर्विहाः प्रागुदकृलवाः ॥ ४० ॥

दूर्वास(स्त्री?स्त्री)पर्वीमुखकुरुन्दकुशवल्कलैः ।
 परितः परिणदाश्च स्वादुस्वच्छस्थिरोदकाः ॥ ४१ ॥

वास्तुयज्ञामरस्थानाद्यारामोद्यानसंभृताः ।
 तटाकवापीस्थानैश्च याः समन्तादलङ्कृताः ॥ ४२ ॥

या वाहनानां सुखदा मिथुनानां रतिप्रदाः ।
 पुरार्थं ताः प्रशस्यन्ते भूमयो जनितश्रियः ॥ ४३ ॥

कुहकुमागुरुक्षूरस्पृक्लाचन्दनादिभिः ।
 सुगन्धा मिथ्रितरेभिः पृथक्स्थैर्वा वसुन्धरा ॥ ४४ ॥

कलहारपाटलाम्भोजमालतीचम्पकोत्पलैः ।
 स्थलाम्बुप्रभवैश्चान्यैः सुगन्धा कुमुर्मस्तथा ॥ ४५ ॥

१. 'रन्धैः' ल. ग. पाठः ।

गोमृत्रगोमयक्षीरदधिमध्वाज्यगन्धभाक् ।
 समानगन्धा मदिरामाध्वीकेभमदासवैः ॥ ४६ ॥
 शालिपिण्ठकगन्धैश्च धान्यगन्धैश्च या तथा ।
 प्रशस्ताखिलवर्णनामीहगन्धा वसुन्धरा ॥ ४७ ॥
 सिता रक्ता च पीता च कुण्डा चैव क्रमान्मही ।
 विप्रादीनां हि वर्णानां सर्वेषामथवा हिता ॥ ४८ ॥
 स्वादुः कपाया तिक्ता च कटुका चेत्यनुक्रमात् ।
 वर्णानां स्वादतः शस्ता सर्वेषां मधुराथवा ॥ ४९ ॥
 घर्षागमे हिमस्पशी या स्यादुण्णा हिमागमे ।
 प्रावृष्ट्युष्णाहिमस्पशी सा प्रशस्ता वसुन्धरा ॥ ५० ॥
 मृदुङ्गवल्लकीवेणुदुन्दुभीनां समा ध्वनौ ।
 द्विपा(द्वौप्य?श्वाद्य)समस्वाना चेति स्युर्भूमयः शुभाः ॥ ५१ ॥
 इदानीमपशस्तानां भुवां लक्ष्माभिदध्महे ।
 पुरादिसन्निवेशार्थं परित्याज्या भवन्ति याः ॥ ५२ ॥
 भस्माङ्गारकपालास्थितुपकेशविषाक्षमभिः ।
 मूषकोत्करबल्मीकरशकराभिश्च निर्भरा ॥ ५३ ॥
 रुक्षा प्रोहिणी निम्ना भह्युरा सुपिरोषरा ।
 वामावर्तजलासाविष्यसाग विषमोन्नता ॥ ५४ ॥
 कटुकण्टकिनिःसारशुष्कनिष्कलपादपा ।
 क्रव्यात्पश्चिसंमाकीर्णा कृषिकीटवती च या ॥ ५५ ॥
 सुकृतान्यपि भोज्यान्नभक्षयपानानि तत्क्षणात् ।
 यस्यां विनाशमायान्ति सह तूर्यादिनिस्वनैः ॥ ५६ ॥
 सरित् पूर्ववहा यस्यां पुरार्थं तामपि त्यजेत् ।
 वहुनापि यतस्तत्र कालेनायाति सा पुनः ॥ ५७ ॥
 वसासुद्यमज्जविष्यमृतमलको(थैश)पतत्रिणाम् ।
 समगन्धां त्यजेदुर्वीं तैलस्य च शबस्य च ॥ ५८ ॥

१. 'णा चेति क,' २. 'मृगाक्षी' ल, ग, पाठः ।

सदैव धूम्रवर्णा या मिश्रवर्णाथवा मही ।
 विवर्णा रुक्षवर्णा वा सा न स्यादिष्टदायिनी ॥ ५९ ॥

तिक्ताम्ललवणा चापि भूविर्या स्विदला भवेत् ।
 तां लोकविदेषकरीं त्यजेत् गुरनिनेशने ॥ ६० ॥

या रुक्षखररत्स्पश्चा सदैवोच्छा हिमाथवा ।
 अनिष्टसुखसंस्पश्चा या स्यात् ताप्तपि सन्त्यजेत् ॥ ६१ ॥

क्रोष्टश्वखरस्वाना या च निझरनिश्वना ।
 भिजभाण्डसमकूरथनितापिच नन्द्यते ॥ ६२ ॥

इति गन्धादिभिर्भूमिः कथितेष्यं तुमाशुभा ।
 हलेन कृष्णमाणायां भूमो काष्ठे समुद्घते ॥ ६३ ॥

विद्याद् भयं वहिभवभिष्ठकायां धनागमम् ।
 पापाणेषु तु कल्याणं कुलव्रच्चंसमस्थिष्यतु ॥ ६४ ॥

सरीसृपेषु सर्वेषु स्तोनेभ्यो भयमादिशत् ।
 अनूपरा वहूदृष्टा शस्ता खिभोत्तरशुश्रा ॥ ६५ ॥

प्रागीशानशुश्रा सर्वशुश्रा वा दर्पणोदश ।
 शुभेऽहन्युयोपितः रुताः शुक्रिः शुक्रहस्तवरः ॥ ६६ ॥

स्वस्ति विश्रान् वाचयित्वा वास्तुदेवान् समर्च्य च ।
 करप्रमाणं कुर्वीत खातं तद्विमध्यगम् ॥ ६७ ॥

ततस्तन्मृदमाकृष्य तत् तर्यवात्पूर्वयेत् ।
 खाताथिकमृदुका भूः श्रेष्ठा मध्या च तत्समा ॥ ६८ ॥

प्रहीणखातमृत् भोगी हीना शस्ता न सा चृष्णाम् ।
 खन्यमाने यदा खाते तन्मृदोऽन्तर्विलोक्यते ॥ ६९ ॥

मणिशङ्कुप्रवालादि तदातिश्रेयसी खितिः ।
 सापि प्रशस्यते भूविर्यस्यां रुमुः खातपांसवः ॥ ७० ॥

तुपकेशोपलाङ्गात्मस्वास्त्रिलववजिता:
 भूत्वाद्द्विः खातमापूर्णे तस्मिन् पद्मतं व्रजेत् ॥ ७१ ॥

तावचेदागमेऽभः स्यात् तदा भूः सर्वकामिकी ।
 मध्यमात्रं प्रहीणे स्यात् ततो हीनतरेऽथमा ॥ ७२ ॥
 खाते सितादिमाल्यानि यस्यां निश्चयितानि च ।
 यद्वर्णानि न शुद्ध्यन्ति सा तद्वर्णेषु दा मही ॥ ७३ ॥
 खातस्योदक्षमभृतिषु दिशु प्रज्वालयीत वा ।
 दीपात् यस्यां चिरं तिषेत् तद्वर्णेषु प्रदा हि सा ॥ ७४ ॥
 इत्येवं कीर्तिताः कात्स्न्याहृक्षमभिः पुरभूमयः ।
 खर्वटग्रामखेटानामेता एव स्मृता हिताः ॥ ७५ ॥
 वर्णिनां वर्णधात्रां च शिविराणां च सर्वदा ।
 प्रासादयज्ञवाटानामेता एवेषु दा भूवः ॥ ७६ ॥
 इत्येवमादिभिरि(यं?मा:) शुभलक्ष्मयुक्ता
 भूमयः शुभा निगदिता नगरादिहतोः ।
 आभ्यः परेण वहुधा परिकल्प्यमानं
 ब्रूपस्त्रिया स्थितवतोऽपि करस्य मानम् ॥ ७७ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
 भूमिपरीक्षा नामाष्टमोऽध्यायः ॥

अथ हस्तलक्षणं नाम नवमोऽध्यायः ।

हेतुः समस्तवास्तूनामाधारः सर्वकर्मणाम् ।
 मानोन्मानविभागादिनिर्णयैकनिवन्धनम् ॥ १ ॥
 परिश्युद्यविस्तारदेव्याणां स्युरमी यतः ।
 ज्येष्ठमध्याधमा भेदा यं च ज्ञात्वा न मुद्दति ॥ २ ॥
 इदानीं तस्य हस्तस्य सम्यङ् निश्चयसंयुतम् ।
 कथ्यते त्रिविधस्यापि लक्षणं शास्त्रदर्शितम् ॥ ३ ॥
 रेष्वष्टकेन वालाग्रं लिक्षा स्यादष्टभिस्तु तैः ।
 भवेद् युकाष्टभिस्ताभिर्यवमध्यं तदष्टकात् ॥ ४ ॥

१. 'दागतेभ्यः स्यात्', २. 'विवि' ल. ग. याः ।

अष्टाभिः सप्तभिः पदभिरङ्गुलानि यत्रोदरैः ।
ज्येष्ठमध्यकनिष्ठानि तत्तुर्विंशतिः करः ॥ ५ ॥

सोऽष्टभिः पर्वभिर्युक्तः करः कार्यो विजानता ।
करस्यार्थं चतुःपर्वं शेषं स्याद् भक्तमङ्गुलैः ॥ ६ ॥

तत्राग्रे पर्वरेखाः स्युस्तिस्तः पुष्पकभूषिताः ।
शेषास्वङ्गुलरेखासु पुष्पाणि विदधीत न ॥ ७ ॥

अत्रार्थं मध्यतः कार्यं द्वेषा पञ्चममङ्गुलम् ।
मध्यं त्रिधाष्टम् कार्यं चतुर्था द्वादशं ततः ॥ ८ ॥

हस्तः स्वाङ्गुलमानेन विशेयाङ्गुल(मि?इ)व्यते ।
तत् सार्थं द्विगुणं वाणि वाहुस्यं तु तदर्थतः ॥ ९ ॥

कथितः करभेदोऽयमङ्गुलानां विभेदतः ।
तस्य निर्माणदारुणि देवताश्च प्रचक्षमह ॥ १० ॥

खदिराङ्गनवंशादि श्लङ्घणं हीरं मनोरमम् ।
सारवच भवेदिष्टं दारु हस्तप्रकल्पने ॥ ११ ॥

ग्रन्थिलं लघु निर्दग्धं जीर्णं विस्फुटितं तथा ।
अट्ठं कोटराकानं दारु हस्ताय नेष्यते ॥ १२ ॥

त्रिविभस्याप्यर्थेतस्य पर्वरेखासु देवताः ।
+ मध्यादारम्भ विज्ञेयाः क्रमेण नव वन्मिताः ॥ १३ ॥

* ब्रह्मा बहिर्यमो विश्वकर्मा नाथश्च पाथसाम् ।
वायुर्धनाधिपो रुद्रो विष्णुश्चाग्रे जगत्पतिः ॥ १४ ॥

वास्तुद्रव्यविभागेषु यानेषु च विशेषतः ।
प्रारभेत यतो मानं कल्पयेद् देवतास्ततः ॥ १५ ॥

१. ‘व्यात्’ ख. ग. पाठः ।

† ‘मध्यपर्वत एकस्मिन् पार्श्वगणनया प्रान्तसंयुक्तानि चत्वारि पर्वाणि भवन्ति ।
मध्यादेव परस्मिन् पार्श्वे समध्यमपर्वत्वात् पञ्च भवन्ति’ ।

* ‘मध्ये ब्रह्मा । ततो वामे पर्वणि वह्निः दक्षिणे पर्वणि यमः, पुनर्वामे विश्वकर्मा दक्षिणे वह्नाः, पुनर्वामे वायुः दक्षिणे धनदः, पुनर्वामे रुद्रो दक्षिणे विष्णुः । ततस्तु क्रमेण गणनायां रुद्रो वायुर्विश्वकर्मा बहिर्विधाता कालस्तोयेशः कुवेरो विष्णुरिति पर्वदेवता भवन्ति’ इति टिप्पण्यमिह दत्तमस्ति ।

विद्धैश्च द्रव्यमध्यैश्च देवताभिश्च पीडिते ।
 प्रत्येकं त्रिदशस्थाने यथोक्तं फलमादिशेत् ॥ १६ ॥
 शिरोत्तिरनलप्लुषोषो मरणं स्थपतेर्वद्यः ।
 अतिसारे मरुदूच्याधिरथ्यभ्रंशो भव्यं नुपात् ॥ १७ ॥
 कुलपीडा च महती कर्तुकारकयोरिति ।
 यथाकममी दोषा ब्रह्मादीनां निपीडनात् ॥ १८ ॥
 ब्रह्मानलक्योर्मध्ये यदा हस्तं तु धारयेत् ।
 कर्मस्वयिगतस्तेषां पुत्रलाभो भविष्यति ॥ १९ ॥
 कर्मणः सुषुनिष्पत्ति(स्तिष्ठतेभोगस्यपतेभोग्य)मक्षयम् ।
 ब्रह्मा यमस्तयोर्मध्ये यदा हस्तं तु धारयेत् ॥ २० ॥
 कर्ता सशिलिपकश्चैव(अ?न)चिरेण विनश्यति ।
 विश्वानलक्योर्मध्ये हस्तमूळं यदा धृतम् ॥ २१ ॥
 सु(षु)कर्मणि मध्यान्तं निष्पत्ते पुरुद्धिता ।
 यमजलदयोर्मध्ये मध्यमं च विनिर्दिशेत् ॥ २२ ॥
 पवनो विश्वकर्मा चोभयोर्मध्ये च धारणम् ।
 यदा तु तत्र कर्मान्तं शुर्यं तत्सर्वकामदम् ॥ २३ ॥
 नीरथनदयोर्मध्ये मध्यमं च विनिर्दिशेत् ।
 एषां मध्ये यदा वत्सहस्तं तत्र यदा धृतम्(?) ॥ २४ ॥
 अनावृष्टिभयं लोके देशभज्ञो न संशयः ।
 स्त्रपवनयोर्मध्ये रुचिहस्तं तु धारयेत् ॥ २५ ॥
 तत्र लक्ष्मीवतस्तस्य कार्यसिद्धिर्न संशयः ।
 विष्णुधनदयोर्मध्ये यदा पाणिकरौयतः ॥ २६ ॥
 विविधास्तत्र भोगाश्र प्रजायन्ते नरस्य हि ।
 ज्येष्ठादीनामध्येतेषां संज्ञाभेदो विद्यीयते ॥ २७ ॥
 यच्च येन भवेद् द्रव्यं मेयं तदपि कीर्त्यते ।
 यवाष्टकाङ्गुलैः कल्पः प्रकर्षेणायतः किल ॥ २८ ॥

१. 'पीडिते: ।' ख. ग. पाठः । २. 'रपि ।' क. ख. पाठः । ३. 'कार', ४. 'सुमतिर्मणिमध्यन्तं', ५. 'रयेत्' ६. 'शुभान्तं सर्वं' ७. 'राप्रतः' ख. ग. पाठः । ८. 'सदा चैतस्य संभवेत्' ख. ग. पाठः ।

ज्येष्ठो हस्तः स विद्विदः प्रोक्तः प्राशयसंज्ञितः ।
 यः पुनः कल्पितः समयवकल्पैरिहाइगुर्लः ॥ २९ ॥

तज्ज्ञः स मध्यमो हस्तः साधारण इति स्मृतः ।
 मात्रेत्यल्पं यतः प्रोक्तं हस्तश्च शय उच्यते ॥ ३० ॥

तेन मात्राशयः स स्याद्दस्तो यः पञ्चवाइगुर्लः ।
 विभागायामविस्ताराः खेत्रामपुरादिषु ॥ ३१ ॥

प्रासादवेशपरिखादाररथ्यासभादिषु ।
 मार्गीशं निर्गायैश्चैषां सीमक्षेत्रान्तराणि च ॥ ३२ ॥

वनोपवनभागाश्च देशान्तरविभक्तयः ।
 योजनक्रोशगव्यूतिप्रमाणमपि वाचनः ॥ ३३ ॥

प्राशयेन प्रमातव्याः खातककचराशयः ।
 तलोच्छ्रयान् मूलपादान् जलोदेशानधः धितेः ॥ ३४ ॥

तथा दोलाम्बुशस्त्रादि पातेमानविनिर्णयम् ।
 शैलखातेनिकेतानि सुरुक्षामानयान्तरम् ॥ ३५ ॥

साधारणेन वौद्यव्यवमानं च परिकल्पयेत् ।
 आयुधानि धनुर्दण्डान् यानं शयनमासनम् ॥ ३६ ॥

प्रमाणं कूपवापीनां गजानां वाजिनां वृणम् ।
 अरघटेष्वयन्त्राणि युग्यूपहलानि च ॥ ३७ ॥

शिलप्युपस्करनौष्ठवजातोद्यानि यानि च ।
 वृसीधर्मोपकरणपटवानादिकं च यत् ॥ ३८ ॥

नेलवदण्डास्तथा मात्राशयहस्तेन मापयेत् ।
 भेदत्रयान्वितमपि प्रोक्तं हस्तस्य लक्षणम् ॥ ३९ ॥

संज्ञामेदोऽथ सामान्यमानानां प्रतिपाद्यते ।
 स्यादेकमहगुर्लं मात्रा कला प्रोक्ताइगुर्लद्वयम् ॥ ४० ॥

पर्वं त्रीण्यइगुर्लान्याहुर्पृष्ठिः स्याद्वतुरल्गुला ।
 तलं स्यात् पञ्चमिः पद्मिः करपादाइगुर्लमेवेत् ॥ ४१ ॥

१. 'तयामाननि', २. 'तनियोतानि' ख. ग. पाठः । ३. 'धार्षं च मा'
 क. पाठः । ४. 'कीर्तयेत्' ख. ग. पाठः । ५. 'भल्द' क. पाठः ।

समभि(हीं दिं)षिरष्टाभिरह्युलैस्तूणिरिष्यते ।
 प्रादेशो नवभिस्तैः स्याच्छयतालो दशाह्युलः ॥ ४२ ॥
 गोकर्ण एकादशभिर्वितस्तिर्द्वादशाह्युला ।
 चतुर्दशभिरुद्धिष्ठः पादो नाम तथाह्युलः ॥ ४३ ॥
 रत्रिः स्यादेकविशत्या स्यादरत्रिः करोनिमितः ।
 द्वाचत्वारिंशता किष्कुरह्युलः परिकीर्तिः ॥ ४४ ॥
 चतुरुत्तरयाशीत्या व्यामः स्यात् पुरुषस्तथा ।
 पण्णवत्याह्युलैश्चापं भवेन्नाडीयुगं तथा ॥ ४५ ॥
 शतं पहुचरं दण्डो नल्वस्त्रिशद्दनुर्मितः ।
 क्रोशो धनुः सहस्रं तु गव्युतं तद्दद्यं विदुः ॥ ४६ ॥
 चतुर्गव्युतं मिच्छन्ति योजनं मानवेदिनः ॥
 एकं दश शतमस्मात् सहस्रमनु चायुतम् ॥ ४७ ॥
 नियुतं प्रयुतं तस्मादर्दुदन्व्यर्दुदे अपि ।
 वृन्दखर्वनिखर्वाणि शङ्कुपश्चाम्बुराशयः ॥ ४८ ॥
 ततः स्यान्मध्यमन्त्यं च परं चापरमप्यतः ।
 परार्थं चेति विज्ञेयं दशवृद्धयोत्तरोत्तरम् ॥ ४९ ॥
 सङ्घचास्थानानि कथितान्यवेष्टतानि विश्वातिः ।
 इदानीं कालसङ्घचायाः प्रगणमभिधीयते ॥ ५० ॥
 द्वृनिमेषो निमेषः स्यात् तैः पञ्चदशभिः स्मृता ।
 काष्ठा ताभिः कला ताभिर्गुह्यत्वं स्तैरहर्निशम् ॥ ५१ ॥
 त्रिंशतैतत् त्रिकं विद्यात् क्रमादित्युत्तरोत्तरम् ।
 अदोरात्रैः पुनः पञ्चदशभिः पक्ष उच्यते ॥ ५२ ॥
 पञ्चदशेन मासः स्याद् भवेन्मासद्वयाद्वतः ।
 त्रितुत्त्रयं स्यादयनं वत्सरस्त्वयनद्वयम् ॥ ५३ ॥
 दशधायमिति प्रोक्तः कालः कालविदां वरैः ।
 इत्युक्तमेतदग्निलं करमानमत सम्यक्तया निगदितापि च कालसङ्घच्या ।
 अन्तःपुरं जनपदामरथामयार्गेऽराचक्षमहे नगरसंप्रविभागमत ॥ ५४^१_२ ॥
 इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
 हस्तलक्षणं नाम नवमोऽध्यायः ॥

१. 'व्यूतिः त', २. 'त' क. पाठः।

अथ पुरनिवेशो दशमोऽव्यायः ।

पुरस्य त्रिविधस्यापि प्रमाणमथ कथ्यते ।
 प्राकारपरिखाद्वालद्वाररथ्याध्यभिः सह ॥ १ ॥

ज्येष्ठं तत्र चतुश्चापसहस्रं पुरमिष्यते ।
 मध्यं द्वाभ्यां सहस्राभ्यामेकेन व्यासतोऽध्यम् ॥ २ ॥

साष्टमांशं सपादं वा सार्वं वा व्यासमायतम् ।
 कुर्यादेककमीयामं चतुर(स्त्री?श्री)कुतं शुभम् ॥ ३ ॥

चतुःपष्ठिपदाख्येन पुरं सर्वं प्रकल्पयेत् ।
 द्विरष्टकोष्ठं तत् कुर्यात् पद्यथं नवचत्वरम् ॥ ४ ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे ग्रागुदीच्यन्तमागताः ।
 चतुर्भागान्तरा वंशाः कार्यास्तस्य त्रयस्त्रयः ॥ ५ ॥

वंशपदकविभक्तेऽस्मिन् पद्योऽदशकान्विते ।
 राजमार्गः शुभः कार्यो मध्यमं वंशमाश्रितः ॥ ६ ॥

कार्यो ज्यायसि (च) ज्यायांश्चतुर्विंशतिकः करैः ।
 विंशत्या मध्यमे मध्योऽध्यमे पोदशकोऽध्यमः ॥ ७ ॥

बलस्य चतुरङ्गस्य पौराणां पार्थिवस्य च ।
 असम्बाधसम्बैषं कार्योऽयं काश्मशकरः ॥ ८ ॥

महारथ्याद्वयं कार्यं तैदुपान्तस्थवंशयोः ।
 तद् द्वादश दशाष्टौ स्यात् करान् ज्येष्ठादिकं त्रिषु ॥ ९ ॥

पदमध्यगतं कार्यं यानमार्गचतुष्टयम् ।
 ज्येष्ठादिषु पुरेष्वेषु तत्पद्यं च चतुःकरम् ॥ १० ॥

उपरथ्या महामार्गस्यार्थं वा द्विशयाधिकम् ।
 शेषा रथ्यास्तदर्थेन विद्यातव्याः प्रमाणतः ॥ ११ ॥

यानमार्गचतुष्कस्य कार्यो पार्थिद्वयाश्रितो ।
 पदाष्टकपदान्तस्थौ द्वौ द्वौ जड्हनपयावपि ॥ १२ ॥

१. 'मासास्थं च' ग. पाठः । २. 'शतिभिः क' पाठः । ३. 'चतुःप्रान्त' ।
 ४. 'स्यार्थस्वादिस्या' ख. ग. पाठः ।

पुरे ज्येष्ठे तिहस्तौ तौ मध्यमेऽर्थकरोऽज्ञतौ ।
 मध्यमादर्धहस्तेन हीनौ स्थातां कनीयसि ॥ १३ ॥
 पुरस्यान्तर्गतौ कार्यौ घण्टामार्गौ तथापरौ ।
 राजमार्गंगुणोपेतौ प्रमाणेन च तद्विधौ ॥ १४ ॥
 प्राक्प्रत्यग्यायताः सप्तदशं गर्वा इतीरिताः ।
 याम्योच्चरायतास्तद्वद्दन्वे स्युस्तत्प्रमाणतः ॥ १५ ॥
 घण्टामार्गंप्रमाणेन घण्टामार्गस्य वाह्यतः ।
 समन्ततो वप्रभुवं स्थापयेत् तद्विधानेवित् ॥ १६ ॥
 महारथ्याप्रमाणेन तद्भूमेर्वाहितस्ततः ।
 व्यासखातान्तरैः सार्वं विदेयं परिस्वाद्रयम् ॥ १७ ॥
 खातोत्पादोऽज्ञाते कार्यं सम्बन्धेनार्थोऽपि वा ।
 व्यासतः स्वादेषेण मूलवस्तद्वदेव तत् ॥ १८ ॥
 कुर्याद् वप्रं स्वभूमागे परिस्वात्प्रात्यात्या मृदा ।
 सोत्सङ्गं गजपृष्ठं वा गोत्रीयपदताडितम् ॥ १९ ॥
 खातोद्वृत्तमृदा वंशनिर्याणाभिक्या तदः ।
 भूमदेशान् पुरा निन्नानापूर्यं समतां नयेत् ॥ २० ॥
 एवं संशोध्य परिस्वात्रितवं परितोऽज्ञमिः ।
 विदेयमिष्टकाभिर्वा सम्बन्धद्वत्तें स्थिरम् ॥ २१ ॥
 सिरावारिभिरापूर्णं पूर्णं वाग्याग्निनान्वसा ।
 विचित्राद्वजमनोहारि १ सर्संग्राहान्वुनिर्गमम् ॥ २२ ॥
 सर्वपार्थेष्वथेतस्य गन्धान्वयवुपाजनान् ।
 सुपनोविटपारामान् कुर्याद् वासान् समुत्सकान् ॥ २३ ॥
 वाह्यमागं पुनस्तस्य विद्व्यात् सर्वतोदिशम् ।
 द्रुममूलैर्लताजालैः कण्ठकैरपि संहृतम् ॥ २४ ॥

१. 'नवत्' ख. पाठः । २. 'व्यासः' ख. ग. पाठः । ३. 'गोत्रीय' क. पाठः ।
 ४. 'तलस्थितम्' ख. ग. पाठः । ५. 'द्वादशकन्त्तकान्' (?) क. पाठः ।

* गोत्रीयपदताडितं गोत्रा गोत्रमूहः तदीयैः पदैस्ताडितं प्रहतम् ।

६. 'समाहं साम्बुनिर्गमम्' इति पादः पात्रः ।

वप्रोर्ध्वभागं पद्यं स्थूलोपलंशिलाचितम् ।
 कुर्यात् प्राकारमुद्दामं यदा पक्वेष्टकामयम् ॥ २५ ॥

ज्यायान् कर्द्वादशभिर्दशभिर्मध्यमः स्थितः ।
 कनीयानष्टभिर्हस्तैर्विस्तारः स्यात् त्रिवेत्यसौ ॥ २६ ॥

उच्छ्रायः सप्तदशभिः कर्ज्यायान् प्रशस्यते ।
 मध्यमः पञ्चदशभिस्त्रयोदशभिरन्तिमः ॥ २७ ॥

ऊर्ध्वं न सप्तदशकान्न त्रयोदशकादधः ।
 प्राकारोच्छ्रायभिच्छन्ति नापि युग्मकरोन्मितम् ॥ २८ ॥

हस्तैःस्तेऽद्यगुलद्वन्द्वमायतः सम्यगुच्छ्रायात् ।
 यस्य वा द्वादशकरा मूले भवति विस्तृतिः ॥ २९ ॥

चतु(रस्तो?हस्तो)च्छ्रितिस्तस्य शिरः स्याद् दशविस्तृतम् ।
 हस्तोच्चं कपिशीर्षं स्याद् द्विहस्ता काण्डवारिणी ॥ ३० ॥

कार्याः कर्णाश्रितैर्द्वारकर्णान्तस्थैश्च संयुताः ।
 प्राकारेऽद्वालकास्तस्मिन् दिक्षुदिक्षु चतुर्दिशम् ॥ ३१ ॥

द्विभौपांश्चरिकोर्ध्वं च प्राकारोच्छ्रायविस्तृतीन् ।
 तदैर्धं निर्गमान् कुर्यात् ससालाद्वालकानथ ॥ ३२ ॥

शतं शतं स्याद्दस्तानां मिथश्चाद्वालकान्तरम् ।
 इत्थं पुरमगम्यं स्यात् पत्यभरथदन्तिनाम् ॥ ३३ ॥

चरिकां संचरद्वारां सुखारोहां सवेदिकाम् ।
 ससोपानां सनिर्यूहां कुर्यात् सकपिशीर्षकाम् ॥ ३४ ॥

राजमार्गमहारथ्यासंश्रितानि चतुर्दिशम् ।
 त्रीणि त्रीणि विधेयानि पुरे द्वाराणि तद्विदा ॥ ३५ ॥

राजमार्गमहाद्वारचतुष्कं विस्तरान्वत् ।
 अष्टौ सप्त करानोर्व्या द्विगुणं त्रिकरोज्ज्ञतम्(?) ॥ ३६ ॥

महारथ्याश्रयं द्वारं तत् पदपञ्चचतुष्करम् ।
 उच्छ्रायात् सार्थसार्थकहस्तोनं विस्तरेण तत् ॥ ३७ ॥

१. 'ज्येष्ठः क' क. पाठः । २. 'यत् स्यात्,' ३. 'हस्ता', ४. 'करोष्टिम्'

ल. ग. पाठः ।

कुर्यात् प्रतोलीः सर्वेषु महाद्वारेभ्यो ददाः ।
 हृष्टार्गलाशेन्द्रकीलाः कलाऽपरिधान्विताः ॥ ३८ ॥
 राजमार्गसमां शाका राज्ञर् प्रतोलीविनिर्गमां ।
 तदर्थं कोष्ठकान्तः स्याद् व्यासैऽद्यर्थं तयोः स्मृतः ॥ ३९ ॥
 चतुरश्चापिति न्यस्य ग्रतोली वदनायतम् ।
 व्यासनस्यंशविन्यस्तवागां भूषाद्यान्विताम् ॥ ४० ॥
 अन्तभित्तौ चतुर्ढां यजाहरेण समितय् ।
 विकल्पकोष्ठकान्तेषु दार्शनिस्तद् विशृष्टयेत् ॥ ४१ ॥
 द्वारे चांभयतःशाले द्वे द्वे द्वारे च यूषयोः ।
 ते कार्यं सम्मुखे व्यासाद् दिक्करे द्विगुणोच्छ्रृते ॥ ४२ ॥
 (पैत)हार्षमूषयोः पूर्वाद्य व्यक्तरोच्छ्रृतम् ।
 तद्वत् कार्यो द्विगुणा भूषाद्यान्विताम् ॥ ४३ ॥
 बहिर्दारविनिर्मुक्तां पूर्ववत् सोऽप्रकल्पयेत् ।
 पुरःसंगोधनसंडग्याधैऽवाद्याम् ॥ ४४ ॥
 तलं ततो महाद्वारस्योन् च दृष्टः तृतीयकम् ।
 रोधनद्वारयुग्मसंकुलं सप्ताक्षरम् ॥ ४५ ॥
 सन्न्यस्तस्तम्भवेचन्यदृथं तस्योपकल्पयेत् ।
 व्यालजालशत्वन्यस्तुल्यन्वादिभिर्वृतम् ॥ ४६ ॥
 द्विदिशोभामिणुस्त्रीं शुरस्य मविकल्पयेत् ।
 वृहद्द्वाराणि परित्वितलाभिः प्रतोलिभिः ॥ ४७ ॥
 प्रतोलया ददित्वाद् भागादुच्छ्रृतो वामतो गतः ।
 यावद् द्वितीयं तत्पार्वतकः कार्यो वहिः स्थितः ॥ ४८ ॥
 द्वितीयो वामगानाद् तु निर्वित्वस्यैव वेष्टकः ।
 कार्यः स्याद् तदुत्पात्वात् वाक्यरूपस्य वालतः ॥ ४९ ॥
 एतयोरन्तरालं च रज्ञानान् समितय् ।
 कर्तव्यं स्यादित्वैव तु वरद्वारस्युत्तमम् ॥ ५० ॥

१. 'मः' स. ग. पाठः । २. 'मः' क, 'मात्' ख. पाठः । ३. 'सो वृदंत' ख. पाठः । ४. 'त्वे यद् दा' स. ग. पाठः । ५. 'तु मू', ६. 'वदा का' ख. पाठः ।

दृष्टा दृष्टोपभोगार्हान् सरिदिरिजलाशयान् ।
पश्चाद्गारणि कुर्वति स्वेच्छवा तत्र तत्र च ॥ ५१ ॥

जलभ्रमान् पुरे कुर्याद्विकाहास्तिरोहितान् ।
द्विकरान् करमात्रान् वा साम्यस्तेऽस्मिन् प्रदक्षिणान् ॥ ५२ ॥

छिन्नकर्णं विकर्णं च वज्रं घूनीकुलं तथा ।
वर्तुलं व्यजनाकारं चापाङ्गुलिष्ठं च यत् ॥ ५३ ॥

शकटद्विसमं यच्च विस्ताराद् द्विगुणायतम् ।
विदिकस्थं सर्पचक्रं च तद् पुरं लिन्दितं भवेत् ॥ ५४ ॥

छिन्नकर्णं वस्त्र्णोकः पुरे तस्करायो भवेत् ।
व्याधिभ्यो वापरेभ्यो वा प्राप्नोतीति विनिदिशेत् ॥ ५५ ॥

विद्विष्टस्वामिता सर्वलोकगार्हीनप्रथमा ।
जायन्ते स्वल्पमायुष्यं प्रिक्षीप्तवृद्धिगम्य ॥ ५६ ॥

स्त्रीजयं विषरोगांश्च भेदांश्च विदिशाश्च ।
जनो वसन्नवास्त्रोति वज्राङ्गुलिष्ठं पुरे ॥ ५७ ॥

व्रजन्ति प्राणिनो नाशं अद्विष्टाविषरिषीहिताः ।
निवसन्तः सदा मूर्चीहुतापात्रात् पुरे ॥ ५८ ॥

स्वामिना सह हीयन्ते सर्वतः सञ्चयोजिताः ।
स्वल्पायुषश्च जायन्ते जना वृत्तसुराश्रयाः ॥ ५९ ॥

असत्यवादिनः स्वल्पायुषः परनपीडिताः ।
जनाः स्युश्चलचित्ताश्च नगरे व्यजनाकृतो ॥ ६० ॥

दुश्चरित्राङ्गनायुक्तस्तथा वहनशुंसकः ।
चापाकारे पुरे लोको विवलन् भवति ध्रुवम् ॥ ६१ ॥

रोगशोकानलस्तेनभयं तत्र ग्रजायन्ते ।
शकटद्विसमाकारं पुरं तद् विनिवेशने ॥ ६२ ॥

आरम्भासिद्विदं विषयदर्द्दं वृत्तिलेद्वृत्त ।
पौराणां स्वामिनश्च स्याद् वज्रवाजिष्ठापादवद्म् ॥ ६३ ॥

१. 'विस्ताराद् द्विगुणायतः' (?) क. पाठः ।

परैराक्रम्य भुज्येत तत् पुरं वलशालिभिः ।
 द्विगुणायतसंस्थानं यत् कवचिद् विनिवेश्यते ॥ ६४ ॥
 जनक्षयोऽप्रिदाहश्च स्त्रीकृतानि भयानि च ।
 पुरे भवति दिव्यमूढे न च नियोगमेति तत् ॥ ६५ ॥
 शैख्वानिलपिशाचाप्रिभूतयक्षभयादिताः ।
 रुक्मीडिताथ नश्यन्ति भुजङ्गकृतिले जनाः ॥ ६६ ॥
 पुराणामप्रशस्तानि संस्थानानीहशानि यत् ।
 एकस्मिन्नपि तेनैषां न पुरं विनिवेशयेत् ॥ ६७ ॥
 संस्थानमेकमप्येषां प्रमादात् क्रियते यदि ।
 तदा राष्ट्रं निर्धीड्येत श्रुद्विषज्ञतिमृत्युभिः ॥ ६८ ॥
 शास्त्रज्ञः स्थपतिस्तस्मात् प्रयत्नपरया धिया ।
 यथावत् कथितं चौरु नगरं विनिवेशयेत् ॥ ६९ ॥
 वेदीनिवेशयात्रायां देवागाराभिचारयोः ।
 नदीकर्मणि मैत्रे च शान्तिं कुर्याच्छ्रेष्ठु च ॥ ७० ॥
 यज्ञे पुरनिवेशे च स्थापने प्रयतः सुधीः ।
 कुर्यात् तथाभ्युदयिकं यद्वान्यदपि किञ्चन ॥ ७१ ॥
 पुरे भीतिकरं शश्वदनायुष्यमपौष्टिकम् ।
 कृतमप्रयतैः कर्म नृपतिग्रं च जायते ॥ ७२ ॥
 विहितं यदशास्त्रज्ञैर्यच निर्लक्षणैः कृतम् ।
 कृतमप्रयतैर्यच तदशस्तं फलोज्जितम् ॥ ७३ ॥
 शास्त्रज्ञः स्थपतिज्योतिर्विदा तद्वत् पुरोधसा ।
 अधिष्ठितः पुरे कर्म विद्ययाच्छान्तिकेषु च ॥ ७४ ॥
 पुरोहितोऽप्रिं जुहुयाद् दद्यान्मौहूर्तिकः स्थिरम् ।
 स्थपतिश्च वलिं दद्याद् योजयेदिति शान्तिकम् ॥ ७५ ॥
 तदा तस्मिन् पुरे शान्तिर्यत्र मर्मस्थिताः सुराः ।
 पूज्यन्ते सततं पौरैश्वत्वरस्थायिनस्तथा ॥ ७६ ॥

१. 'सत्वामिनः पि' २. 'रुक्मीडाभिष्व' ख. ग. पाठः । ३. 'चात्र न' क.
 पाठः । ४. 'यां वेदागा' ग. पाठः । ५. 'यतैः कर्म त' क. पाठः । ६. 'तम्' ख. ग. पाठः ।

चतुःप्रकारं स्थापत्यमष्टुधा च चिकित्सतम् ।
घनुर्वेदश्च सप्ताङ्गो ज्योतिषं कमलालयात् ॥ ७७ ॥

सामान्यलक्षणोत्पातनिमित्तानि च सर्वशः ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च त्यजन्त्येते न तत् पुरम् ॥ ७८ ॥

नगरस्य विभागोऽयं यथावत् समुदीरितः ।
खेटं तदर्धविष्कम्भमाहुर्ग्रामं तदर्थतः ॥ ७९ ॥

योजनेन पुरात् खेटं खेटाद् ग्रामं प्रचक्षते ।
गव्युतिपरिमाणेन ग्रामाद् ग्रामं प्रचक्षते ॥ ८० ॥

द्विक्रोशाद् विषये सीमा तदर्थेन पुरस्य सा ।
खेटके पुरसीमार्थं ग्रामे खेटार्थतः स्मृता ॥ ८१ ॥

त्रिशद्दनूंपि विष्कम्भः पुरे दिग्बर्त्मसु स्मृतः ।
विंशतिः खेटके मार्गो ग्रामे दश च दशितः ॥ ८२ ॥

नैव ग्रामसहस्राणि नवति(अ?ञ्च) प्रचक्षते ।
चतुःषष्ठिमपि ग्रामान् ज्यायो राष्ट्रं विदुर्बुधाः ॥ ८३ ॥

देशार्थं च सहस्राणि ग्रामाणां त्रिशती तथा ।
ग्रामाश्चतुरशीतिश्च मध्यमं राष्ट्रमीरितम् ॥ ८४ ॥

सहस्रमेकं ग्रामाणां तद्वच्च शतपञ्चकम् ।
त्यूना च ग्रामपञ्चाशत् कनीयो राष्ट्रमुच्यते ॥ ८५ ॥

अध्यर्थसहस्र्यैतेषां ज्येष्ठमध्यकनीयसाम् ।
विधाय नवरथैकं विभजेद् विधिवत् सुधीः ॥ ८६ ॥

राष्ट्रेष्वेवं विभक्तेषु यथाभागं विधानवित् ।
निवेशयेत् पुराण्येषु सप्त सप्त यथागेमम् ॥ ८७ ॥

विभागश्च ग्रामाणं च लक्षणं चादिमस्य यत् ।
जातिवर्णाधिवासश्च यथावत् तदिहोच्यते ॥ ८८ ॥

सुवर्णकारानाग्रेय्यां तथा वहन्युपजीविनः ।
निवेशयेत् कर्मकरानन्यानपि विधानवित् ॥ ८९ ॥

१. 'तत्र ग्रा', २. 'दश द्वे च', ३. 'त्यूनाच्च ग्रा' ख, ग' पाठः । ४. 'कम' क. पाठः ।

वैश्यानामक्षधृतानां चक्रिकाणां च दक्षिणे ।
 नयानां नर्तकानां च यृहाणि विनिवेशयेत् ॥ ९० ॥
 निवेशयेत् सौकरिकान् मे(यी?पी)कारान् मृगच्छदः ।
 कैवर्तान् नैऋताशायां दमनाधिकृतांस्तथा ॥ ९१ ॥
 रथेषु कौशलं येषां येषां स्यादायुधेषु च ।
 वारुण्यां दिशि तान् सर्वान् पुरस्य विनिवेशयेत् ॥ ९२ ॥
 कर्मस्वधिकृता ये च ये चापि परिकर्मिणः ।
 शौण्डिका ये च तान् सर्वान् वायोर्दिशि निवेशयेत् ॥ ९३ ॥
 यतीनामाश्रयान् ब्रह्मवत्सानां च तथा सभाम् ।
 प्रपाश एष्यशालाश्र कुर्याद् दिशि धनेशितुः ॥ ९४ ॥
 घृतविक्रियिणो ये च फलविक्रियिणश्च ये ।
 निवेशिताः प्रशस्यन्ते पुरस्येशानदिग्मताः ॥ ९५ ॥
 पूर्वभागे वलाध्यशान् राज्ञो मुख्यांस्तथा वले ।
 निवेशयेत् तथाग्रेष्यां वलं नानाविधं सुधीः ॥ ९६ ॥
 श्रेष्ठिनो दक्षिणाशायां तथा देशमहत्तरान् ।
 याम्येकहारान् (?) कुर्वीत तथा कक्षुभि निर्कृतेः ॥ ९७ ॥
 कोशपालमहाभातादेशिकान् कारुकानपि ।
 नियामकांश कुर्वीत सलिलाधिपतेऽदिशि ॥ ९८ ॥
 वायोः कक्षुभि कुर्वीत दण्डनायान् सनायकान् ।
 पुरोहितज्योतिषिकानुत्तरस्यां निवेशयेत् ॥ ९९ ॥
 विप्राः सौम्यां दिशो भागे क्षत्रियाः शक्रदिग्मताः ।
 वैश्यशूद्रास्तु कर्तव्या दक्षिणापरयोः क्रमात् ॥ १०० ॥
 निधेया वणिजो वैद्या मुख्याश्चापि चतुर्दिशम् ।
 चतुर्दिशं विशेषेण स्थापयीत वलानि च ॥ १०१ ॥
 नगरस्य वहिः प्राच्यां लिङ्गस्थान् विनिवेशयेत् ।
 शमशानानि तथा तत्स्वान् याम्यायां स्थपतिः सुधीः ॥ १०२ ॥

सर्वतोदिशमुद्दिष्टो विभागो नगरे यथा ।
 तथा ग्रामेषु खेटेषु सेनायाश्च निवेशने ॥ १०३ ॥

नगराभिमुखीं कार्यां संपूर्णाङ्गमेहोदयां ।
 द्वारे द्वारे सौम्यमुखीं लक्ष्मीविश्रवणीं शुभां ॥ १०४ ॥

राष्ट्रं खेटमथ ग्रामं १ पश्यन्तेत्पुरं महत् (?) ।
 तत्रारोग्यार्थसंसिद्धीं प्रजाविजयमादिशेत् ॥ १०५ ॥

क्षेत्रवन्धवधैर्लोकाः स्युमिथः सूत्रहिसकाः ।
 ग्रामं खेटं पुरं राष्ट्रं यदेतां नैव पश्यतः ॥ १०६ ॥

स्थाप्यन्ते ये यथा देवा नगरे सर्वतोदिशम् ।
 बाह्यान्तरासु भूमीषु वृमहे तानतःपरम् ॥ १०७ ॥

चतुर्दिशं सपारभ्य ग्राकारपरिखान्ततः ।
 वहिः शते शते सार्थे धनुषां द्विशतेऽपिच ॥ १०८ ॥

धनुःशतमितैः शुद्धरनिन्द्यर्थरणीतलैः ।
 स्वस्वप्रासादयुक्तानि स्वस्वातुगण्ठः सह ॥ १०९ ॥

निवेशनानि कुर्वीत त्रिदशानां यथाक्रमम् ।
 नगराभिमुखं चित्रवनभाज्ञि शुभानि च ॥ ११० ॥

याम्योत्तरायतं वंशं विकल्पपुरमध्यगम् ।
 वहिरन्तश्च कुर्वीत देवानां विनिवेशनम् ॥ १११ ॥

प्राच्यां प्रत्यहमुखान् कुर्यात् प्राहमुखांशाम्बुभृदिशि ।
 याम्योदक्षपार्वयोस्तस्य प्रादक्षिण्येन वंशगान् ॥ ११२ ॥

दक्षिणस्यां न कुर्वीत त्रिदशानप्युद्दमुखान् ।
 चैत्यशान्तिसभा यक्षमातृप्रेशमयान्विताः (?) * ॥ ११३ ॥

इत्यमी कथिताः सम्यग् ये यथादिमुखाः सुराः ।
 दिक्षु दिक्षु वहिर्ये स्युस्तानिदानीं प्रचक्षमहे ॥ ११४ ॥

१. 'सहोदरै ।', २. 'श्यन्तेषु पु', ३. 'प्रापद' स. पाठः | ४. 'प्रमथया क. पाठः ।

§ 'पश्यतस्तौ पुरं च यत्' इति पठनीयं भाविति ।

* 'प्रमथपान्विताः' इति पठनीयं भाविति ।

विष्णोदिनाधिनाथस्य सहस्रनयनस्य च ।
 धर्मस्य च विधातव्यं दिशि प्राच्यां निकेतनम् ॥ ११५ ॥
 सनत्कुमारसावित्र्योर्मरुतां मारुतस्य च ।
 पूर्वदक्षिणदिग्भागे विदधीत निकेतनम् ॥ ११६ ॥
 गणेशमातृभूतानां याम्ये प्रेतपतेर्गृहम् ।
 भद्रकाल्याः पितृणां स्याद् वेशम् चैत्यं च नैऋते ॥ ११७ ॥
 सागरस्य नदीनां च शिलिप्यमर्तुः प्रजापतेः ।
 निलयं पथिमाशायां विदध्याद् वरुणस्य च ॥ ११८ ॥
 फणिनां भवनं कार्यमपरोत्तरदिग्मगतम् ।
 शैनश्वरस्य चात्रैव कात्यायन्याश्च मन्दिरम् ॥ ११९ ॥
 विशाखस्कन्दसोमानां तथा यक्षाधिपस्य च ।
 पृथक्पृथग् विधातव्याः प्रासादाः सौम्यदिग्मताः ॥ १२० ॥
 जगद्गुरोर्महेशस्य श्रियो वद्वेश मन्दिरम् ।
 पूर्वोत्तरस्यां ककुभि प्रविधेयं मनोरमम् ॥ १२१ ॥
 नदीनामम्बुधीनां च समन्तान्नगरस्य च ।
 कान्तारेष्वद्विषु स्थानं सर्वत्रेष्टमुपापतेः ॥ १२२ ॥
 निवेश्यन्ते स्वदिग्भागेष्वेवं यस्मिन् सुरोत्तमाः ।
 सम्यक्समृद्धिमासाद्य चिरं नन्दिति तत्पुरम् ॥ १२३ ॥
 नगरस्य विद्वरेऽपि ककुप्सु निखिलास्वपि ।
 वाश्वतोऽभिमुखा देवाः शस्यन्ते न पराङ्मुखाः ॥ १२४ ॥
 क्रियते यदि भूभागे वंशेन स पराङ्मुखः ।
 विधिमेन तदा तस्मिस्तज्ज्ञः शास्त्रोक्तमाचरेत् ॥ १२५ ॥
 तद्वेष्वर्णभूषास्त्रवाहनैरन्वितं सुरम् ।
 तद्वित्तौ प्रकटाकारं नगराभिमुखं लिखेत् ॥ १२६ ॥
 वैकल्पतशमीविलवैः क्षीरकण्टकिभिर्द्रुमैः ।
 उदपानाग्न्यगारेषु स्यान्न दोषोऽन्तरस्थितेः ॥ १२७ ॥
 अर्चाश्रितेष्वयं प्रोक्तो विधिर्नालेख्यवतिंषु ।
 कर्तव्याः भवतोवक्त्रास्तस्याधित्तगताः सुराः ॥ १२८ ॥

विधानं यद् यथा प्रोक्तं सुरधान्नां पुराद् वहिः ।
 तत् तथाभ्यन्तरेऽपि स्यात् कार्यं स्वस्वदिगात्रयम् ॥ १२९ ॥

मध्ये पुरस्य कर्तव्यं गृहमभोजजन्मनः ।
 निवेशनं तथेन्द्रस्य तथैव हलिकृष्णयोः ॥ १३० ॥

मातृयक्षगणाधीशान् शिवकान् भूतसंहृकान् ।
 विनापि वेशमभिः कुर्यात् पुरे चत्वरमार्गगान् ॥ १३१ ॥

राजा वर्णाश्रमकलापण्यशिल्पोपजीविनः ।
 स्वदिवपदस्थाः कर्तव्यास्ते देवाश्चेच्छता त्रियम् ॥ १३२ ॥

प्रासादे सति भक्तीच्छाशक्तियुक्तो यदापरम् ।
 प्रासादे कारयेत् पूर्वं न तदा पीडयेत् सुधीः ॥ १३३ ॥

प्रतिवेशम् प्रतिग्रामं प्रतिदेवकुलं तथा ।
 कुर्यात् प्रतिपुरं चापि न प्राङ्मानगुणाधिकम् ॥ १३४ ॥

पूर्वप्रासादतो रुद्रसोपयोर्वैक्षणोऽथवा ।
 प्रासादे विहितेऽन्यस्मिन् भवेत् पीडाग्रजन्मनाम् ॥ १३५ ॥

कृते धाम्यधिकेऽन्यस्मिन् वहेवाचल्पतेरुत ।
 पुरोधसां भयं विद्याद् ध्रुवं ज्योतिर्विदां तथा ॥ १३६ ॥

धनाधिपापराधीशयमानां वरुणस्य वा ।
 अधिके विहिते धान्ति भयं विद्यान्महीपतेः ॥ १३७ ॥

स्कन्दधान्नोऽधिकेऽन्यस्मिन् विहिते तस्य वेशमनि ।
 सेनापतेर्वलानां च पीडा सज्जायते ध्रुवम् ॥ १३८ ॥

प्रजापतेरभ्यधिकं हरेवान्यत् कृतं गृहम् ।
 कर्तुः कारयितुश्च स्याद् वन्धायै च विनष्टये ॥ १३९ ॥

गणेशयक्षफणिनामधिकोऽन्यः कृतो यदि ।
 प्रासादः स्यात् तदा नित्यं सेनाज्ञानां महद्वयम् ॥ १४० ॥

हीनामन्यो देवतास्तासां पीडयन्ते यदि वेशमभिः ।
 मुख्यानां पुरनारीणां तदा कुर्वन्त्युपद्रवम् ॥ १४१ ॥

१. 'संहकाल', २. 'वाय वि' ल. पाठः ।

पूर्वामरेषु सर्वेषु पीडितेष्वमरालयः ।
 अन्यैस्तलिङ्गिनां पीडा चैत्यर्वा चैत्यपीडितः ॥ १४२ ॥
 हीनाधिकप्रमाणेषु दुनिविष्टेषु धामसु ।
 कर्तुः कारयितुः पीडा स्यान्न पूजा तथास्य च ॥ १४३ ॥
 नैवानिसंभृतं कुर्यात् स्वल्पमल्पामरालयम् ।
 धुरं चानाश्रितं कुर्याद् वेदभागाश्रितं नच ॥ १४४ ॥
 ज्येष्ठमध्यकनिष्ठानि नवपद्मिपदान्तरे ।
 सुखेभ्मानि कुर्वात् दोषायापरथा पुनः ॥ १४५ ॥
 कथितोऽयं विधिः स्वैः स्वैखिदशानां निवेशने ।
 वहिनिवेशनात् स्वेच्छं विदध्यादमरालयम् ॥ १४६ ॥
 नगरेषु समग्रेषु ग्रामेषु निखिलेषु च ।
 खेटकेषु च सर्वेषु सामान्योऽयं विधिः स्मृतः ॥ १४७ ॥
 इत्युक्त एष नगरोपगतः सुराणां
 स्वस्वप्रभागविहितः पदमन्तिवेशः ।
 त्रूपो विभागमधुना गृहदेवतानां
 सम्यक् शुभाशुभफलप्रविभागयुक्तम् ॥ १४८ ॥

इति महाराजाधिगजञ्चभीजदेवविरचितं समराङ्गसूत्रभारापरनाभिन वास्तुशास्त्रे

पुरनिवेशो दशमोऽध्यायः ॥

अथ वास्तुत्रयविभागो नामैकादशोऽध्यायः ।

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे विभक्ते नवधा ततः ।
 मध्ये महायुतिर्बद्धा विधेयो नवभिः पदैः ॥ १ ॥
 तस्मादनन्तरं प्राच्यां पट्टपदः कीर्तितोऽर्यमा ।
 आग्नेयकर्णे सवितृसावित्रौ पदिकावृभौ ॥ २ ॥

१. 'धुरं दानाशि' ख. पाठः ।

ब्रह्मणोऽनन्तरं याम्ये विवस्वान् पद्पदाश्रितः ।
नैर्जिते पंदिकौ कर्णे जयेन्द्रौ कथितावुभौ ॥ ३ ॥

पद्पदः स्यात् ततो मित्रः काष्टायां पत्युरम्भसः ।
कर्णेऽपरोचरे यक्षमा रुद्रश्च पंदिकावुभौ ॥ ४ ॥

षट्भिः पदैस्ततः सौम्ये निश्चलः पृथिवीधरः ।
आपस्तथापवत्सश्च पंदिकावीशदिग्मतौ ॥ ५ ॥

इत्यन्तःसंश्रया देवाः प्रोक्ता ब्रूमो वहिःस्थितान् ।
ज्ञेयं प्रदक्षिणं तेषां स्थानं पूर्वोत्तरादितः ॥ ६ ॥

अंगिस्तदनु पर्जन्यो जयन्तश्चेन्द्र एव च ।
रविः सत्यो भृशश्चेति नभस्तस्मात् ततोऽनिलः ॥ ७ ॥

पूषपाल्यो वितथारुद्यश्च गृहक्षतयमावश्च ।
गन्धवौ भृङ्गराजश्च मृगः पितृगणस्ततः ॥ ८ ॥

दौवारिकोऽथ सुग्रीवः पुष्पदन्तो जलेश्वरः ।
असुरः शोषनामा च पापयक्षमा ततः परम् ॥ ९ ॥

रोगो नागश्च मुरुद्यश्च भङ्गाटः सोम एव च ।
चरकोऽथादितिर्दत्यमातेति पददेवताः ॥ १० ॥

वक्षेवायोः पितृणां च व्याधेश्चैव त्र्यमाद् वहिः ।
चरकी च विद्वारी च पूतना पां भृसी ॥ ११ ॥

पदभोगोऽस्ति नैतासां स्थानमेव केवलम् ।
पदभोगमय ब्रूमो वहिःस्थानां भःसदाम् ॥ १२ ॥

तत्राण्टौ द्विपदाधीशा जयन्तो भृश एव च ।
वितथो भृङ्गसुग्रीवशोपमुरुद्यास्तथादितिः ॥ १३ ॥

एभ्यः शेषा वहिर्ये तु ते स्युः पदभूजः सुराः ।
एकाशीतिपदे प्रोक्तो देवतानां पदक्रमः ॥ १४ ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे दशधा प्रविभाजिते ।
भवेन्द्रुतपदो वास्तुवृ॒मोऽ्वा॑प्यमरस्थितिम् ॥ १५ ॥

१. 'ईशस्त' ख. पाठः । २. '(जले द्विपः ?) जलाधिपः' क. पाठः ।

द्विष्टुगुणितं मध्ये पदमेकं पितामहः ।
 भुद्धके शतपदे वास्तौ चतुर्गुणितमर्गमा ॥ १६ ॥
 विवस्वतोऽथ मित्रस्य तद्वच पृथिवीभृतः ।
 भोगमिच्छन्ति वै तेषामर्यम्ण इव सूरयः ॥ १७ ॥
 सवित्राद्यापवत्सान्ता ये च नोक्ताः सुरोक्तमाः ।
 यथैकाशीतिके तद्वत् तेषां भोगः पदाष्टकम् ॥ १८ ॥
 अग्न्यन्तरिक्षपवना मृगश्च पितरोऽपिच ।
 रोगोऽदितिस्तथाध्यर्थपदभाजो वहिः स्थिताः ॥ १९ ॥
 चतुर्विंशतिरुक्ता ये पर्जन्याद्याः सुरोक्तमाः ।
 अदित्यन्ता द्विपदिकास्ते शेषं प्राक् प्रसाधितम् ॥ २० ॥
 चतुरश्चीकृते क्षेत्रे पूर्ववद् भाजितेऽष्टमिः ।
 चतुःपष्टिपदो वास्तुश्चतुःपष्टया पदैर्भवेत् ॥ २१ ॥
 अस्मिन् पदानि चत्वारि भूनक्त्यन्तः पितामहः ।
 अर्यमाद्याः सुराश्चात्र द्वे द्वे मध्यगताः पदे ॥ २२ ॥
 मध्येऽष्टौ वाश्वतोऽष्टौ ये स्थिताः कर्णेषु चाष्टमु ।
 ये देवाः सर्व एवात्र ते पदार्थसुजः स्मृताः ॥ २३ ॥
 पर्जन्योऽथ भूजः पूषा भृजदौवारिकौ तथा ।
 शोषनागादितिप्रान्ताः स्युरध्यर्थपदस्पृशः ॥ २४ ॥
 जैयन्तादिषु ६ वाहेषु चरकान्तेषु कीर्तिता ।
 प्रत्येकं षोडशस्वत्र सुरेषु द्विपदस्थितिः ॥ २५ ॥
 सिरां वह्निपदादूर्ध्वं नयेत् पितृपदान्ततः ।
 वाश्वाशानिर्गतां चैनां रोगनामानमानयेत् ॥ २६ ॥
 द्विनाम्नः प्रापयेद् भृजं भृजात् सुग्रीवमानयेत् ।
 ततोऽदितिं तां गमयेद् द्विनामानं प्रवेशयेत् ॥ २७ ॥

१. 'रः ऋयः ।', २. 'स्तैः' क. पाठः । ३. 'द्विनामादि' ख. पाठः ।

६. 'द्विनामादिभ्व' ति पाठे द्विनामशब्दो जयन्तपर्यायः ।

सौराद् याम्यं पदं नीत्वा वारुणं प्रापयेत् ततः ।
 नयेत् पदं ततः सौम्यं तत आदित्यमानयेत् ॥ २८ ॥

भृशादानीय वितथं शोषास्त्र्यं वितथादथ ।
 शोषास्त्र्युख्यं समानीय नयेत् तस्मात् पुनर्भृशम् ॥ २९ ॥

ये विभागाः समुद्दिष्टा यथासङ्घचेन तैरिह ।
 यज्ञामरवृणां वास्तुं समस्तं विभजेत् सुधीः ॥ ३० ॥

देवैः सर्वेरप्यमीभिर्विशोकः प्रीत्युत्कर्षादित्थमालोक्यतेऽसौ ।
 कुत्स्नानेषोऽप्यब्जपत्रायताक्षः पश्यत्येतान् स्फारितेनेक्षणेन ॥ ३१ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशाखे
 वास्तुत्रयविभागो नाम एकादशोऽध्यायः ॥

अथ नाड्यादिसिरादिविकल्पो नाम द्वादशोऽध्यायः ।

अथोभिधीयते वास्तुः कनीयान् पोडशास्पदः ।
 पदैः पोडशमिः स स्यात् तत्र देवान् प्रचक्ष्यहे ॥ १ ॥

भुइक्ते मध्ये स्थितो मुख्यः पदमेकं सुरोत्तमः ।
 कलृसं पदचतुर्भागेत्तुर्भिर्विश्वतुराननः ॥ २ ॥

पदार्धभागभोक्तारश्चत्वारोऽमी सुरोत्तमाः ।
 अर्यमा च विवस्वांश्च मित्रश्च क्षमाधरोऽपिच ॥ ३ ॥

सवित्राद्यापवत्सान्ता येऽष्टौ कोणेषु वेधसः ।
 चतुर्भागभुजस्ते स्युत्तिदशास्तपनत्विषः ॥ ४ ॥

चतुर्थी(थी?वी)शादिकोणेषु ये स्थिताः क्रमशः सुराः ।
 अष्टमागभुजस्तेऽष्टौ विनिर्दिष्टा मनीषिभिः ॥ ५ ॥

ये तथादितिपर्यन्ताः पर्जन्याद्याः सुरोत्तमाः ।
 तेऽष्टौ चतुर्भागभुजो विद्विनिरिह कीर्तिताः ॥ ६ ॥

१. 'रुणां' क. पाठः । २. 'थो विधी', ३. 'तुष्टीसादि' (?)ख. पाठः ।

चरकान्ता जयन्ताद्या ये वाह्यस्थितयोऽमराः ।
 भोगोऽर्धपदिकस्तेषां पोदशानामपि स्मृतः ॥ ७ ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे त्रयस्त्रिंशद्विभाजिते ।
 अन्त्यपद्मकिद्वयं सार्थं चरक्याद्यर्थमुत्सुजेत् ॥ ८ ॥
 अन्तरे वीथिकामर्धपदिकामुत्सुजेत् ततः ।
 मध्ये तु सप्तविंशत्या भागैर्वास्तु विभाजयेत् ॥ ९ ॥
 एकोनत्रिंशता युक्तं पदानां शतसप्तकम् ।
 यद् भवेत् तत गर्भे स्यादेकाशीतिपदः स्वभूः ॥ १० ॥
 अष्टादशपदाशाष्टौ चाप्रभृतयः पृथक् ।
 अर्यमाद्यं चतुःपञ्चाशत्पदं स्याच्चतुष्टयम् ॥ ११ ॥
 ईशाद्यस्त्वदित्यन्ता वाहा नवपदाः सुराः ।
 देशानां सन्निवेशोऽसौ साहस्रो वास्तुरुच्यते ॥ १२ ॥
 अथोच्यते वृत्तवास्तुर्वृत्तप्रासादहेतवे ।
 एकश्चतुःपष्टिपदभौगः शतपदोऽप्यैरः ॥ १३ ॥
 अष्टया भाजिते वृत्तविष्कम्भे भागिकान्तरान् ।
 चतुरः परिधीन् कुर्यान्मध्यवृत्तं द्विभागिकम् ॥ १४ ॥
 स्याद् वहिर्वृत्तवलयमष्टाविंशतिभागिकम् ।
 तदन्तर्वृत्तवलयमष्टांशोज्जितं क्रमात् ॥ १५ ॥
 एवं कृते भवेन्मध्ये ब्रह्मणस्तच्चतुष्पदम् ।
 इत्थं चतुःपष्टिपदो वृत्तवास्तुरुदाहतः ॥ १६ ॥
 दशधा भाजिते वृत्तविष्कम्भे भागिकान्तरोः ।
 कार्याः परिधयः पञ्च मध्ये वृत्तं द्विभागिकम् ॥ १७ ॥
 बहिस्थं वलयं तस्य भजेत् पद्मत्रिंशता ततः ।
 शेषं चतुःपष्टिपदस्थित्या स्याच्छत्वास्तुनि ॥ १८ ॥
 देवतापदसङ्ख्यासिरनयोश्चतुरश्रवत् ।
 एवं कार्यवशात् कार्या वास्तवोऽन्येऽपि धीमता ॥ १९ ॥

१. 'न्ते पदकित्यं' क. पाठः । २. 'स्त्रयोः श' ३. 'चरः' ख. पाठः ।
 ४. 'वृत्तविष्कम्भे विभक्ते भा' ५. रात्, ६. 'स्याद्वृत्तवा' क. पाठः ।

ऋषे पठश्रे चाष्टाश्रे पोडशाश्रे च वृत्तवत् ।
वृत्तायतेऽर्थचन्द्रे च वास्ती पदविभाजनम् ॥ २० ॥

एक एव पुमानेषु वहुधा परिकल्पितः ।
सर्वस्मिन्नपि संस्थाने विभक्ते लक्षयेत् ततः ॥ २१ ॥

शरीरं वास्तुपुंसोऽस्य गुणंदोपा भवन्ति यत् ।
मुखं मूर्धा ततः श्रोत्रे इक्ताल्वोऽगुरदाः क्रमात् ॥ २२ ॥

वक्षः कण्ठः स्तनौ नाभिर्मद्गुण्कावथो गुदम् ।
वाहू प्रवाहू पाणी स्फिग्गूरुजङ्घं पदद्यम् ॥ २३ ॥

कल्पयेदेवमेतेन स भवेत् पुरुषाकृतिः ।
सिरावंशानुवंशाश्च सन्धयः सानुसन्धयः ॥ २४ ॥

मर्माण्यथ महावंशा लक्ष्या वास्तुशरीरगाः ।
सिराः कर्णगता याः स्युस्ता नाड्यः परिकीर्तिः ॥ २५ ॥

पदस्य पोडशो भागस्तत्प्रमाणं प्रकीर्तिंतम् ।
महावंशौ प्राक्प्रतीच्यौ याम्योदीच्यौ च मध्यगां ॥ २६ ॥

प्रमाणं पञ्चमो भागः पदस्योदाहृतं तयोः ।
वंशास्तेऽस्मिन् समुद्दिष्ट रेखा याः स्युमुखायताः ॥ २७ ॥

यास्तिर्यगायता रेखास्तेऽनुवंशाः प्रकीर्तिः ।
सम्पाता ये स्युरेतेषां मर्म तत् संप्रचक्षते ॥ २८ ॥

उपमर्माणिं तान्याहुः पदमध्यानि यानि हि ।
भागोऽष्टमोऽस्य दशमो द्वादशः पोडशोऽपिच ॥ २९ ॥

पदतो मानमिष्ट स्याद् वंशादीनामनुक्रमात् ।
वंशाष्टकस्य यः सन्धिः स सन्धिगति कीर्तिः ॥ ३० ॥

ये पुनः स्युस्तदङ्गानां प्रोक्तास्ते चानुसन्धयः ।
वालाग्रतुलयं सन्धीनां प्रमाणं परिचक्षते ॥ ३१ ॥

तदर्थमनुसन्धीनां प्रमाणं समुदीरितम् ।
यत्रैनैतानि सन्त्यज्य वास्तुविद्याविशारदः ॥ ३२ ॥

द्रव्याणि प्रयतो नित्यं स्थपतिर्विनिवेशयेत् ।
 महावंशस्य नाकान्ति कुयाद् द्रव्येण केनचित् ॥ ३३ ॥
 इतरेषु पुनर्द्रव्यं मध्यवंशेषु सन्त्यजेत् ।
 महावंशसमाकान्तौ भवेत् स्वामिवदो ध्रुवम् ॥ ३४ ॥
 वर्षेण तपनाद् भीतिं वंशानां पीडनाद् विदुः ।
 उपमर्माणि रोगाय मर्माणि कुलहानये ॥ ३५ ॥
 उद्गेगायार्थनाशाय सिराश्च स्युः प्रपीडिताः ।
 कलिः स्यात् सन्धिविद्धेषु पीडितेष्वनुसन्धिषु ॥ ३६ ॥
 तस्मादेतानि सर्वाणि पीडितान्युपलक्षयेत् ॥ ३६_१_२ ॥
 ज्ञात्वा सिराः सानुसिराश्च नार्दीवशानुवंशानपि वास्तुदेहे ।
 यत्रेन मर्माणि फलानि चैषां वेदं त्यजेद् यस्तमुपैति नापत् ॥ ३७_१_२ ॥
 इति महायाजाधिराजश्चभीजदेवविवरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशाखे
 नार्दीवशानुवशानां सिरानुसिराममानुमर्मवेधविकल्पो नाम
 द्रादशोऽध्यायः ॥

अथ मर्मवेधस्त्रयोदशोऽध्यायः ।

एकाशीतिपदो यः स्यात् तथा शतपदश्च यः ।
 चतुःषष्ठिपदो यश्च वास्तुरत्र त्रिधोदितः ॥ १ ॥
 यद् येन विभजेत् तेषु तदिदानीं प्रचक्षमहे ।
 यानि मर्माणि चैतेषां कथ्यन्त इह तान्यपि ॥ २ ॥
 वर्णिनां भवनार्दीनि निवेशा राजवेशमनाम् ।
 एकाशीतिपदेनेन्द्रस्थानं च विभजेत् सुधीः ॥ ३ ॥
 प्रासादा विविधास्तद्वद् विचित्रात्मात्र मण्डपाः ।
 तान् मापयेच्छतपदप्रविभागेन बुद्धिमान् ॥ ४ ॥

यः पुनः स्याज्ञतुः पश्चिपदस्तेन विभाजयेत् ।
 नरेन्द्रशिविरग्रामखेटादि नगरादि च ॥ ५ ॥

अन्तस्त्रयोदश सुरा द्वार्तिंशद् वाहतश्च ये ।
 तेषां स्थानानि मर्माणि सिरा वंशाश्च तेषु तु ॥ ६ ॥

मुखे हृदि च नाभौ च मूर्खि च स्तनयोस्तथा ।
 मर्माणि वास्तुपुंसोऽस्य पण्डहान्ति प्रचक्षते ॥ ७ ॥

वंशानुवंशसम्पाताः पदमध्यानि यानि च ।
 देवस्थानानि तान्याद्ये पद्योदशकान्विते ॥ ८ ॥

देवस्थानानि सम्पाताश्रतुः पश्चिपदे पुनः ।
 तथैकाशीतिपदिके पदान्तशतिकेऽपि च ॥ ९ ॥

चतुर्थपि विभागेषु सिरा याः स्युश्चतुर्दिशम् ।
 मर्माणि तानि चोक्तानि द्वारमध्यानि यानि च ॥ १० ॥

भिन्निविस्तृतमध्येन यद्वा मध्यन दारुणः ।
 मर्म यत् पीड्यते येन गृहे तत्रोच्यते फलम् ॥ ११ ॥

द्वार्तन्वा भिन्नभिर्वापि मर्मणां परिपीडनात् ।
 दौर्गत्यं युहिणः प्राहुः कुलदानिमथापि च ॥ १२ ॥

भवेत् स्वामिक्षयः स्तम्भस्तुलाभिः स्त्रीपरिक्षयः ।
 स्तुषावधो जयन्तीभिर्वन्युनाशश्च सह्यद्यैः ॥ १३ ॥

मर्मस्थानगतैः कायैर्भर्तुः कायो निपीड्यते ।
 सुहृदिश्लेषमिच्छन्ति सन्धियालैश्च तद्विदः ॥ १४ ॥

नागपाशैर्धनोच्छेदो नागदन्तैः सुहृत्क्षयः ।
 कपिच्छैकश्च मर्मस्थैः प्रेष्याणां ध्ययमादिशेत् ॥ १५ ॥

पद्मारुकाण्यनुसिरागवाक्षालोकनानि च ।
 मर्ममध्योपगान्येतान्यावहन्ति धनक्षयम् ॥ १६ ॥

द्वारद्रव्यतुलास्तम्भनागदन्तगवाक्षकैः ।
 द्वारमध्यादितैः रोगकुलपीडाधनक्षयाः (न) ॥ १७ ॥

१. ‘कायैर्भ’ क. पाठः ।

तृपदण्डमयं पत्युः पीडनं च प्रचक्षते ।
 द्वारमध्येषु पद्मासुमध्येष्वपि च मूर्यः ॥ १८ ॥
 कर्णद्रव्यादिभिर्विद्धेष्वेतदेव फलं विदुः ।
 शश्यानुवंशविहिता शृहिणां कुलनाशिनी ॥ १९ ॥
 क्षयावहा नागदन्ता भर्तुः शश्यावितानगाः ।
 बातायनैरथ स्तम्भये विद्वा नागदन्तकाः ॥ २० ॥
 ते शश्वभीतिदा भर्तुर्यदा चांगभयपदाः ।
 द्रव्यधान्यविनाशाय शोकाय कलहाय च ॥ २१ ॥
 गृहमध्यगतं द्वारं भवेत् स्त्रीदूषणाय च ।
 द्रव्यणान्यतरेणापि महाये निपीडितम् ॥ २२ ॥
 भवेत् सर्वस्वनाशाय शृहिणो मरणाय च ।
 अंशुकाशोऽर्ववंशाश्च तुम्बिकाः सन्दकीलकाः ॥ २३ ॥
 पुरप्रासादगेहानां वेष्टयेते न दोषदाः ॥ २३^१ ॥
 इत्थं सुरक्षितिपवर्णगृहाश्रितोऽयं
 भेदः पद्मविलमर्मगता व्यधश्च ।
 उक्तः पृथक्पृथगमुष्य फलं च सम्यग्
 त्रूपोऽथ वास्तुपुरुषाङ्गविभागमत्र ॥ २४^१_२ ॥

इति महाराजाविग्रहश्चाभोजदेवाविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनामिन वास्तुशास्त्रे
 पर्वेशां नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥

अथ पुरुषाङ्गदेवतानिधण्डादिनिर्णयश्चतुर्दशोऽध्यायः ।

देवतानां पद्मसित्यं संविमत्तेः पृथग्विद्यः ।
 स्थपतिः प्रयतः कुर्याद् वास्तुमित्यं गुमाकृतिम् ॥ १ ॥
 शिरस्तस्याविरुद्दिष्टं हष्टिर्दित्यम्बुदाधिपौ ।
 जयन्तथादितिथास्य कर्णो वायुमुखे स्थितः ॥ २ ॥

१. 'नि', २. 'श्यावहान' क, पाठः । ३. 'मर्मणि पीडिते ।', ४. 'बा'
ए, पाठः । ५. 'श्वाधंवंशास्तु तु' क, पाठः ।

अर्कः स्याद् दक्षिणे वामे भुजे सोमः प्रतिष्ठितः ।
 महेन्द्रचरकौ सापवत्सावस्योरसि स्थितौ ॥ ३ ॥

स्तनेऽर्यमा दक्षिणे स्याद् वामे च पृथिवीधरः ।
 यक्षमा रोगश्च नागश्च मुख्यो भलाद इत्यमी ॥ ४ ॥

दक्षिणेतरमेतस्य वाहुं देवाः समाश्रिताः ।
 सत्यो भूशो नभो वायुः पूषा चेत्यथ दक्षिणम् ॥ ५ ॥

पञ्चापि वाहुमेतस्य संश्रितास्त्रिदिवौकसः ।
 सावित्रसवितार्गौ च रुद्रशक्तिधरावपि ॥ ६ ॥

चत्वारोऽमी क(लाधि?फोणि)स्याः करयोर्हृदि च स्वभूः ।
 वितर्यैकःक्षतौ पार्श्वे दक्षिणेऽस्य व्यवस्थितौ ॥ ७ ॥

वामे पुनः स्थितावस्य देवौ शोपासुराभिर्घाँ ।
 मित्राभिर्घो विवस्वांश्च द्वावप्युदरमाश्रितौ ॥ ८ ॥

मेहूमध्यस्थितावस्य सुराविन्द्रजयाभिर्घाँ ।
 यमश्च वरुणश्चोर्वाः कमाद दक्षिणवामयोः ॥ ९ ॥

गन्धर्वभृङ्गौ समृगौ जड्हां सव्यामथेतराम् ।
 द्वास्थसुग्रीवपुष्पाख्याः संश्रिताः पितरोऽङ्गिराः ॥ १० ॥

एकाशीतिपदस्येशादिग्निभागाश्रितं शिरः ।
 माहेन्द्रीसंश्रितं विद्याच्चतुःपष्टिपदस्य तु ॥ ११ ॥

एकाशीतिपदाज्ञातो वास्तुः शतपदाभिर्घाँ ।
 यः पोदशपदः स स्याच्चतुष्पष्टिपदोऽद्वः ॥ १२ ॥

मध्ये य एव देवानां स्थितो ब्रह्माव्यसंभवः ।
 स सहस्राननोऽचिन्त्यविभवो जगतां प्रभुः ॥ १३ ॥

योऽयं वक्षिरिहोक्तः स सर्वभूतहरो हरः ।
 पर्जन्यनामा यश्चायं वृष्टिमानम्बुदाधिपः ॥ १४ ॥

जयन्तस्तु द्विनामाख्यः कश्यपो भगवानुपिः ।
 महेन्द्रस्तु सुराधीशो दनुजानां विमर्दनः ॥ १५ ॥

आदित्यं पुनरिच्छन्ति विवस्वन्तमहस्करम् ।
 सत्यो भूतहितो धर्मो भूशः कामोऽथ मन्मथः ॥ १६ ॥

योऽन्तरिक्षः स्मृतो देवस्तन्नभः समुदाहृतम् ।
 मारुतो वायुरुदिष्टः पूरा मातृगणः स्मृतः ॥ १७ ॥
 अथर्वा वितथार्लयः स्यात् कलेरप्रतिमः सुतः ।
 वृहक्षतः पुनर्योऽत्र स चन्द्रतनयो चुधः ॥ १८ ॥
 प्रेताधिपो मतः श्रीमान् यमो विवस्वतश्च सः ।
 गन्धवो भगवान् देवो नारदः परिकीर्तिः ॥ १९ ॥
 भृजराजमिहेच्छन्ति राक्षसं निर्कृतेः सुतम् ।
 यो मृगोऽस्मिन्बनन्तः स स्वयंभूर्धर्म इत्यपि ॥ २० ॥
 पितरस्तु स्मृता देवाः पितॄलोकनिवासिनः ।
 स्मृतो द्वौवारिको नन्दी ब्रह्मथानामधीश्वरः ॥ २१ ॥
 आदिः प्रजापतिः स्वष्टा मनुः सुग्रीव ईरितः ।
 पुष्पदन्तमतु विनतातनयः स्यान्महाजवः ॥ २२ ॥
 वरुणः पाथसाँ नाथो लोकपालः स कीर्तिः ।
 असुरो गाहृर्केन्दुमर्दनः मिहिकात्मजः ॥ २३ ॥
 शोषमन्तु भगवानेष मृथ्युपुत्रः शर्णश्वरः ।
 पापयक्षमा क्षयः ग्रोक्तो गोगस्तु कथितो ज्वरः ॥ २४ ॥
 भुजङ्गमानामधिपः श्रीमान् नागस्तु वासुकिः ।
 त्वष्टा स्यान्मुख्यसंज्ञोऽत्र विभक्तमाभिधश्च सः ॥ २५ ॥
 चन्द्रो भल्लाट ३ इत्युक्तः कुवेरः सोमसंज्ञितः ।
 चरको व्यवसायार्लयः श्रीरिहादितिसंज्ञिका ॥ २६ ॥
 दिनिरत्रोच्यते शर्वः शुलभृद् वृषभध्वजः ।
 हिमवानाप इत्युक्त आपत्त्वम् उमा स्मृता ॥ २७ ॥
 आदित्यस्त्वर्यमा वेदमाता सावित्र उच्यते ।
 * देवी गङ्गाव विद्वद्दिः सवितेति प्रकीर्तिः ॥ २८ ॥
 मृत्युः शरीरहर्तासां विवस्वानिति स स्मृतः ।
 जयाभिधस्तु वज्रीति स्यादिन्द्रो वलवान् हरिः ॥ २९ ॥

१. 'ब्रह्मा म' क. पाठः ।

३. 'भल्लाट' इति प्राक् पाठः ।

* इति आरभ्यार्थपञ्चकं ख. पुस्तके न पञ्चते ।

पित्रो हलधरो माली रुद्रस्तूको महेश्वरः ।
 राजयक्षमा गुहः प्रोक्तः क्षितिग्रोऽनन्त उच्यते ॥ ३० ॥

चरकी च विदारी च पूतना पापराक्षसी ।
 रक्षोयोनिभवा हेता देवतानुचरीविंदुः ॥ ३१ ॥

इत्येष वास्तुदेवानां निषण्डुः परिकीर्तिः ।
 क्षो मूर्खिं हो दशोर्मध्ये सो ग्राणे चिह्नके तु पः ॥ ३२ ॥

शः कण्ठे हृदये वः स्याल्कारो नाभिदेशगः ।
 रेफो वस्तौ यकारस्तु मेदे मः * (पुष्ट्य?मुष्ट्य)कावुभौ ॥ ३३ ॥

नकार ऊरुणों जानु जकारः पिण्डिकाश्रितः ।
 (हृ?ङ्क)कारो गुल्फ्योरन्ते पकारोऽङ्गितले स्मृतः ॥ ३४ ॥

उक्तानि वास्तुपुरुषस्य यथावदित्थमङ्गानि वास्तुपददैवतनामभेदाः ।
 वर्णाश्च वास्त्ववयवेष्विह पोडशैव ब्रूमोऽथ दैवतवयेन पुरे निवेशम् ॥ ३५ ॥

इति महागजाधिगजश्चीमोजदेवविरचिते समराङ्गासूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
 पुरुषाङ्गदेवतानिषण्डक्षराङ्गनिर्णयो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥

अथ राजनिवेशो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।

कृते पुरनिवेशोऽथ चतुःषष्ठिपदाश्रये ।
 नियुक्तपरिखासालगोपुराङ्गालकेऽपिच ॥ १ ॥

विभक्तरथ्ये परितः प्रविभाजितचत्वरे ।
 क्रमादन्तर्वद्धिः कलूपदेवतायतनस्थितौ ॥ २ ॥

प्रागुदक्षिणे देशे प्राग्छाराभ्युन्नतेऽथवा ।
 यशः श्रीविजयाधायि मैत्रं पदमधिष्ठितम् ॥ ३ ॥

यथावर्णक्रमायातं चतुरश्च समं शुभम् ।
 पुरमध्यादपरतोदिकस्थं कुर्यान्तपालयम् ॥ ४ ॥

१. 'म' क. पाठः । २. 'डगुल्फगृष्णकारोऽङ्गोः सिकारोऽङ्गित्र (?)' ख. पाठः ।
 ३. 'निवासम्' क. पाठः । ४. 'वर्ण' ख. पाठः ।

* 'पुष्ट्यकावि'ति क. पाठः, 'पुष्ट्यकावि'ति ख. पाठशाशुद्धौ । ग. पुस्तके तु पत्रे लसम् ।

दुर्गेषु भूवशात् कार्यं यदा दिक्ष्वपरास्त्वपि ।
 विवस्वदभूवरायैषां कार्यमन्यतमे पदे ॥ ५ ॥
 त्रिचत्वारिंशता युक्ते ज्येष्ठं स्याद् द्वे धनुःशते ।
 मध्यं शतं तु द्वापष्टिः शतं साष्टकमन्तिमम् ॥ ६ ॥
 ज्येष्ठे पुरे विधातव्यं ज्येष्ठं राजनिवेशनम् ।
 मध्यमे मध्यमे कार्यं कनिष्ठं च कनीयसि ॥ ७ ॥
 प्राकारपरिखागुप्तं चारुकान्ति समन्ततः ।
 तमज्ञभ्रमनिर्यहसुद्वाद्वालकान्वितम् ॥ ८ ॥
 एकाशीत्या पर्दर्भक्तं विधेयं नृपमन्दिरम् ।
 राजमार्गं समाश्रित्य वास्तुद्वारमुद्दमुखम् ॥ ९ ॥
 युक्त्यानयेव कर्तव्यमन्यदिक्संश्रेष्ठपिच ।
 भल्लाटपदवत्यस्य गोपुरद्वारमिष्यते ॥ १० ॥
 तत्पुरद्वारविस्तारोच्छ्रायसम्मितपिष्ठदम् ।
 महेन्द्रं द्वारमिच्छन्ति निविष्टस्य महीधरे ॥ ११ ॥
 वैवस्तते पुष्पदन्तमर्यमिणं च गृहक्षतम् ।
 अन्येष्वेषामपरतः प्रदक्षिणपदेष्वथ ॥ १२ ॥
 अन्यान्यपि स्वासु दिक्षु द्वाराण्येवं प्रकल्पयेत् ।
 आभिमुख्ये च सर्वेषां शस्यन्ते गोपुराणि च ॥ १३ ॥
 तदीयनगरद्वाराद् विशत्यंशोज्जितानि वा ।
 पश्चद्वाराणि सुग्रीवे जयन्ते मुख्यनाम्नि च ॥ १४ ॥
 वितथेऽथ भ्रमांस्तदद् विदधीत प्रदक्षिणान् ।
 वास्तौ विभक्ते पुरवत् कल्मेऽमरपदव्रेजः ॥ १५ ॥
 तत्र गैत्रपदस्थाने निवेशायावनीपतेः ।
 प्रासादः प्राहमुखः कार्यो यथावत् पृथिविञ्चयः ॥ १६ ॥
 श्रीरूपं सर्वतोभद्रं मुक्तकोणमथापरम् ।
 यमिच्छेन्नृपतिः कुर्यात् प्रासादं शुभलक्षणम् ॥ १७ ॥

१. 'व्रेजः ।' ल. पाठः। २. 'वीजयः' क. पाठः।

शालापरिकमोपेतकर्मान्तैरपिचान्वितम् ।
 तत्र प्राच्यां भवेद् गेहमादित्यपदसंश्रितम् ॥ १८ ॥

धर्माधिकरणं सत्ये व्यवहारेक्षणाय च ।
 भृशे च कोष्टागारं स्थादम्बरे मृगपक्षिणाम् ॥ १९ ॥

अग्नेः कुभमाश्रित्य कार्यं वायोर्महानसम् ।
 सभाजनाश्रयं पूष्णि विदध्याद् भोजनास्पदम् ॥ २० ॥

साधित्रे वायशाला स्थात् सवितृस्थात्र वन्दिनः ।
 चर्माणि वितथे कुर्यात् तद्योग्यान्यायुधानि च ॥ २१ ॥

स्वर्णरूप्यादिकर्मान्तान् विदधीत गृहक्षते ।
 याम्ये दक्षिणतो गुर्सिं कोष्टागारं च कल्पयेत् ॥ २२ ॥

प्रेक्षासङ्गीतकानि स्वर्गन्धर्वे वासवेशम् च ।
 कार्या वैवस्वते शाला रथानां दन्तिनां तथा ॥ २३ ॥

पथिमोत्तरभागस्थां वापीमपिच कारयेत् ।
 वा(यौ)युसुग्रीवपदयोर्गन्धर्वस्य च वाहतः ॥ २४ ॥

कुर्यादन्तःपुरस्थानं प्राकारबलयाच्छ्रुतम् ।
 कुर्यात् तद्वोपुरद्वारमुदगास्ये जयामिथे ॥ २५ ॥

कार्यः स्थपतिना चैव प्रासादश्चापराइमुखः ।
 क्रीडादोलालयान् भृशे कुमारीभवनं तथा ॥ २६ ॥

तृपान्तःपुरमिच्छन्ति मृगे पित्र्ये त्ववस्करम् ।
 तृपक्षीणामुपस्थानगृहमिन्द्रपदे विदुः ॥ २७ ॥

सुग्रीवपदसंसक्तमरिष्टागारमिष्टदम् ।
 द्वास्थसुग्रीवपि(च्यंच्यां)शपथाद्वागे मनोइरा ॥ २८ ॥

विधेयाश्चोकवनिका स्नानधारागृहाणि च ।
 लतामण्डपसंयुक्ताः स्युरत्वैव लतागृहाः ॥ २९ ॥

दारुशैलाश्च वाप्यश्च पुष्पवीथ्यः सुकलिपताः ।
 पुष्पदन्ते भवेदैय(त्तन्त्र)कर्मान्तः पुष्पवेशम् च ॥ ३० ॥

१. 'णः' ख, पाठः । २. 'कार्यं', ३. 'स्था', ४. 'ल', ५. 'दन्तः क' क, पाठः ।

वरुणस्य पदे कुर्याद् वापीपानगृहाणि च ।
 स्यात् कोष्टागारमसुरे शोषे त्वायुथमन्दिरम् ॥ ३१ ॥
 भाण्डागारं तु रौद्राख्ये विद्ध्यात् स्थपतिः श्रिये ।
 उलूखलशिलायन्त्रभवनं पापयक्ष्मणि ॥ ३२ ॥
 दामकर्मान्तमप्याहुः श्रेयसे राजयक्ष्मणि ।
 स्यादोपयेरघिष्ठानं रोगे दिशि नभस्वतः ॥ ३३ ॥
 नागानां शस्यते स्थानं पदे नागस्य सूरिभिः ।
 भवन्ति मुख्ये व्यायामनाश्चित्रगृहाणि च ॥ ३४ ॥
 गवां स्थानं तथा क्षीरगृहं भल्लाटनामनि ।
 उदकप्रदेशे सौम्यस्य पुरोथः स्थानमिष्यते ॥ ३५ ॥
 राज्ञोऽभिषेचनं चात्र दानाद्ययनशान्तयः ।
 चामरचलत्रधाम स्यान्मन्त्रवेशम् च भूधरे ॥ ३६ ॥
 कार्यिणां चात्र कार्याणि स्थितः पश्यन्नराघिपः ।
 विधेया मन्दुराश्वानामुत्तरं पार्वत्याश्रिता ॥ ३७ ॥
 महीधरपदस्यव यथावद दक्षिणामुखी ।
 कार्या सर्वत्र चाश्वानां शाला राज्ञो यथागृहम् ॥ ३८ ॥
 विशनो दक्षिणेन स्याद् वायेन च विषाणिनाम् ।
 वेश्मानि राजपुत्राणां विद्ध्याचरकाभिषेचने ॥ ३९ ॥
 अत्रैव विद्याधिगमशालाशैषां निवेशयेत् ।
 नृपस्य मातुरदितिस्थाने कुर्यान्विवेशनम् ॥ ४० ॥
 पृथगत्रैव शिविकाशश्यासनगृहं विदुः ।
 नृपद्विपानां शस्ता स्यादोपे सदनकल्पना ॥ ४१ ॥
 अभिषेचनकं स्थानमिष्यव स्याद् विषाणिनाम् ।
 आपवत्सपदे हंसकौशसारसनादिताः ॥ ४२ ॥
 स्युः कुलाच्चवनाः स्वच्छसलिलाः सलिलाश्याः ।
 पितृव्यपातुलादीनां कार्यं दितिपदे गृहम् ॥ ४३ ॥

१. 'राजाभिः' क, पाठः । २. 'न्वि' स, पाठः । ३. 'नभिद च' क, पाठः ।

अन्येषामपि चात्रैव सामन्तानां महीपतेः ।
ऐशान्यामनलस्थाने वोचिद्गृहस्तम्भवेदिकृष् ॥ ४४ ॥

कार्यं देवकुलं चारुं सुश्लिष्टमणिकुटिमृष् ।
र्जन्यस्य पदे होराज्योतिविद्युहमिष्यते ॥ ४५ ॥

जये सेनापतेर्वेशम् विधेयं विजयप्रदम् ।
द्वारं प्राकारमाश्रित्य पदेऽर्यमणः प्रशस्यते ॥ ४६ ॥

प्राग्दक्षिणाश्रितं शस्त्रकर्मान्तं शस्त्रमत च ।
विमुच्चेद् ब्रह्मणः स्थानमिन्द्रध्वजयुतं नृणाम् ॥ ४७ ॥

तत्राशुभानि वेश्मानि निवेशाश्चासुखावहाः ।
गवाक्षस्तम्भशोभिन्यो विधेयाश्चानुकामतः ॥ ४८ ॥

सभा यथादिकप्रभवा नृपतेशमाभिगुप्ते ।
सर्वत नृपतेः सौधान् नृपसौधस्य सम्मुखा ॥ ४९ ॥

पथाद्गागाश्रिता यद्वा शाळा कार्या विषाणिनाम् ।
इत्यास्पदं सुरपदास्पदकल्पमाद्य-

मेतद् यथावदनुतिष्ठति यः सदैव ।
स क्षमामिमां भुजवलक्षपितारिपक्षः
सप्ताम्बुराशिरशनां नृपतिः प्रशास्ति ॥ ५० ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गवृत्तधारापरनान्नि वास्तुशास्त्रे
राजनिवेशो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥

अथ वनप्रवेशो नाम पोडशोऽध्यायः ।

प्राग्वोदग्वापि गेहार्थे द्रव्यं विधिवदानयेत् ।
गन्तव्यमेव धिष्येषु* मृदुक्षिप्रचरेषु च ॥ १ ॥

१. 'त्र शु' क. पाठः ।

* धिष्येषु नक्षत्रेषु ।

उपवास्यं च तेष्वेवच्छेदं भेदं च दारुणः ।
 प्रवेशनं स्थिरैः कार्यमारभः शस्यते चरैः ॥ २ ॥
 गत्वा शुभे शुचौ देशे निवेशं कारयेत् ततः ।
 तस्मिन्निवेश्य कर्मान्तमन्त्रपानेन तर्पयेत् ॥ ३ ॥
 पुष्टुष्टपरीवारः क्षपायां समुपोषितः ।
 गृहयोग्यं परीक्षेत न्यस्तशस्ततोऽविष्यम् ॥ ४ ॥
 पुरश्मशानग्रामाध्वद्वैत्याश्रमोद्भवान् ।
 क्षेत्रोपवनसीमान्तर्विषमस्थलनिम्नजान् ॥ ५ ॥
 कुम्लतिक्कलवणास्ववनीषु तथोद्भवान् ।
 अभ्राहृतान् स्थिरोर्वीषु सम्भूतांश्च त्यजेद् द्रुमान् ॥ ६ ॥
 सम्यक् संलक्ष्य वृक्षाणां वर्णस्तेजस्त्वगादिकम् ।
 विजानीयाद् वयस्तेषां वालान् वृद्धांश्च सन्त्यजेत् ॥ ७ ॥
 शतानि त्रीणि वर्षाणां सारद्रुमवयः स्मृतम् ।
 गृहणीयात् षोडशादृश्वं सार्धवर्षशतावधेः ॥ ८ ॥
 वयसः परिणामेन निर्वार्यत्वं यथा तृणाम् ।
 प्रोक्तं तद्वद् द्रुमाणां च स्यात् तथा छिद्रपत्रता ॥ ९ ॥
 भद्रगुराः सुपिरास्ते स्युः सकोलाक्षाः खरत्वचः ।
 तस्मादिमांस्त्यजेद् वृक्षांस्तथा चैवोर्ध्वशोषिणः ॥ १० ॥
 वक्रान् रुक्षानवप्लुषान् दुःस्थितानपिच द्रुमान् ।
 वर्जयेद् भग्नशाखांश्च अक्षशाखान्वितांस्तथा ॥ ११ ॥
 अन्यैरधिष्ठितान् विगुत्यातवातेसरित्खतान् ।
 ग्रन्थिनिर्युक्तदानांश्च भ्रमराहिङ्कुताश्रयान् ॥ १२ ॥
 संसृष्टानेकतो भ्रग्नान् मधुभिर्विलभिर्वितान् ।
 मांसामेध्याशैस्तद्वद् दूषितानपि पक्षिभिः ॥ १३ ॥
 लृतातन्त्वाहृतान् वन्यसत्त्वोद्घृष्टान् गजक्षतान् ।
 बुभ्रोऽतिबृहत्स्कन्धांश्चिह्नभूतांस्तथाध्वनः ॥ १४ ॥

१. 'ताशनिश्च' ख. पाठः । २. 'भि' क. पाठः ।

अकाले पुष्पफलिनो रोगैरपि च पीडितान् ।
 वासभूतानुलकानां त्यजेदन्यानपीदशान् ॥ १५ ॥

खदिरो वीजकः सालो मधुकः शाकशिंश (पाँपे) ।
 सर्जिर्जुनाञ्जनाशोकाः कदरो रोहिणीतरुः ॥ १६ ॥

विकङ्क्तो देवदारुः श्रीपर्णीपादपस्तथा ।
 कुटुम्बिनामपी प्रोक्ताः शुष्टिदा जीवदास्तथा । १७ ॥

वृक्षाणां लक्ष्यते येषां भारवारिसहिष्णुता ।
 ते यथायोग्यमन्येऽपि शस्यन्ते गृहकर्मणि ॥ १८ ॥

कणिकारथवपुक्षकपित्थविपमच्छदाः ।
 शिरीषोदम्बराश्वत्थशेलुन्यग्रोथवम्पकाः ॥ १९ ॥

निम्बाम्रकोविदाराक्षव्याधियाताश्च गहिताः ।
 गृहकर्मणि नेष्टास्ते यतस्तेऽनिष्टदायिनः ॥ २० ॥

नेष्टाः कण्टकिनः स्वादुफलाः क्षीरद्रुमाश्च ये ।
 सुगन्धयश्च ये तद्रुद् धुवं तेषु पशुक्षयः ॥ २१ ॥

सत्त्वप्रमाणच्छाया तु नियतं दृश्यते यदा ।
 द्रुमच्छाया तदा ग्राहा तत्प्रमाणस्तु स द्रुमः ॥ २२ ॥

नक्षत्रं लक्षयेद् वृक्षे पूर्वस्यां दिशि तत्क्षतेः ।
 स्याद् भस्याद्यक्षरं यस्य तत्र जातं तमादिशेत् ॥ २३ ॥

क्षेम्यं तं स्वामिनो वृक्षं ज्ञात्वा साधकमेव च ।
 अग्रनिधिकोटरं स्त्रिघृष्मैर्जुं सारसमन्वितम् ॥ २४ ॥

पीनस्कन्धं हरितपत्रं वृत्तं चौभ्यर्थं पादपम् ।
 द्विजान् सन्तर्प्य च स्वस्ति वाच्यं च स्थपतिस्ततः ॥ २५ ॥

पकापवामिष्ठस्तद्वद् भूतमक्तः सुरासर्वैः ।
 गन्धैश्च धूपमालयैश्च वलिं दद्वान्निशागमे ॥ २६ ॥

अपक्रामन्तु भूतानि यानि वृक्षाश्रितानि हि ।
 कल्पनं वर्तयिष्यामि क्रियतां वासपर्ययः ॥ २७ ॥

१. 'राख्या विधेयास्ते च', २. 'मृक्षं चा', ३. 'वा' क. पाठः ।

धन्यः शिवः पुष्टिकरः प्रजावृद्धिकरो भव ।
 स्वस्ति (ते?च)न्द्रानिलयमाः सूर्यसूर्यानलास्तथा ॥ २६ ॥
 दिशो नद्यस्तथा शैलाः पान्तु त्वामृषिभिः सह ।
 जलपेद् यो मानुषगिरा कम्पते वाभिमन्त्रितः ॥ २७ ॥
 स त्याज्यः स्यात् तथा म्लानप्रवालकुसुपथं यः ।
 ततो भास्करमालोक्य वृक्षं कृत्वा प्रदक्षिणम् ॥ २८ ॥
 स्वस्तिवाक्येन विप्राणां छेचा स्थित्वोदगाननः ।
 प्रावृद्धमुखो वा तरुं छिन्द्याच्छ्वैः क्षीद्राद्रिताननैः ॥ २९ ॥
 शाखिनश्चिद्यमानस्य जायते यद्यस्त्वक्षुतिः ।
 कम्पनं वा ध्वनिर्वापि मृत्युः स्याद् गृहिणस्तदा ॥ ३० ॥
 यद्वा दधिमधुक्षीरघृतानि स्ववति द्रुपः ।
 लिघ्नमानस्तदा विद्याद् वन्धव्याधीन् कुटुम्बिनः ॥ ३१ ॥
 अतीव यस्य स्ववति इयामः स्नेहान्वितो रसः ।
 सुगन्धिः स्वल्पमधुरः कषायः स प्रशस्यते ॥ ३२ ॥
 प्राच्यां शुभस्तरोः पात उदीच्यां कर्मसाधकः ।
 याम्यग्रत्यङ्गनिपाते तु ज्ञानित कृत्वा द्रुमं त्यजेत् ॥ ३३ ॥
 ज्ञातितः स्यात् तदा भीतिर्यदान्यं मर्दयेत् पतन् ।
 दूरं दलति यो मू(लं?ले) छिन्नो वा धरणीरुहः ॥ ३४ ॥
 कूजत्यतीव वायुश्च स्पृतः सोऽथ शुभप्रदः ।
 खरोष्ट्रयोः श्रुगालानां दर्शनं भुजगस्य वा ॥ ३५ ॥
 छेदे स्यात् कर्मविग्नाय निगडैर्वन्धनाय वा ।
 हलचक्रपताकाङ्गध्वजच्छ्रवादिर्दर्शनम् ॥ ३६ ॥
 श्रीवृक्षवर्धमानादिर्दर्शनं वा शुभप्रदम् ।
 उत्क्षिप्यते यदिच्छेदात् तदद्धिः स्यात् कुटुम्बिनः ॥ ३७ ॥
 सर्वतः परिहानिः स्याच्छिन्नव्याक्षिप्यते यदि ।
 एकवृक्षे यथोदिष्टलक्षणोत्क्षेपदर्शने ॥ ४० ॥
 शेषान् दोषविनिर्मुक्तान् पादपानुपलक्षयेत् ।
 धीरस्तं कल्पयेत् सम्यग्नुलोमार्जवं तरुम् ॥ ४१ ॥

छिन्द्याच शुभभागांर्धदशभागाधिकं कृतम् ।
तुङ्गीसाद्यवमध्यश(?)सगर्भो धरणीरुहः ॥ ४२ ॥

ज्ञेयानि मण्डलान्यस्य त(तक्षणोच्छेदक्षणे छेद)दनेऽपि च ।
मञ्जिष्ठाभे विदुर्भेकं कपिलाभे च मूषकम् ॥ ४३ ॥

पीतभासि तथा गोधां सर्पं दीर्घसितायते ।
गुडच्छाये मधुं भवेत् कुकलासस्तथारुणे ॥ ४४ ॥

गृहगोधा कपोताभे गौधेरो धृतमण्डभे ।
रसाञ्जनाभे शस्त्राभे कमलोत्पलभासि च ॥ ४५ ॥

धौतासियष्टिवर्णे च मण्डले जलमादिशेत् ।
आकारो यस्य सर्पस्य वर्णो वा संप्रदृश्यते ॥ ४६ ॥

तं सर्पगर्भितं वृक्षमादिशेदविचारयन् ।
तस्करेभ्यो भर्यं क्षीद्रे सलिले सलिलाद् भयम् ॥ ४७ ॥

विद्यात् सर्पे विपाद् भीतिं पापाणे भयमवितः ।
अजाविगोमहिष्युष्टरासमादिनिर्पीडितम् ॥ ४८ ॥

गोधागौधेरमण्डकुकलासेत्रं गर्भिते ।
मूषके पुनरिच्छन्ति मरणं वास्तुवेदिनः ॥ ४९ ॥

अमुनैव वदन्त्यन्ये गृहपीडां मनीषिणः ।
क्षेमेण यद्यविग्रः स्यादसङ्गश्चागमो यदि ॥ ५० ॥

वनान्तरे तदा क्षेमं सुभिक्षं च समादिशेत् ॥ ५०^१_२ ॥

अर्घदानविधिना विधानविद् द्रव्यमागतमिहार्चयेद् गृही ।

प्रत्युपेत्तेकुलिशायुधध्वजं द्रव्यमुज्ज्वलमुतावनीपतिः ॥ ५१^१_२ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीमोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनामिन वास्तुशास्त्रे

वनप्रवेशो नाम पोडशोऽध्यायः ॥

१. 'तु' क. पाठः । २. 'गाँवे', ३. 'तुङ्गी स्याद्यवम(?)', ४. 'त्य' ख. पाठः ।

अथ इन्द्रध्वजनिरूपणं नाम सप्तदशोऽध्यायः ।

सुराणामर्थसिद्ध्यर्थं वथाय च सुरद्रुहाम् ।
 यथा शक्राध्वजोत्थानं प्राह ब्रह्मा तथोन्यते ॥ १ ॥
 भगवन्तमथाम्भोजसंभवं वचसांपतिः ।
 ग्रोवाच कथमिन्द्रेण जेतव्याख्विद्वाद्विषः ॥ २ ॥
 सोऽब्रवीत् सर्वरत्नानां ध्वजं कुरुत सङ्गताः ।
 तं चाभिचारिकैर्मन्त्रैरुद्घन्तोऽभिमन्त्रितम् ॥ ३ ॥
 स्थितं चोपरि यन्त्रस्य सम्यक् पक्षिशतान्वितम् ।
 अग्रतो देवसैन्यस्य नयन्तो जेष्यथ द्विषः ॥ ४ ॥
 सहस्रधारमव्येकमन्यं रिपुकुलान्तकम् ।
 दिव्यरूपमयं प्रादाद् ध्वजमिन्द्राय दुर्घरम् ॥ ५ ॥
 वीर्यप्रवर्धनी चेष्टिरेतदर्थं विधीयते ।
 कर्मणानेन निःशेषात् शक्रः शत्रूञ् जयेदिति ॥ ६ ॥
 जयैषी तमथ क्षिप्रमसृजतेतसा ध्वजम् ।
 यन्त्रस्थितं स येनाजावमोहयदरीन् हरिः ॥ ७ ॥
 आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवास्तथाभिनौ ।
 अलञ्चक्रुस्तमालोक्य मरुतश्च विभूपणः ॥ ८ ॥
 तेजो वीर्यं वपुश्चेष्टां वलमप्येष पद्यताम् ।
 अहरच्छत्रुसैन्यानां तेजस्वी तरसा ध्वजः ॥ ९ ॥
 तमभ्यर्थं सुराधीशः शत्रून् वलवतोऽप्यसौ ।
 त्रिरात्रेणाजयद् युद्धे कुलिशेन वलाद् वली ॥ १० ॥
 ततः प्रीतस्तमृक्षेजसौ वैष्णवे द्वादशे तिथौ ।
 त्रैलोक्यराज्यं प्राप्याभ्यपिश्चद् वलनिषूदनः ॥ ११ ॥
 स सर्वलोकमभ्यर्थं सर्वलोकाभिपूजितः ।
 ध्वजमभ्यर्थं तुष्टाव वाक्यैर्वृत्रनिषूदनः ॥ १२ ॥

ततस्तमन्तिके वीक्ष्य ध्वजं प्रोवाच वासवः ।
 इन्द्रध्वजोक्षया लोकाः करिष्यन्ति तवार्चनम् ॥ १३ ॥

वीक्ष्यमाणा निमित्तानि भूमिपालाश्च शास्त्रतः ।
 ततः प्रभृत्यसौ लोके सर्वेलक्षणसंभृतः ॥ १४ ॥

वरप्रदानादिन्द्रस्य नृपैः शक्रध्वजोऽच्यते ॥
 दुर्गमायतनं बहिश्चरणं वेदिकाँः कृताः ॥ १५ ॥

विचित्राः स्थालिकापाका भक्षपानानि यानि च ।
 एतान्यायतनात् प्राक् स्युर्यद्वान्यानि ग्रकल्पयेत् ॥ १६ ॥

विजेतुं यदि वाञ्छास्ति दुर्धर्षान् द्वेषिणो रणे ।
 तेजो वलं यशश्चाप्तुं तदैन्द्रं कारयेद् ध्वजम् ॥ १७ ॥

सेनायां वा पुरे वापि प्रतिष्ठाप्य पुरन्दरम् ।
 विजयार्थं महीपालैरभिप्रशमनाय च ॥ १८ ॥

यथा शक्रध्वजोत्थानविधानं जगतीभुजः ।
 करिष्यन्ति तथा सम्यक् कात्स्न्येन प्रतिपाद्यते ॥ १९ ॥

वनादुपाहृतं द्रव्यमयं प्राग्निधिना सुधीः ।
 पाद्यार्घ्यादिभिरभ्यर्थ्यं गन्धैर्मालैरलङ्कृतम् ॥ २० ॥

द्विजान् संपूज्य च शुचौ देशे सम्यक्समाहितः ।
 पूर्वाग्रमुत्तराग्रं वा प्रयत्नादवतारयेत् ॥ २१ ॥

प्रागुदग् वा पुरस्याश्च स्थपतिः कर्मवानपि ।
 कारयेत् सर्वेयन्त्राणि ध्वजपूर्वाणि शिलिपिः ॥ २२ ॥

अष्टुं द्वात्रिंशता हस्तैर्विंशत्या युतयाष्टुभिः ।
 मानं स्यान्मध्यमं तस्य चतुरन्वितयाधमम् ॥ २३ ॥

मूलविस्तुतिरायामादृगुलार्थं करेकरे ।
 विष्कम्भोऽग्ने च मूलाधारात् तत्त्वंशादृ वासिलेष्वपि ॥ २४ ॥

ध्वजमूलाष्टमांशोनं विस्तारात् कुष्यमिष्यते ।
 विस्तारार्थेन च स्थूलं स्थूलत्वतिगुणायतम् ॥ २५ ॥

१. 'जाख्यया' ख. पाठः । २. 'काश्तताः', ३. 'रेभिः', ४. 'धीखि' क. पाठः ।

ध्वजविस्तारवहलं साङ्घविवाहल्यविस्तृतम् ।
 भ्रमपीठं विधातव्यं सार्थीयाम् शुभावहम् ॥ २६ ॥
 सन्मितो ध्वजकुष्येण वेधः स्याद् भ्रमपीठगः ।
 कुष्यकोऽविकावृत्तावश्चौ कोटिद्वयायतौ ॥ २७ ॥
 कार्यावही भ्रमस्थूलौ भ्रमविस्तृतिविस्तृतौ ।
 तद्युक्तिवेदे तावेत(वि?द्वि)स्तृतेद्विगुणोच्छ्रतौ ॥ २८ ॥
 ध्वजायतिचतुर्भागात् पीठमत्र प्रकल्पयेत् ।
 मङ्ग्रप्रतिष्ठितं मध्ये प्रान्तयोः स्तम्भधारितम् ॥ २९ ॥
 तत्पीठस्तम्भनीयाभ्यां द्वाराभ्यामन्वितं हृषम् ।
 याम्योत्तरप्रतिक्षेपं प्राङ्मुखं सुद्वार्गलम् ॥ ३० ॥
 केतुव्यासार्थविस्तारं तद्व्याप्तिश्चकोच्छ्रतम् ।
 विस्तारसद्वशायामं मध्ये स्याद् वज्रिणो शृहम् ॥ ३१ ॥
 मङ्ग्रश्च पीठिकाइश्ची च वाहू स्तम्भविनिर्गतौ ।
 शक्रमाता कुमार्यश्च ध्वजविस्तृतिविस्तृताः ॥ ३२ ॥
 निम्नभागाश्च सर्वेषां स्वविस्तृतिचतुर्गुणाः ।
 कार्या वा पञ्चगुणिताः सप्त (काव्या) मूलदेश(कैतः) ॥ ३३ ॥
 कन्यानामुदयः प्रोक्तो यः प(छ्यो?)प्रांश्चित्तिसंगुणः ।
 इन्द्रमाता तु सर्वाभ्यः स्यात् तद्व्याप्तिश्चतोऽधिका ॥ ३४ ॥
 वेधः स्वविस्तरैः सप्तभागे स्यात् कन्यकोदयात् ।
 निर्वेधश्चतुरश्चः स्याङ्गुकटस्य समाहितः ॥ ३५ ॥
 निर्वेधावस्य चोर्ध्वाधः सप्तांशान्तरवर्तिनौ ।
 कार्यौ मूर्चीव्यधावन्यौ मूर्चीमानप्रमाणतः ॥ ३६ ॥
 कन्याव्यासत्रिभागेन सूची विस्तारतो भवेत् ।
 पादोनवहला चारुदारुजा हृषसंहिता ॥ ३७ ॥
 कुमारीव्याससंयुक्ता द्विगुणा लकटायतिः ।
 एतद्वाह्यान्तरं ज्ञात्वा यन्त्रं संयोजयेत् ततः ॥ ३८ ॥

१. 'को वृत्ता कक्षी', २. 'त्या वा' ख. पाठः।

तयोरधस्तदर्थेन गृगालयौ सूचिविस्तुतौ ।
 क्षेत्रस्य लेखितं कार्यं सम्बन्धे सूचिकन्ययोः ॥ ३९ ॥

साङ्घिकेतनमूलार्थं लकटे विस्तृतायती ।
 अवाज्यां योजयेत् सम्यग् दृढं वाहक्षेत्रयोः ॥ ४० ॥

पञ्चानामपि तुलयैव कन्यानां स्यात् प्रकल्पना ।
 कृत्वानुपूर्व्या यन्त्राणि स्थापयेद्विलान्यपि ॥ ४१ ॥

आश्विने मासि पञ्चे च धवले प्रतिपत्तियौ ।
 स्थिरोदयेत्रहैः सौम्यैवीभिते त्वाष्टुभेदपिच ॥ ४२ ॥

पौरजानपदैः सर्ववादित्रध्वनितेन च ।
 यन्त्राण्युत्क्षिप्य यष्टिं च कर्मस्थानान्वेजलम् ॥ ४३ ॥

चित्रप्रतिसराकीर्णा यष्टिं तत्राज्यलेपिताम् ।
 चूर्णैः सर्वांपर्धीभित्र स्थपतिः स्नापयेत् स्वयम् ॥ ४४ ॥

जलाशयात् समुत्तर्य नृणां कलकलस्वनेः ।
 प्रागग्रां स्थापयेद् दारुहस्तिन्योः प्राक्समुत्तराम् ॥ ४५ ॥

अहतेपितवासोभिराच्छाद्याच्यु ऋगादिभिः ।
 विक्षिप्य च वलिं दिक्षु द्विजातीन् स्वस्ति वाचयेत् ॥ ४६ ॥

त्रिसन्ध्यं पूजितां तत्र सर्वप्रकृतिभिस्ततः ।
 पञ्चाहं वासयेद् यष्टिं गुप्तां चापर्धर्नरैः ॥ ४७ ॥

तस्मिन्ब्रेवाहि यन्त्राणि सर्वाण्यपिच यष्टिवत् ।
 स्नातान्याच्छादितानीन्द्रस्थानदेशं प्रवेशयेत् ॥ ४८ ॥

सूत्रितेऽथ ध्वजस्थाने यष्टेष्टांशदैर्घ्यतः ।
 तदर्थविस्तुते दिक्स्थे समे प्रागायते शुभे ॥ ४९ ॥

विभक्तेऽत्र विभागानामेकाशीत्या ततः क्रमात् ।
 विन्यस्तास्वयं सर्वासु देवतासु यथातथम् ॥ ५० ॥

प्राचि मध्ये मैत्रपदे तन्मध्यान्मरुतो दिशि ।
 मल्लं निम्नप्रमाणेन पादकोणे निवेशयेत् ॥ ५१ ॥

१. 'क्षि' ख. पाठः ।

भृङ्गमुख्यपदद्वन्द्वमध्ययोर्वायुकोणयोः ।
 न्यस्येत् स्तम्भौ तयोः पीठीं मल्ले च विनिवेशयेत् ॥ ५२ ॥
 पीठिका निर्गता वाहुयुग्मात् तत्रोद्ययोगतः ।
 स्तम्भिन्यौ रोपयेद् ब्राह्मं पृथक्षपदयुगं श्रिते ॥ ५३ ॥
 प्रतिक्षोभाविह द्वाँ द्वाँ वाहुद्वितयमाश्रितौ ।
 वाहृतः प्रान्तपदयोर्पैत्रयोर्विनिवेशयेत् ॥ ५४ ॥
 ग्राच्यां मल्लायतो ज्ञात्वा शक्रस्योर्ध्वगैर्ति क्रमात् ।
 योजयेद् भ्रमणोपेतौ भ्रमणादावभद्यगुरौ ॥ ५५ ॥
 मल्लात् पश्चिमदिग्भागे वरुणस्याश्रितां पदम् ।
 भद्रां निवेशयेन्निम्नमानतः शक्रमान्तरम् ॥ ५६ ॥
 स्युः पर्जन्यान्तरिक्षद्वार्य(इमाद्यस्म)णां पदमाश्रिताः ।
 क्रमाच्चन्दोपनन्दाख्यजपाख्यविजयाभिधाः ॥ ५७ ॥
 विन्यस्तास्वथ सर्वासु कुमारीषु विभागशः ।
 लयस्त्रयः प्रतिक्षोभा योज्या दाह्याय वाहृतः ॥ ५८ ॥
 निश्चिपन्नस्त्रिलं द्रव्यं भावयेत् पददेवताः ।
 प्राप्नोति तत्तदाख्यां तद्द्रव्यं पूजां च तद्वताम् ॥ ५९ ॥
 पीठीपृष्ठसमं कन्यापार्व्योरुभयोरपि ।
 कुर्यादनुसरद्वन्द्वं कीलकैर्वद्मायसैः ॥ ६० ॥
 संश्रित्यानुसरद्वन्द्वं पीठीं चोपरि सङ्ग्रहात् ।
 वश्चायात् कीलकैलैर्हृष्टन्त्रनिश्चलताकृते ॥ ६१ ॥
 यन्त्रकर्मणि निर्वृत्त इति शास्त्रविधानतः ।
 प्रवेशयीत स्वस्थाने त्रिदशाश्रियमैन्द्रमे ॥ ६२ ॥
 स्नातस्य विधिवद् वस्त्रच्छब्दस्यालेपितस्य च ।
 श्रीखण्डाच्चः सुरभिभिः कुमुपरचितस्य च ॥ ६३ ॥
 राहिणादिमुहूर्तेषु त्रिषु मैत्रेय वज्रिणः ।
 प्रवेशमभिनन्दन्ति करणोप्त्वचितेषु च ॥ ६४ ॥

१. 'न्द्रं मध्याभ्यां वायु' ख. पाठः । २. 'स्वाम्', ३. 'तिकमः', ४. 'तः',
 ५. 'नादयेत्' क. पाठः । ६. 'ख्यानां द्र' ख. पाठः । ७. 'तानु' क. पाठः ।
 ८. 'ठ' ख. पाठः ।

स्थपतिर्वा पुरोथा वा शुचिः स्नातः समाहितः ।
गन्धमाल्याचिंतान् विप्रांस्तर्पयेद् दक्षिणादिभिः ॥ ६५ ॥

ततो मङ्गलघोषेण वादित्रनिनदेन च ।
पुण्याहजयशब्दस्तमुत्क्षेपेयुः समाहिताः ॥ ६६ ॥

अलङ्कारभृतः पौराः प्रहृष्टमनसोऽखिलाः ।
नीरुजो वलिनः शक्ताः प्रकृत्यभिमताश्च ये ॥ ६७ ॥

स्तुवीरन् पुण्यमनसः स्तुतिभिः मृतमागथाः ।
वन्देरन् वन्दिनश्चैनं सेवेरन् गणिका अपि ॥ ६८ ॥

प्रविशन्तं निजं स्थानमनुगच्छेत्तराधिषः ।
सुराधिषं वलामात्यपौरजानपदान्वितः ॥ ६९ ॥

प्रोद्यत्कलकलारावसुस्वराः पुरुषा यदि ।
उत्क्षेपेयुः प्रहृष्टा वा वंदेयुर्वा सुराधिषम् ॥ ७० ॥

तदा भवति भूपालो जयी नन्दन्ति च प्रजाः ।
राष्ट्रे सुखं पुरे हर्षो भवेत्तराध्यन्ति चेतयः ॥ ७१ ॥

मुञ्चत्युत्थापितः कृच्छ्राद् यदि शश्यां संगौरवात् ।
तदा नृपतिरभ्येति पद्मी विमनस्कताम् ॥ ७२ ॥

सखलन्तो दुःखिता दीना निःशसन्तः पदे पदे ।
वैचित्र्यमाजो गच्छेयुदेशहानिस्तदा ध्रुवम् ॥ ७३ ॥

भूमौ यदैकदेशेन इसितः(?)पतति ध्वजः ।
न सुभिक्ष्म न च क्षेमो न राज्ञो विजयस्तदा ॥ ७४ ॥

दीर्णे भर्त्रेऽथ पतिते कृत्स्ने चास्मिन् समुद्रृते ।
स्यान्नृपस्यावनिच्छेदः सुतव्यंसोऽथवा मृतिः ॥ ७५ ॥

वस्त्रालङ्कृतिमाल्यानां दरणात् पतनादुत ।
तादृशद्रव्यविध्वंसः पौराणां भवति ध्रुवम् ॥ ७६ ॥

पुरं भवति निःशब्दं निष्प्रभं वा प्रवेशने ।
समुच्छ्रये वा शक्रस्य तदा तन्नाशमृच्छति ॥ ७७ ॥

शकं स्वस्थानमानीतं शीघ्रं सुखमविद्धतः ।
 प्राग्वत् प्रदक्षिणं न्यस्येत् प्राग्ग्रं शयने निजे ॥ ७८ ॥
 कुर्यात् तत्रैव नक्षत्रे शश्यास्थस्यापरेशितुः ।
 भ्रमे कुप्ये च संयोगं यथाभागविकल्पितम् ॥ ७९ ॥
 कुप्ये संयोज्यमानब्रेद् अजो निपतति शितौ ।
 तदा नरपतेः स्थानभ्रंशो भवति निश्चितः ॥ ८० ॥
 कुष्ठयोगे यदा शक्रो वामतः परिवर्तते ।
 तदा स्यात् स्थपतेर्मृत्युभवेद् भज्ञश दक्षिणे ॥ ८१ ॥
 स्ववेधं प्रतिपथेत् तथाष्टिर्यदि कुच्छृतः ।
 प्रमादिनस्तदा राज्ञो जायते व्यसनं महत् ॥ ८२ ॥
 निष्कुष्ठ योजितः शक्रध्वजो विघटते यदि ।
 विश्लिष्ट्यति तदा सन्धिः सापन्तैः सह भूपतेः ॥ ८३ ॥
 स्फुटेद् भज्येत् वा कुप्ये योज्यमानोऽथ सर्वतः ।
 तदा भज्ञे नृपव्याधिः स्फुटनादज्ञनावधः ॥ ८४ ॥
 अविदीर्णमपर्यस्तमव्यज्ञपैविलभ्वितम् ।
 यथावन्नप्यासमायाति योगं चेद् वासवध्वजः ॥ ८५ ॥
 धनभृत्याङ्गनापत्यैः सापन्तैश्चान्वितोऽनुगैः ।
 निरातङ्को वलाङ्गश्च द्विद्विमेति तदा नृपः ॥ ८६ ॥
 यत्नतो रक्ष्यमाणस्य शश्यास्थस्यैव वज्रिणः ।
 तस्याङ्गान्यविलान्येव कुटन्यादीनि योजयेत् ॥ ८७ ॥
 ऐन्द्रं वलोकं यक्षेशं सर्पमादं दिगाहयम् ।
 मयूरं चेन्द्रशीर्षं च पिटकाण्डकमित्यदः ॥ ८८ ॥
 स्वप्रमाणेन कर्तव्यं स्पृष्टृल्पसमन्वितम् ।
 तदौरुद्याशान्तरेष्वेषां सन्धयो वस्त्रनिर्मिताः ॥ ८९ ॥
 मूलादन्वग्रमायातैः स्ववंशेविंदलैर्देहैः ।
 गुणेश वेष्टयेदेनं घनैरशिथिलैर्धर्वजम् ॥ ९० ॥

१. 'कुप्ये' ख. पाठः । २. 'कुण्डायो', ३. 'मवल' क. पाठः । ४. 'कृ' ख.
 पाठः । ५. 'जा', ६. 'स्वेष्ट', ७. 'दाक्षाश्चा' क. पाठः । ८. 'तैस्तं वं' ख. पाठः ।

साहृषिणा ध्वजनाहेन सर्वयशेनाथ विस्तुतिः ।
विधेया शक्रपित्रकस्योच्च्रयस्तु तदर्थतः ॥ ९१ ॥

अस्मिन्नष्टी दिशः कुल्ता वंशव्यवहिते ततः ।
न्यस्येद् दिगीशांश्चतुरस्तस्योपरि यथादिशम् ॥ ९२ ॥

पञ्चमांशगते कुष्याद् वत्रिणः पिटके कृते ।
शेषाण्यव्यष्टुभागोनान्यस्मिन् न्यस्येद् यथाक्रमम् ॥ ९३ ॥

बलाकादीनि विस्तुत्या चरणोनानि चोच्छ्रौतौ ।
स्ववर्णवन्ति त्रुत्तानि रामणीयकवन्ति च ॥ ९४ ॥

भङ्गपातविपर्या(साँस)सिद्धयः पिटकोद्भवाः ।
पीडार्त्तिष्ठृत्यवेऽत्यर्थमेककस्य प्रकीर्तिः ॥ ९५ ॥

शुद्धान्तामात्यचित्तानां बलस्य यशसोऽपि च ।
वसुपत्याश्च धान्नां च तृपते राष्ट्र(ष?प)स्य च ॥ ९६ ॥

केतुपद्मागचिस्तारा रज्जवोऽष्टौ सुवर्तिताः ।
विधेयाः स्युर्ध्वजायामत्रिगुणायतयो ददाः ॥ ९७ ॥

छादितं छ(विदि)भिः पूर्वं कुट्टनीसहितं शुभम् ।
यत्रेनासत्त्वदिवसे विद्यादभस्त्रध्वजम् ॥ ९८ ॥

अर्केन्दुग्रहताराङ्गं वेणुगुल्मेन्द्रशीर्षकम् ।
साष्टकण्ठगुणं दण्डसूत्रादर्शान्वितं शुभम् ॥ ९९ ॥

सप्तस्यफलपुष्पाक्षं शुभवत्त्वपलङ्कृतम् ।
दृढमान्वितमष्टाभिः सन्तताभिश्च रज्जुभिः ॥ १०० ॥

ध्वजपटं विद्याच्च चित्रं सुरचितं तथा ।
निमित्तार्थं च लोकानां ज्ञोभादेतोर्ध्वजस्य च ॥ १०१ ॥

सप्ततनपुरारामगन्धर्वत्रिदशासुरम् ।
निखिलं जगदालेख्यमस्मिन्नदिदुमाकुलम् ॥ १०२ ॥

ध्वजाश्रे रशिमभिर्नईं (स?सु)विन्यस्तं च भूतले ।
विन्यसेत् तपसम्मूढमधोभागसप्ताश्रितम् ॥ १०३ ॥

१. 'बो' ख. पाठः । २. 'सात्', ३. 'पूर्णं कुट्टनी' क. पाठः ।

प्रपोदगीतवादिलनटनर्तकसंयुतः ।
 तदग्रे जागरः कार्यः समस्तामेव तां निशाम् ॥ १०४ ॥
 पुरोहितस्ततो भास्वत्युदिते प्रयतेन्द्रियः ।
 अग्नेः परिग्रहं कुर्यान्मूलस्य प्रागुदगिदशि ॥ १०५ ॥
 कुतोपलेपनं तस्मिन्नुलेखाभ्युक्षणैस्ततः ।
 संस्कृत्यास्तीर्य दर्भांश्च ज्वालयेत् तत्र पावकम् ॥ १०६ ॥
 तत्राज्यपात्राण्याजयं च गन्धांश्च कुसुमानि च ।
 द्रव्याणि वाचनीयानि समिधश्च पलाशजाः ॥ १०७ ॥
 सौवर्णां सुकृत्युवाविन्द्रभक्तं च वलयोऽपिच ।
 इत्येतत्सर्वमाहत्य जुहुयात् पावकं ततः ॥ १०८ ॥
 पुत्रदारपशुद्रव्यसंत्युक्तस्य भूषते ।
 विजयावास्त्रिजनकैर्मन्त्रैः शान्तिविधायिभिः ॥ १०९ ॥
 सुस्वनः सुमहार्चिंश्च मिश्यथेद्वाऽपिच स्वयम् ।
 कान्तिमान् सुरभिर्जित्रन् होतारं शस्यतेऽनलः ॥ ११० ॥
 तस्मकाश्चनसच्छायो लाक्षाभः किंशुकच्छविः ।
 प्रवालविद्रुमाशोकसुरगोपसमवृतिः ॥ १११ ॥
 ध्वजाङ्कुशगृहच्छत्रयुपप्राकारतोरणः ।
 सदृशार्चिं प्रशस्तोऽप्तिर्मीङ्गलयैरपरस्तथा ॥ ११२ ॥
 मिश्यः प्रदक्षिणशिखो विभूमो विपुलोऽनलः ।
 सुभिक्षेमदः प्रोक्तो दीप्यमानश्चिरं तथा ॥ ११३ ॥
 धूम्रो विवरणः परुषः पीतो वा नीलकोऽथवा ।
 विच्छिन्नबो भैरवरबो वामावर्त्तशिखोऽल्पकः ॥ ११४ ॥
 मन्दार्चिर्थुतिमुक्तोऽसुग्वसागन्त्यः स्फुलिङ्गवान् ।
 धूमावृतः सफेनश्च हुतभृग् न जयावहः ॥ ११५ ॥
 दर्भाणां संस्तरं वद्विर्होमाङ्गान्यपराणि वा ।
 हृयमानो दहति चेद्रानिस्तदभिनिर्दिशेत् ॥ ११६ ॥

१. 'न्धिः' ख, पाठः ।

होमे वोत्सर्पयेत् पीठं द्व्यमानो(?)यदाग्रिना ।
 भूस्येकदेशनाशः स्याल्लाभः स्यादुपकर्षणात् ॥ ११७ ॥

सर्वतो वाच्यगाथो यः स वर्धयति पार्थिवान् ।
 यां दिशं यान्ति च ज्वालास्तस्यां विजयमादिशेत् ॥ ११८ ॥

दुर्वर्णाशुचि दुर्गन्धि मक्षिकाखुविडम्बितम् ।
 आज्यं राज्यच्छिदे प्राहुर्हृष्टे यच्च भस्मनि ॥ ११९ ॥

हीनाधिकप्रमाणाश्च विदीर्णा घुणभक्षिताः ।
 चातरुणद्रुमोत्थाश्च समिधोऽर्थक्षयावहाः ॥ १२० ॥

सगर्भाश्च सपुण्याश्च विच्छिन्नाग्रास्तुणान्विताः ।
 कुर्वन्त्युपद्रवं दर्भा दुष्प्रलूनाश्च ये तथा ॥ १२१ ॥

दुष्टानि पांसुकीर्णानि कीटजर्जरितानि च ।
 वीजानि वीजनाशाय स्युरपुष्टानि यानि च ॥ १२२ ॥

मालयं विगन्धि प्रम्लानं न पीतं न सितं च यत् ।
 कीटैः खण्डितपीतं च न जयाय न वृद्धये ॥ १२३ ॥

विश्वावीण्युद्धतान्युग्रखण्डितस्फुटितानि च ।
 दुर्भिक्षरोगकारीणि प्राहुः पात्राणि सर्पिषः ॥ १२४ ॥

अगुचौ पतिते च स्यान्मक्षिकाकीटदूषिते ।
 वलौ च शक्रभक्ते च क्षुन्मारः केशभाजि च ॥ १२५ ॥

यथोदितान्यरूपाणि सर्पिरादीन्यनुक्रमात् ।
 भवन्ति राष्ट्रपुरयोर्भयाय निखिलान्यपि ॥ १२६ ॥

वितीर्य गन्धमाल्यादीन् देवताभ्यो यथादिशम् ।
 पुरोधाः स्थपतिर्वाथ प्रीतचित्तः क्षिपेद् वलिम् ॥ १२७ ॥

ध्वजनैऋतदिग्भागे द्विजमुख्यानुपस्थितान् ।
 शीलवृत्तयुतान् भूरिगन्धमाल्यैः स्वलङ्घुतान् ॥ १२८ ॥

वृद्धान् पद्कर्मनिरतान् सुहृदो वेदपारगान् ।
 मनःप्रियान् पूर्णगात्रान् समर्थान् सर्वतः शुचीन् ॥ १२९ ॥

१. 'केशैश्चैव विदूषिते', २. 'ह्यैरल' क. पाठः ।

शुक्राम्बरान् दर्शनीयान् गौरप्रायान् वलान्वितान् ।
 अमुण्डाजटिलोकीवा(न?)दीक्षितान् व्याधिताकुशान् ॥ १३० ॥
 यथेष्टु दक्षिणाभिस्तान् संयोज्याष्टशतेन वा ।
 साथैः प्रीतमनसः कुमुमैः स्वस्ति वाचयेत् ॥ १३१ ॥
 शक्रं ते चाष्टभिः कुम्भैः सुष्टुप्तिरपूरितैः ।
 स्वचित्तेरभिपञ्चयुमूले चौकृष्णमण्डलैः ॥ १३२ ॥
 स्तुतैर्वेंजयिकैर्मन्त्रैः स्तुतिभिश्च द्विजोत्तमैः ।
 राज्यमाघोषयेद्देतरात्मना च महीपतिः ॥ १३३ ॥
 कुर्वीत सर्ववन्धानां मोक्षं हिंसां समुत्सजेत् ।
 दोषान् जनपदस्यापि दशाहं विषहेत वै ॥ १३४ ॥
 सुवासा भूषितः स्नातः सदाचारप्रयत्नवान् ।
 ध्वजोच्छायं शुचिर्भूपः सबलः प्रतिपालयेत् ॥ १३५ ॥
 सोपवासः शुचिः स्नातः प्रयतो विजितेन्द्रियः ।
 कृताञ्जलिपुष्टशेषं मन्त्रं स्थपतिरुच्चरेत् ॥ १३६ ॥
 ओं नमो भगवति वागुले सर्वविद्यप्रपद्मि स्वाहा ।
 सुरासुराणां सब्द्यामे प्रवृत्ते त्वं यथोत्थितः ।
 तथा नृपस्य देवेन्द्र ! जयायोत्तिष्ठ पूजितः ॥ १३७ ॥
 स्तुत्वेति स्थपतिस्तस्य कृत्वा चानुप्रदक्षिणम् ।
 कारयेद् देवराजस्य ध्वजदण्डसमुच्छ्रयम् ॥ १३८ ॥
 स्वलहृकृतैः सितस्वच्छमाल्याम्बरविलेपनैः ।
 पीरंजीनपदैस्तदूत् प्रयतैः परिचारकैः ॥ १३९ ॥
 सालिङ्गलुरीशङ्कनन्दिडिपिडमगोमुखैः ।
 हृष्टैरन्यैश्च वादित्रैर्वाच्यमानैर्महास्वनैः ॥ १४० ॥
 गायद्विश्च नदिद्विश्च गायनैर्नेटनर्तकैः ।
 हृष्टोत्कृष्टोद्रत्वानैर्गजस्यन्दनवाजिभिः ॥ १४१ ॥

१. 'ङ्गान् ज', २. 'लान् झी', ३. 'वा', ४. 'अ' ल. पाठः ।

तैश्च वादित्रनिनदैस्तैश्च पुण्याहनिस्वर्णः ।
दृढरञ्जुभिराकृष्टं श्रवणे ध्वजमुच्छ्रयेत् ॥ १४२ ॥

यत्रेनोत्थाप्यमानस्य तस्योच्छायगतस्य च ।
नृपश्चिवाहनादीनां निमित्तान्यवलोकयेत् ॥ १४३ ॥

कुटनीनिहिताभोगं पताकादर्पणोज्ज्वलम् ।
चितपहस्फुटादोपमर्केन्दुगुणभूषणम् ॥ १४४ ॥

अस्त्रस्तमालयालङ्कारमशीर्णच्छब्दमस्तकम् ।
अकम्पितमदीर्णाङ्गमदिग्भ्रष्टं सुरेन्ध्रम् ॥ १४५ ॥

सममूर्खसंमश्चित्तमनवक्षतमद्रुतम् ।
अविलम्बितविभ्रान्तेमृजुपार्गसमुद्रतम् ॥ १४६ ॥

इत्थं शकध्वजोत्थानं कृतं राजा जयावहम् ।
पौरजानपदानां च क्षेमारोग्यसुभिक्षकृत् ॥ १४७ ॥

यदा शकध्वजः प्राचीमुच्छ्रितः प्रतिपद्यते ।
तदा मन्त्रिगणक्षत्रवृपप्राग्वासिवृद्धिदः ॥ १४८ ॥

आश्रेयीं ककुमं यते वर्धन्ते वहिजीविनः ।
प्रारब्धकार्यनिष्पत्तिरथत्नाचोपजायते ॥ १४९ ॥

दक्षिणां दिशमायते केतने नमुचिद्विषः ।
तदा स्युवैश्यलोकस्य पूजाधान्यधनर्दयः ॥ १५० ॥

सर्वाशासंपदः श्रेष्ठा जायन्ते नैर्विताश्रिते ।
न स्याद् गर्भो वृथा तद्वद् वशवन्धमयं न च ॥ १५१ ॥

श्रिते प्राचेतसीमाशामस्पित् शूद्रजयो भवेत् ।
क्षुत्रष्णामिभयं न स्याद् वृष्टिरिष्टा च जायते ॥ १५२ ॥

द्वृपसस्यफलद्विः स्यात् केतौ वायोः श्रिते दिशम् ।
चतुष्पदविवृद्धिश्च रोगोच्छित्तिश्च जायते ॥ १५३ ॥

चतुर्णीमपि वर्णानां सम्पत् स्यात् सौम्यदिग्मते ।
विशेषात् सा द्विजेन्द्राणां तथा सिध्यन्ति चाध्वराः ॥ १५४ ॥

१. 'सुमङ्गिष्ठमनवक्षतमद्भुतम्' ल, पाठः । २. 'न्तं वृपमा' क, पाठः ।

ऐशीमाशां श्रिते धर्मपरो भवति पाथिंवः ।
 वृद्धिर्जनपदस्य स्यात् तथा पाषण्डिनामपि ॥ १५५ ॥
 यदि किञ्चिद् ब्रजेत् पूर्वं रज्ज्वाकुष्टः शतक्रतुः ।
 विजिगीषोर्नरेन्द्रस्य तदा यात्रा प्रसिध्यति ॥ १५६ ॥
 प्रतिष्ठां लभते भूमां भ्रमं भिन्ना यदि ध्वजः ।
 सञ्चलकाननामुर्वीं तदा जयति पाथिंवः ॥ १५७ ॥
 दिक्सर्पणे फलं प्रोक्तमित्यव्यङ्गस्य वक्त्रिणः ।
 विपरीतं तदेवोक्तं व्यङ्गस्य निखिलं पुनः ॥ १५८ ॥
 यदि स्वलङ्घकृतः पूर्वं योज्यमानः शतक्रतुः ।
 उत्क्षमो रज्जुयन्त्रेण स्तोकपर्यं स्थितोऽपि वा ॥ १५९ ॥
 शश्यायां यदि वा भूमावृत्सङ्गे वा पतत्यसौ ।
 तदा वृषं राजदारान् कुपारं वा विनाशयेत् ॥ १६० ॥
 उत्थितोऽधोत्थितो वापि यदि क्षुभ्यति कम्पते ।
 स्थानान्तरं ब्रजेद् वापि सञ्चरेद् वा कथञ्चन ॥ १६१ ॥
 विगृहते तदा भूपो भ्रश्यति स्थानतोऽपि वा ।
 भयाज्जनपदो वास्य चलत्येव न संशयः ॥ १६२ ॥
 आकुष्टासु यदाष्टासुच्छयते कापि रज्जुषु ।
 अमात्यमरणं तत् स्यादेकांशेन निश्चितम् ॥ १६३ ॥
 मूलमध्याग्रभागे वा प्रोच्छितो यदि भैरव्यते ।
 पौरसेनापतिनृपान् क्रमशो हन्त्यसौ तदा ॥ १६४ ॥
 छत्राक्वेणुगुल्मेन्द्रशीर्षकण्ठगुणा यदि ।
 पतन्ति भूमाविन्द्रो वा तदा हन्ति महीपतिम् ॥ १६५ ॥
 नृपो वधमवाग्नोति तैर्भैर्वः पतिर्भैर्वुतैः ।
 अभैर्विर्भैरुतैरेतैः क्षयं ब्रजति साधनम् ॥ १६६ ॥
 क्रमशो हन्युरादर्शवैजयन्तीन्दुतारकाः ।
 पतन्त्यो दक्षमूनायपुरोधःखीर्महीपतेः ॥ १६७ ॥

१. 'अवते', २. 'भिन्नते', ३. 'है' ४. 'द्वैते' क. पाठः ।

माल्यैर्विभूषणैर्यनैः शख्वस्फलाशनैः ।
 यान्ति केतुच्युतेरेते राजास्तान्येव संक्षयम् ॥ १६८ ॥
 शीर्यते शक्रपिटकं कूटेभ्यः शक्रवेशम् वा ।
 अस्यां ककुभि तत्राहुर्द्वानि पूर्वे विपश्चितः ॥ १६९ ॥
 भजे मृगालीलकटाक्षार्गलानामनुक्रमात् ।
 पीडा सञ्जायते वेश्यानुपतिश्चेष्टिरक्षिणाम् ॥ १७० ॥
 भग्रा भ्रमाक्षपादैर्वा मल्लमातृकुमारिकाः ।
 राष्ट्रं हन्युन्नरेन्द्रस्य प्रियामात्रसुतान् क्रमात् ॥ १७१ ॥
 निर्वातोऽशनिरूलका वा ध्वजे यदि पतेत् तदा ।
 अनावृष्टिभयं राज्ञः पराजयमथादिशेत् ॥ १७२ ॥
 कुर्वन्ति मक्षिकाः शके मधुच्छ्रवं समुच्छ्रते ।
 यस्मिंस्तत्र द्विपद्रोर्थं पण्मासाच्चादिशेत् पुरे ॥ १७३ ॥
 मक्षिका वा खगा वा चेद् भ्रमेयुः पार्वतो हरेः ।
 प्रदक्षिणा वहिस्थानंमासाच्चाहुस्तदा मृतिम् ॥ १७४ ॥
 गृथद्येनकपोताश्चेष्टीयन्ते शकमूर्धनि ।
 तदा कुर्वन्ति दुर्भिक्षिविग्रहक्षितिपक्षयान् ॥ १७५ ॥
 यदि केतौ निलीयन्ते कुररोलूकवायसाः ।
 राज्ञः क्रमात् तदा हन्युर्मन्त्रिपुत्रपुरोधसः ॥ १७६ ॥
 मयूरो यदि वा हंसः सपाश्रयति वासवम् ।
 सपस्तलक्षणोपेतस्तदा स्यानुपतेः सुतः ॥ १७७ ॥
 चक्री वलाका हंसी वा यदि केतौ निलीयते ।
 तदा नरपतिर्भार्यामवाप्नोत्यतिसुन्दरीम् ॥ १७८ ॥
 खगैः सुवृष्टिर्जलैः सुभिक्षं स्यात् फलाशिभिः ।
 विष्टाशिभिश्च दुर्भिक्षं भीतिः स्यात् पिशिताशिभिः ॥ १७९ ॥
 यदि चित्रपटन्यस्ताः सुरयक्षोरगोत्तमाः ।
 विचित्राकृतिभिर्युक्ता वाहनायुधभूषणैः ॥ १८० ॥

१. 'नमासमाहुस्तदितिरा मृ' (?) ख. पाठः । २. 'स्तु' क. पाठः ।

अष्टौ च ककुभो मृत्ताः प्रनृत्ताश्वाप्सरोगणाः ।
 सग्रहास्तारका मेघाः स्फीता नद्यस्तथाव्ययः ॥ १८१ ॥
 वाप्यः पङ्केरुहच्छब्दा हंसवन्ति सरांसि च ।
 फलपुष्पावतंसानि वनान्युपवनानि च ॥ १८२ ॥
 देवतायतना(न्यायैन्यश्च)गोपुराणि पुराणि च ।
 भवनान्यतिशुभ्राणि शयनासनवन्ति च ॥ १८३ ॥
 प्रहृष्टाः पार्थिवा भृत्या वलवाहनशालिनः ।
 पौरा जानपदा लोकाः क्रीडाभाजः कुपारकाः ॥ १८४ ॥
 चत्वारो मुदिता वर्णा नटनर्तकशिलिपिनः ।
 सगोव्रजलतागुलमद्रौषधिमृतो नगाः ॥ १८५ ॥
 मृगपक्षिगणाः शस्ता मङ्गलान्यतिशिलानि च ।
 विचित्रापानवसुधाः फलभक्षाश्च पक्षिणः ॥ १८६ ॥
 यथानिवेशं शोभन्ते तदा देशे पुरेऽपि च ।
 क्षेमारोग्यसुभिक्षाणि जयं राज्ञश्च निर्दिशेत् ॥ १८७ ॥
 एतेषां कुट्ठने पाते छेदे नाशेऽथवा हृताँ ।
 प्लोषे वाप्यशुभं वाच्यं यथायोनि यथादिशम् । १८८ ॥
 स्थिते वा पतिते वापि चित्रपटे भुवस्तले ।
 उपपुत्रो नरेन्द्रस्य भवेज्जनपदस्य च ॥ १८९ ॥
 राजते यद्यलङ्कारः सकलो यावदुत्सवम् ।
 अनस्तोऽविष्टुतश्चोर्वीं तदा कृत्त्वां जयेन्नृपः ॥ १९० ॥
 नटनर्तकसङ्क्षेपु प्रवृत्यत्सु पठत्सु च ।
 शुभे शुभं समादेश्यमितरस्मिन्नशोभनम् ॥ १९१ ॥
 ये वर्णाः सम्प्रहृष्टनित मङ्गलया गजवाजिनः ।
 सुवेषचेष्टालङ्काराः शुभं तेष्वादिशेद् ध्रुवम् ॥ १९२ ॥
 अमङ्गलैषिणो ये स्युर्विकृता दीनचेतसः ।
 पुरुषा योषितो वापि निर्दिशेत् तेषु वैशसम् ॥ १९३ ॥

१. 'राज्ये विनि', २. 'त्स्वपि' क. पाठः । ३. 'ङ्गलैषिपि' ल. पाठः ।

प्रभिन्नकरटा नागा बृहन्तस्तोयदा इव ।
 अदीनाश्च स्वतन्त्राश्च नृपतेर्विजयावहाः ॥ १९४ ॥
 आलिखन्तः सुरैः क्षोणीं दक्षिणैर्हृष्टचेतसः ।
 हेषमाणा हयाशापि शंसन्ति नृपतेर्जयम् ॥ १९५ ॥
 सतडिद्वर्जिताम्भोदा वृष्टिश्चेजायते तदा ।
 महीपतेर्जयं विद्यात् सुभिक्षं क्षेममेव च ॥ १९६ ॥
 अथार्दरात्रे सम्प्राप्ते रोहिण्यां दशमेऽहनि ।
 शक्तस्य पातमिच्छन्ति मुनयः प्रतिवत्सरम् ॥ १९७ ॥
 ततः समाजे निर्वृत्ते शक्तकेतौ प्रतिष्ठिते ।
 गन्धतोयैश्च पुष्टैश्च विद्यीताम्बुद्धेवनम् ॥ १९८ ॥
 अमेघ्यैर्वस्त्रखण्डैर्वा भस्मकेशास्थिकर्दमैः ।
 यदा क्रीडन्ति मनुजा दुभिक्षं जायते तदा ॥ १९९ ॥
 विप्राः प्राच्यां विल(म्पैम्वे)युः पतन्तं वासवध्वजम् ।
 सुभिक्षं क्षेममारोग्यमन्यथा स्याद् विपर्ययः ॥ २०० ॥
 अशृज्ञोक्तो ध्वजाङ्गे यो विशेषः सोऽथ कर्त्यते ।
 पुरे ब्रह्मपुरात् प्राच्यामिन्द्रस्थानं विधीयते ॥ २०१ ॥
 मात्राशयेन हस्तेन प्रमाणं तस्य कीर्तिंतम् ।
 चतुःषष्ठिसमायामं चतुरश्च समन्ततः ॥ २०२ ॥
 एकाशीतिपदेनैव भजेत् क्षेत्रं विभागतः ।
 क्षेत्रस्यार्थेन कुर्वात ध्वजायामं प्रमाणतः ॥ २०३ ॥
 ततो वृद्धिर्विधातव्या हस्ते हस्तेऽहगुलं बुधैः ।
 अर्धाहगुलं चा वृद्धिः स्याद् ध्वजस्येन्द्रस्य कुत्रचित् ॥ २०४ ॥
 तावद् वृद्धिर्विधातव्या यावत् क्षेत्रसमोऽहगुलैः ।
 ततः प्रमाणमार्थं यत् तत् पुनर्विनियोजयेत् ॥ २०५ ॥
 प्रपाणमहगुलैः केतोः स्याच्चत्वारिंशता मितम् ।
 तस्य संवत्सरे वृद्धिः कर्तव्या द्वयहगुलैर्बुधैः ॥ २०६ ॥

१. ‘शत’, २. ‘म्बुद्धेवनम्’ ख. पाठः । ३. ‘प्राक्तेर्विल’ ख. ‘प्राच्यां चिक्षये’ क. पाठः ।

ब्रह्मस्थाने च कुर्वीत ब्रह्मावर्तं विचक्षणः ।
 ब्रह्मणोऽनन्तरं प्राच्यां भवेद् दैवतमर्यमा ॥ २०७ ॥
 तत्र यन्त्रस्य पादौ स्तः समुच्छ्रायेण पद्मप(मौ?दौ) ।
 तस्यैव पश्चिमे भागे मित्रो भवति देवता ॥ २०८ ॥
 ततः प्रभृति यन्त्रस्य + + वेधो नतो भवेत् ।
 पूर्वापरं च निज्ञं स्यादेप यन्त्रविधिः स्मृतः ॥ २०९ ॥
 यन्त्रस्य पश्चिमे भागे वरुणो दैवतं भवेत् ।
 वरुणस्य पदान्ते च वंशस्थे द्वे कुमारिके ॥ २१० ॥
 खानिले(?) चतुरो हस्तान् दशहस्तोच्छ्रृते च ते ।
 रुद्रस्थाने च कर्तव्या कुमारी सुप्रतिष्ठिता ॥ २११ ॥
 सोमयोगे चतुर्थी स्यादापभागे च पञ्चमी ।
 पष्टी च सवितुर्भागे यमभागे च सप्तमी ॥ २१२ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनामिनि वास्तुशास्त्रे
 इन्द्रेभ्यजनिरूपणं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥

अथ नगरादिसंज्ञा नामाष्टादशोऽध्यायः ।

नगरं मन्दिरं दुर्गं पुष्करं साम्परायिकम् ।
 निवासः सदनं सद्य क्षयः क्षितिलयस्तथा ॥ १ ॥
 यत्रास्ते नगरे राजा राजधार्नीं तु तां विदुः ।
 शाखानगरसंज्ञानि ततोऽन्यानि प्रचक्षते ॥ २ ॥
 शाखानगरमेवाहुः कर्वटं नगरोपमम् ।
 ऊनं कर्वटमेवेह गुणैर्निंगम उच्यते ॥ ३ ॥
 ग्रामः स्यान्निगमादूनो ग्रामकैल्पो यृहस्त्वसौ ।
 गोकुलावासमिच्छन्ति गोष्ठमल्पं तु गोष्ठकम् ॥ ४ ॥

१. 'त्य', २. 'नद्रसंपदाध्या', ३. 'कल्पण्ड' ख. पाठः ।

उपस्थानं भवेद् राजां यत्र तत् पत्तनं विदुः ।
बहुस्फीतवणिग्युक्तं तदुक्तं पुटभेदनम् ॥ ५ ॥

विधाय कुटिका यत्र पत्रशाखात् उपल्लोप्तः ।
पुलिन्दाः कुर्वते वासं पल्ली स्वल्पा तु पल्लिका ॥ ६ ॥

नगरं वर्जयित्वान्यत् सर्वं जनपदः स्मृतः ।
नगरेण समं कृत्स्नं राष्ट्रं देशोऽथ मण्डलम् ॥ ७ ॥

आवासः सदनं सद्ग निकेतो मन्दिरं मतम् ।
संस्थानं निधनं घिष्यं भवनं वसतिः क्षयः ॥ ८ ॥

अगारं संश्रयो नीडं गेहं शरणमालयः ।
निलयो लयनं वेशम् गृहमोक्तः प्रतिश्रयः ॥ ९ ॥

गृहस्योपरिभूमिर्या हर्म्यं तत् परिकीर्तितम् ।
तस्यारोहणमार्गो यः सोपानं तत् प्रचक्षते ॥ १० ॥

कौष्टकैर्यत्र रचितं स्थूणयोरधिरोहणम् ।
सा निःश्रेणिरिति प्रोक्ता सोपानविंशुलैः पदैः ॥ ११ ॥

स्मृतः काष्ठविट्ठ्लोऽसौ यत् काष्ठैः संहृतं गृहम् ।
सुधालिम्पतलं हर्म्यं साँधं स्यात् कुट्टिम् च तत् ॥ १२ ॥

वर्षाभयेन या छन्ना तालशौकदलादिभिः ।
स्मृताभिगुप्तिरन्तस्था सर्वोपरि गृहस्य सा ॥ १३ ॥

वातायनं तु भित्तीनामवलोकनमुच्यते ।
लघुर्वार्तयनो यः स्यादवलोकनकं हि तत् ॥ १४ ॥

हर्म्यस्य मध्ये यच्छिद्रं स उलोक इति स्मृतः ।
हर्म्यप्राकारकः स स्यात् कण्ठा हर्म्यतलस्य र्या ॥ १५ ॥

वितर्दिकाष्ठमाला स्यात् सर्वतश्छेदमूलगा ।
तत्स्तम्भेषु मृगा ये तु ते स्युरीहामृगा इति ॥ १६ ॥

निर्यूहो हर्म्यदेशाद् यः काष्ठानामुपनिर्गमः ।
वलीकमिति विज्ञेयं काष्ठं छेदाद् विनिर्गतम् ॥ १७ ॥

१. 'दक्ष', २. 'को', ३. 'शालद' क. पाठः । ४. 'हर्म्यः प्रा' ख, पाठः ।
५. 'ष्ठो', ६. 'यः', ७. 'शुद्ध', ८. 'शामका' क. पाठः ।

छन्नैश्चतुर्भिः पार्श्वं तत्त्वालमुच्यते ।
 त्रिभिस्त्रिशालं तत् प्राहुद्दीभ्यां तत् स्याद् द्विशालकम् ॥ १८ ॥
 एकशालकमेकेनच्छब्देन गृहमुच्यते ।
 गृहमेकं तु यच्छब्दं सर्वं शालेति सा स्मृता ॥ १९ ॥
 शालानां यत् पुनर्मध्यं वापी पुष्करिणी च सा ।
 संछन्ना (चासा)पि यस्य स्यात् तद् गर्भगृहमुच्यते ॥ २० ॥
 गृहे महाजनस्थानं त्रिकुञ्जं यत् प्रकलिप्तम् ।
 उपस्थानं तद्वाहुः स्याचोपस्थानकं लघु ॥ २१ ॥
 प्रासादस्तु स एव स्यादल्पा प्रासादिका स्मृता ।
 दीर्घप्रासादिका यासौ वलभीत्यभिधीयते ॥ २२ ॥
 शालाग्रे वलभी या स्यादलिन्देति वदन्ति ताम् ।
 शालां चिना तु वलभी वलभेति निगद्यते ॥ २३ ॥
 अल्पाल्पास्तु चतुष्कुञ्जा ये तेऽपवरका मताः ।
 गृहे चाभ्यन्तरस्थानं शुद्धान्तं इति कीर्त्यते ॥ २४ ॥
 प्रतोलीं तां विदुलोकिः सुरज्ञामिव यां वसेत् ।
 सा कक्षेत्युदिता तज्जैर्यद्वस्थानतरं गृहे ॥ २५ ॥
 यदुपस्थानकं नाम ये चापवरकास्तथा ।
 ते कोषुका या तु कण्ठा कुञ्जं भित्तिश्चयश्च सा ॥ २६ ॥
 भेत्तशाला भवेद् या तु तन्महानसमुच्यते ।
 यच्छब्दं द्वारदेशे तु तमाहुद्दीरकोषुकम् ॥ २७ ॥
 प्रवेशनमिति प्राहुद्दीरनिर्गमनं तथा ।
 जलनिर्गमनस्थानं विद्वैर्यमुदकभ्रमः ॥ २८ ॥
 भवनस्याङ्गणं यत्तु तदाहुर्भवनाजिरम् ।
 वनाजिरं वनमही त्वाश्रमाजिरमाश्रमे ॥ २९ ॥
 उत्तरोदुम्बवरस्याधः शिष्टां मध्ये च कुञ्जयोः ।
 तज्ज्वास्तां देहलीत्याहुः कपाटाश्रयमेव च ॥ ३० ॥

१. 'छि', २. 'सर्वशा' क. पाठः । ३. 'त्वेति विधीयते' स. पाठः । ४. 'रे',
 ५. 'भुक्तिशा' क. पाठः । ६. 'य उद', ७. 'पिण्डयोः' स. पाठः ।

कपाठं द्वारपक्षः स्यात् कपाटपुटमेव च ।
 पक्षः पिथानो वरणो द्वारसंवरणं तथा ॥ ३१ ॥

कपाठं संपुटस्ते द्वे (१) कपाटयुगलं च तत् ।
 कलिका द्वारवन्धार्थी या स्यात् तामर्गलां विदुः ॥ ३२ ॥

सा स्यादर्गलमूचीति यदि दीर्घा प्रमाणतः ।
 पुराणां सा तु परिषः कलिहो गजवारणम् ॥ ३३ ॥

चिद्रेंगवाक्षप्रतिमैश्छिद्रितं सर्वतस्तु यत् ।
 फलकं तद् गवाक्षः स्याज्ञालमित्यपि कथ्यते ॥ ३४ ॥

हर्म्यद्वारे यृहद्वारे तथा हर्म्यावलोकने ।
 प्राकारान्तरपृष्ठे तु या च प्रासादिका भवेत् ॥ ३५ ॥

पार्व्योरुभयोरेषां फलकद्यमुच्चितम् ।
 उपर्युपरि संक्षिप्तपर्वचन्द्रद्याकृति ॥ ३६ ॥

आनने द्वे यथा चास्मिन् शिष्ठेऽर्यैर्यहाधरैः ।
 तयोरुपरि सन्ध्या च तारकाकृति मण्डलम् ॥ ३७ ॥

तत् तोरणमिति प्रोक्तं यज्ञ तेन परिष्कृतम् ।
 सुवर्णतोरणं च स्यान्मणितोरणमेव च ॥ ३८ ॥

पुष्पतोरणमध्येतत् क्रियते पुष्पकादिभिः ।
 तोरणात्रे ठकारो यः सिंहकर्णः स उच्यते ॥ ३९ ॥

नाम्ना संयमनानीति यृहसञ्चरभूपयः ।
 यृहस्य पार्व्यं यद्यस्मिस्तत् तत्संयमनं विदुः ॥ ४० ॥

भित्तिर्यद्वाय दारुणां तरङ्गाग्रवदौनतम् ।
 मरालपीली सा हर्म्या(त्) प्रगाली निर्गमोऽभसः ॥ ४१ ॥

स च प्राकार इत्युक्तः कण्ठः स्यादङ्गणस्य यः ।
 द्वारस्य तु समीपे यत् प्रद्वारं तदिहोन्यते ॥ ४२ ॥

१. 'नावरणे द्वा' क. पाठः । २. 'कथ्यते', ३. 'स्त्रा' ख. पाठः । ४. 'यावनं',
 ५. 'दाननम्' क. पाठः । ६. 'भित्तिर्यामान्यं वाक्यं परिमतो मतः । विसीर्णमुच्चित्ता
 वली' (?) ख. पाठः । ७. 'स्य च समीपे यत्' क. पाठः ।

यदिष्टुकचितं मूले द्वारस्य भवति स्थलम् ।
 दीर्घं वा ह्रस्वमथवा तदास्थलकमिष्यते ॥ ४५ ॥
 मौत्रभूमिरमेधयेति वर्चस्कोशस्करस्तथा ।
 यृहाच भित्तिसामान्यं वाचं परिसरो मतः ॥ ४६ ॥
 विस्तीर्णमुच्छ्रितं यत् स्याद् वेशम् सोऽहं उदाहृतः ।
 संक्षिप्तमेतदेवोक्तं तज्ज्ञरद्वालकाख्यया ॥ ४७ ॥
 तदेवात्यन्तसंक्षिप्तमद्वालीति निगच्यते ।
 अद्वाली या तु नात्युच्चा तामत्राद्वालिकां विदुः ॥ ४८ ॥
 एकनाडीगतच्छ्लद्रैः काष्ठनालैः परिश्रितम् ।
 यत्र काष्ठप्रणालीति छद्यष्टुम्बु धावति ॥ ४९ ॥
 स्तम्भशीर्षकरूपाणि काष्ठमूलाश्रितानि च ।
 सुपिराणि प्रयत्नेन काष्ठनाडीमुखान्तरैः(?) ॥ ५० ॥
 रूपाणामय तेषां तु स्तननासामुखाक्षिभिः ।
 नानास्थानस्थितानां च वृपवानरदंष्ट्रिणाम् ॥ ५१ ॥
 कृतमूक्षमान्तरच्छ्लद्रैः प्रवर्षति समन्ततः ।
 तद् धारागृहमित्युक्तं धारागारादिनामभृत् ॥ ५२ ॥
 कांस्यैलोहैस्तथा पट्टनिर्मृष्टादर्शनिर्मलैः ।
 निचिता यस्य भित्तिः स्थात् तद् दर्पणगृहं विदुः ॥ ५३ ॥
 पक्षद्वारं तदत्राहुर्यन्महाद्वारतोऽपरम् ।
 यत् प्राकाराश्रितं द्वारं पुरे तद् गोपुरं विदुः ॥ ५४ ॥
 निर्गताश्रोच्छ्रुताश्वेत्रं प्राकारस्यान्तरान्तरा ।
 उपका(ल्याद्यो)इति प्रोक्ताः क्षामाश्चाद्वालका मताः ॥ ५५ ॥
 चयप्राकारशालाः स्युः पुरीसंवरणाभिभाः ।
 प्राकारादनुपालास्तु प्राकार उपनिष्कलाः(?) ॥ ५६ ॥
 क्रीडागृहं यदारामे तदुद्यानं प्रचक्षते ।
 तीरंभसो जलोद्यानं जलवेशमाम्बुमध्यगम् ॥ ५७ ॥

१. 'मौत्रभूमिरमेधशान्तोऽव', २. 'कृतम्' ख. पाठः । ३. 'भिः' क. पाठः ।
 ४. 'धावपि', ५. 'ज्ञगुः' ख. पाठः ।

यदिष्टुकचितं मूले द्वारस्य भवति स्थलम् ।
 दीर्घं वा हस्यमथवा तदास्थलकमिष्यते ॥ ४३ ॥
 मूत्रभूमिरपेऽयेति वर्चस्कोऽवस्करस्तथा ।
 शृणाच भिन्निसामान्यं वाचं परिसरो मतः ॥ ४४ ॥
 विस्तीर्णमुच्छ्रितं यत् स्थाद् वेशम् सोऽहु उदाहृतः ।
 संक्षिप्तमेतदेवोक्तं तज्ज्ञरद्वालकाख्यया ॥ ४५ ॥
 तदेवात्यन्तसंक्षिप्तमद्वालीति निगद्यते ।
 अद्वाली या तु नात्युचा तामत्राद्वालिकां विदुः ॥ ४६ ॥
 एकनाढीगतच्छ्रिद्रेः काष्ठनालैः परिश्रितम् ।
 यत्र काष्ठप्रणालीति॑ छदपृष्ठेऽम्बु धावति ॥ ४७ ॥
 स्तम्भशीर्षकरूपाणि काष्ठमूलाश्रितानि च ।
 सुपिराणि प्रयत्नेन काष्ठनाढीमुखान्तरैः(?) ॥ ४८ ॥
 रूपाणामथ तेषां तु स्तननासामुखाक्षिभिः ।
 नानास्थानस्थितानां च वृष्पवानरदंडिणाम् ॥ ४९ ॥
 कृतमूलमान्तरच्छ्रिद्रेः प्रवर्षति समन्ततः ।
 तद् धारागृहमित्युक्तं धारागारादिनामभृत् ॥ ५० ॥
 कांस्यैलोहैस्तथा पट्टिनिर्मृष्टादर्शनिर्मलैः ।
 निचिता यस्य भिन्निः स्थात् तद् दर्षणगृहं विदुः ॥ ५१ ॥
 पक्षद्वारं तदत्राहुर्यन्महाद्वारतोऽपरम् ।
 यत् प्राकाराश्रितं द्वारं पुरे तद् गोपुरं विदुः ॥ ५२ ॥
 निर्गताश्रोच्छ्रिताश्रेव प्राकारस्यान्तरान्तरा ।
 उपका(ल्या?र्या) इति प्रोक्ताः क्षीमाथाद्वालका मताः ॥ ५३ ॥
 चयप्राकारशालाः स्युः पुरीसंवरणाभिधाः ।
 प्राकारादनुपालास्तु प्राकार उपनिष्कलाः(?) ॥ ५४ ॥
 क्रीडागृहं यदारामे तदुद्यानं प्रचक्षते ।
 तीरेऽम्भसो जलोद्यानं जलवेशमाम्बुमध्यगम् ॥ ५५ ॥

१. 'मौत्रभूमिरपे आन्तो व', २. 'कृतम्' ख. पाठः। ३. 'भिः' क. पाठः।
 ४. 'धावति', ५. 'जगुः' ख. पाठः।

वेश्मानि समशालानि भवन्ति परिसङ्घचया ।
 पञ्चषष्ठिसहस्राणि तथा पञ्चशतानि च ॥ ८ ॥
 गृहाणामष्टशालानां पद्मिंशदपरा भवेत् ।
 लक्षद्वयं सहस्राणि द्विषष्ठिः शतमेव च ॥ ९ ॥
 गृहाणां नवशालानां चत्वारिंशत्तुर्युता ।
 दशलक्षसहस्राणि चत्वारिंशत् तथाष्ट च ॥ १० ॥
 शतानि दशशालानां पञ्च पद्मसतिस्तथा ।
 गृहद्वितययोगेन संयुक्ताख्यानि विंशतिः ॥ ११ ॥
 गृहद्वितययोगेन द्वात्रिंशदिह वेऽमनाम् ।
 दशपञ्च तथान्यानि भवन्ति हलकान्यपि ॥ १२ ॥
 गृहमालाथ सङ्कुटो गृहनाभिर्गृहाङ्गणम् ।
 उद्दिनं भिन्नकक्षं च निलीनं प्रतिपादितम् ॥ १३ ॥
 अन्यानि चाष्टभेदानि भवन्त्युत्तमवर्णिनाम् ।
 लक्षणं नाम संस्थानं चैतेषां प्रतिपाद्यते ॥ १४ ॥
 वर्णिनां स्याच्चतुःशालं भित्तं द्वात्रिंशता करः ।
 सेनापतेश्चतुःपष्ठिस्तद्वदेव पुरोधसः ॥ १५ ॥
 श्रेष्ठमष्टशतं राजामेतानि तु यथाक्रमम् ।
 चतुःपदष्टहान्या स्युः पञ्चवं च पृथक् पृथक् ॥ १६ ॥
 विशोधयेत् कनीयोभिर्मध्यमानि यथाक्रमम् ।
 नरेन्द्रपुरुषाणां स्युर्वेश्मान्येतानि वृद्धये ॥ १७ ॥
 गृहाणि शोधयेत् प्राग्वज्ज्यायांस्यपि च मध्यमैः ।
 भवन्त्येतानि भूषानां रतिकोशप्रतिश्रयाः ॥ १८ ॥
 दशांशयुक्तो विस्तारादायामो विप्रवेश्मनाम् ।
 अष्टपद्मचतुर्शाङ्क्यः क्षत्रादित्रयवेऽमनाम् ॥ १९ ॥
 यो विस्तारः स एव स्यादायामोऽस्मिन् यथाक्रमम् ।
 विद्युद्रयोः स्यादाधिकर्यं पद्मे ज्येष्ठे च सज्जनि ॥ २० ॥

कर्णमूत्राद् वहिः स्तम्भान् न्यसेत् सर्वान् प्रयत्नतः ।
धान्नां षोडशहस्तानां पञ्चानां चतुरुचरा ॥ २१ ॥

द्विदिः शालास्तु तेषां स्युथतुरंशेन विस्तृताः ।
शालाद्यासार्थतोऽलिन्दः सर्वेषामपि वेशमनाम् ॥ २२ ॥

तस्याः षोडशहस्ते स्यात् पञ्चमांशद्वयेन वा ।
सप्तमांशत्रयेण स्याद् द्वयोरपरवेशमनोः ॥ २३ ॥

अन्त्योर्हस्तयोः स स्याच्चतुर्भिर्नवमांशकैः ।
पञ्चभिः पद्मिरेभिश्च सार्थैः साङ्गत्रिनग्नैः करैः ॥ २४ ॥

दैर्घ्यं स्याद् दशभिः सार्थैः शालायाः षोडशादिषु ।
निवेशदशमांशो यः स मुतः सप्तभिः करैः ॥ २५ ॥

शालाया विस्तरः प्रोक्तः श्रेष्ठानामिह वेशमनाम् ।
अलिन्दमानं प्रागेव प्रोक्तं निखिलवेशमनाम् ॥ २६ ॥

यच्छालालिन्दयोः शेषं भवेद् गर्भगृहं हि तत् ।
मूषावैच्छिन्नमिच्छन्ति शालादैर्घ्यं विपश्चितः ॥ २७ ॥

शालाद्यासप्रमाणा स्यात् सर्वेषामवकोसिमा ।
दिशासु भवने शाला विदिशाकर्णसामयः(?) ॥ २८ ॥

कर्णशाला (तैतु) या प्रोक्ता सा च ज्ञेयावकोसिमा ।
अलिन्दशालयोर्मध्ये या स्यान्मूरेति सा स्वता ॥ २९ ॥

* पूर्वद्वारं नियम्यादावादिमूर्षा तदुत्तरा ।
मूर्षा भद्रा इति प्राहुस्तत्संख्यामवधारयेत् ॥ ३० ॥

यावन्मूर्षं भवेद् वेशम तावद् भद्रं तदुच्यते ।
भद्राभद्रे शक्रदिक्स्थे सौम्यासौम्ये यमाश्रिते ॥ ३१ ॥

शान्ताशान्ते प्रतीचीस्ये सौम्यदिक्स्थे शिवाशिवे ।
अलिन्दा इति केऽप्याहुर्मूर्षा इत्यपरे विदुः ॥ ३२ ॥

१. 'स्यां' क. पाठः । २. 'साङ्गत्रि' ख. पाठः । ३. 'विच्छिँ', ४. 'मा',
५. 'मूरेति', ६. 'सा' क. पाठः । ७. 'सा' ख. पाठः ।

* 'पूर्वद्वारमियं यावदादिमूर्षा' इति पाठः स्यात् ।

भद्रा इति जगुः केचिदन्ये परिसरा इति ।
एकद्वित्रिचतुःपञ्चषट्सप्ताश्टौ॒ए॑क्षेण याः ॥ ३३ ॥

मूर्पास्तासां प्रवहणांसंज्ञाः स्युर्वेश्मनामिह ।
तासामाच्याः प्रशस्ताः स्युरप्रशस्तास्ततः पराः ॥ ३४ ॥

नामतो गुणतथैव शुभाशुभफलोदयात् ।
अैष्ट्रावादौ गुरुल् न्यस्येत् ततश्चाद्यगुरोरथः ॥ ३५ ॥

लघुं न्यस्येत् ततः शेषान् विद्धीत यथोपरि ।
गुरुभिः पूर्येदादिं यावत् स्युर्लघबोऽखिक्षाः ॥ ३६ ॥

आद्यपञ्चको गुरुथैको लघुथैको यथाक्रमम् ।
अतः परं तु द्विगुणाः प्रतिपद्धकि भवन्त्यमी ॥ ३७ ॥

मूर्पामेदाश्चतुःश्चले पदपञ्चाश्चत्तद्वयम् ।
अलिन्दवीथीप्रग्रीवनिर्यूहकगवाक्षकैः ॥ ३८ ॥

तपक्षभद्रविन्यासरचनाभिरनेकथा ।
अपरस्परसंवाधात् संहृतैविवृतैरपि ॥ ३९ ॥

गृहमेदाः प्रमूर्यन्ते येचां संख्या न विद्यते ।
यत्संबद्धचतुश्चालममूर्पालिन्दकं हि तत् ॥ ४० ॥

एकभद्रादिगेहानां बूँपो नामान्यतः परम् ।
यान्येकलघुलक्षणाणि प्रस्तारे तानि तद्विदः ॥ ४१ ॥

कथयन्त्येकभद्राणि क्रमसंख्याविभागतः ।
प्रागायतं प्राग्निवलयं जयं संयमनप्रियम् ॥ ४२ ॥

प्रतीच्यं प्रासविन्यासं सुभद्रं कलहोन्नरम् ।
अष्टौ तान्येकभद्राणि द्विभद्राण्यभिदध्महे ॥ ४३ ॥

१. 'णाः सं', २. 'यः' क, पाठः । ३. 'अष्ट्रावदौ' ख, पाठः ।
५. 'बद्धं च' क, पाठः ।

इॄ 'आद्यपञ्चौ प्रथमाचामावलौ एको गुरुः, तत्याधस्तादपरो लघुः कर्तव्यः। एवं यथाक्रमं प्रस्तारसः इति क्रमित्यालिखेत्। तत्यथा — चतुर्गुरुस्प्रस्तारे षोडश गुरुलघवः। तत्वस्तदद्यतो द्वौ गुरु द्वौ लघु इति एकैकस्वाधो न्यस्येत्। तदप्रतोऽपि चत्वारो गुरवश्चत्वारो लघवः। तदोऽपि अष्टौ गुरवः अष्टौ लघवः। एवं प्रतिपद्धकि द्विगुणान् गुरुलघूर न्यस्येत्। अचन्परः प्रस्तारः।' इति द्विष्णमस्ति ।

पूर्वोचरोत्तरं पूर्वाद् भद्रादिह विधानतः ।
 स्यातां प्राग्मेलकाव्यद्रूत् पूर्वाशा दक्षिणा परे(?) ॥ ४४ ॥

ईरं सुनीथैमाप्नेयं द्वीपमाप्यं सुसंयगम् ।
 अर्पीचैमं व्याकोशं नैक्षितं वृपवं विनम् ॥ ४५ ॥

काव्यं विपासमानीरं कान्तं सौभं विपश्चिमम् ।
 गवयं श्रीवहं श्लिष्टं गणं भीमयोगमम् ॥ ४६ ॥

वर्तं चलं शठं क्रान्तमित्यष्टाष्ठिंशुको गणः ।
 द्विभद्राणां समाख्यातस्त्रिभद्राणामतः परम् ॥ ४७ ॥

ऐन्द्रं विलोममायाम् वधयेकाक्षर्मनितकम् ।
 प्रकाशं पैत्रमायस्तं भद्रं प्रान्तं प्रसाधकम् ॥ ४८ ॥

क्षेमं विधातमायातं कान्तं चित्रं द्विमन्दिरम् ।
 सुदक्षिणं भयं श्लिष्टं प्रमोदं व्यायतं वियत् ॥ ४९ ॥

आप्यं सुनागं नानेन्द्रमीरितं शोभनं घनम् ।
 द्रुस्तोत्तरं कफं कर्णं कुष्टं कान्तं क्रमागतम् ॥ ५० ॥

द्विशस्तं द्विभयं प्रोक्तं चक्रं मलवमायतम् ।
 चनं भारं सुगाराख्यमागारं वीरमेव च ॥ ५१ ॥

व्यायाममायुतं तद्रूपं व्याहृतं च ततः परम् ।
 दुर्गमं क्षोभेसंज्ञं च कृत्रिमं क्षोभणं तथा ॥ ५२ ॥

चारुरुच्याभिधानं च ध्रुवं कथमिति क्रमात् ।
 पद्मपञ्चाशत् त्रिभद्राणि चतुर्भद्राण्यतः परम् ॥ ५३ ॥

कृतमर्चायनं पौष्णमुद्रतं मिथ्रमुत्सुकम् ।
 विद्वं विपक्षमाहृतं रुचकं वर्धनं पृथुं ॥ ५४ ॥

* कलहं छेलमायास्यं त्रिनाभं स्वस्तिकं स्थिरम् ॥ ५५ ॥

१. 'प्राक्षेत्रिका' ख. पाठः । २. 'तमा' क. पाठः । ३. 'दीप्यं वाप्यसु',
 ४. 'कव्यं विकाशमा', ५. 'तम्', ६. 'मान्तकम्' ख. पाठः । ७. 'क्षेमं',
 ८. 'आप्यं', ९. 'मसं', १०. 'शुक्' क. पाठः । ११. 'चल' ख. पाठः ।

* मध्यमाणलक्षणलेखे क तु कलमिति वल्लते ।

शरलं द्विगुणं नाथं चित्रं भ्रान्तं विश्वारणम् ।
 साधारणं नतं ऋयंशमृपं रोगं विशेषणम् ३ ॥ ५६ ॥
 प्रतीच्यं त्रिसमं स्वरं गुपतीकं नलं क्षपम् ।
 व्याप्तमाक्षीडनं व्यर्थमीशानं सुखमव्ययम् ॥ ५७ ॥
 मगधं क्षिप्रमागस्त्यमेकोजं द्विर्गतं लिहम् ।
 पकं विलोममुद्दण्डं मुण्डं मातङ्गमाखिलम् ४ ॥ ५८ ॥
 खर्वं पिनाकमुद्यन्तं विशिखं प्रसभं रजम् ।
 (चुरुरुच)कं (स?सै)कलं वामं वर्धनं धावनं सहम् ॥ ५९ ॥
 चयं सेव्यं कलं तीर्णं चतुर्भद्राणि सप्ततिः ।
 पञ्चभद्राण्यथोच्यन्ते पद्मपञ्चाशदनुकमात् ॥ ६० ॥
 कानलं लोलुपं जिह्वं प्रगालं सालिनं जिनम् ।
 सुजयं विजयं यामं जयं ज्ञातं जपं तपम् ॥ ६१ ॥
 जंमं वरं चरं वरं + विशिष्यं सुप्रभं प्रभम् ।
 प्रतीक्षं क्षेमिणं युक्तं शान्तं वैतं विनोदनम् ॥ ६२ ॥
 सन्दोहं विप्रदोहं च विद्वुतं सततं ततम् ।
 व्याकुलं लीनमालीनं विचित्रं लम्बनं खरम् ॥ ६३ ॥
 शेखरं विचुर्धं चैत्रं व्यासकं संपदं पदम् ।
 विशिखं चतुरं प्रातं सुस्थितं दुःस्थितं स्थितम् ॥ ६४ ॥
 चक्रं वैक्रं लघं लाभं संपर्कं मूलमव्ययम् ।
 अष्टाविंशतिरन्यानि पद्मद्राणि निवोधत ॥ ६५ ॥
 किञ्चरं कौस्तुभं हर्म्यं धार्मिकं निषयं वसु ।
 सादीकं वामनं गौरमस्थिरं कमिणं खेलम् ॥ ६६ ॥
 विवरं वोलिशं धौमं त्रिपुष्टं मन्दिरं भवम् ।
 अशोकं भास्त्ररं चौष्ठं लातव्यं सुखनं मखम् ॥ ६७ ॥

१. 'वि' क. पाठः । २. 'न' ख. पाठः । ३. 'निषिधं' क. पाठः ।
 ४. 'खरम्', ५. 'वागिसं' ख. पाठः ।

३ उक्षणे तु विशेषणमिति पञ्चते । ४ ख. पुस्तकेऽर्थमिदं छतम् । + ख. पुस्तकद्वय-
 उक्षणपाठरीत्या तु विरोपमिति पाठ्यम् ।

वाजि नेत्रं भ्रमं घोषं सप्तभद्राण्यतः परम् ।
 भाण्डीरं * वैसैहं प्रस्थं ग्रतानं वासुलं कटम् ॥ ६८ ॥

लक्ष्मीवासं सुगन्धान्तमष्टैतानि नामतः ।
 अन्यच्च सर्वतोभद्रपेकं भद्राभिरष्टभिः ॥ ६९ ॥

संप्रकल्प्यं चतुःशालं वृमथैषां शुभाशुभम् ।
 प्रदक्षिणा शुभा मूषा विपरीता विपर्यये ॥ ७० ॥

समवाये यथा भूयो जानीयात् साध्वसाधु च ।
 तथाष्टावेकभद्राणि सप्तभद्राणि च ऋमात् ॥ ७१ ॥

द्विभद्राण्यष्टभिर्युक्ता पद्मभद्राणि च विंशतिः ।
 षट्पञ्चाशत् त्रिभद्राणि पञ्चभद्राणि चोन्नयेत् ॥ ७२ ॥

सप्ततिश्च चतुर्भद्राण्येकं भद्राभिरष्टभिः ।
 एवं शतद्वयं पिण्डः षट्पञ्चाशत् वेशमनाम् ॥ ७३ ॥

भद्रैः पूर्वविधानेन चतुःशालाक्रियादिषु ।
 मूषा स्यात् कुण्डजैस्तेषु चतुश्शालेषु वेशमसु ॥ ७४ ॥

अनुवंशाथिते मूषे स्वस्तिके तत्पराङ्मुखे ।
 मुखायते च पुरतो द्वे स्यातामवकोशिमे ॥ ७५ ॥

नोदङ्मुखः स कर्तव्यः कार्यः प्राग्जीवसंयुतः (?) ।
 वर्धमाने तथा का(र्ये?यो) यथा प्राग्नीवसंयुतः ॥ ७६ ॥

वर्धमाने तथा कार्ये द्वारमूषे मुखायते ।
 मूषाया दक्षिणे स्यातां दीर्घवामेऽवकोशिमे ॥ ७७ ॥

नन्द्यावर्तयृहे सर्वा नन्द्यावर्ता भवन्ति ताः ।
 द्वे(स्तरूपै)षे रुचके स्यातामायते त्ववकोशिमे ॥ ७८ ॥

सर्वद्वारवहा मूषाः सर्वतोभद्रवेशमनि ।
 आदिमूषा भवेदेका यृहं प्रागायतं हि तत् ॥ ७९ ॥

द्वितीयया प्राग्विलयपेकया तदनन्तरम् ।
 प्रदक्षिणेन वेशमानि जयादीन्येकयैकया ॥ ८० ॥

१. 'सर्वं' क. पाठः ।

* लक्षणानुसाराद् वैसनमिति पाञ्चम् ।

मृपया स्युः क्रमादेवं कथ्यन्ते तत्कलान्यथ ।
 धनमर्थविनाशाथ जयथैवाशुभं सदा ॥ ८१ ॥
 प्रीतिसुद्देशकल्याणकलहाशाप्यनुक्रमात् ।
 यत्र पूर्वे उभे मूषे तदीरं परिकीर्तिम् ॥ ८२ ॥
 यत्र पूर्वा तृतीया च तत् १ सुनीतं गृहं विदुः ।
 आश्रये द्वितीये स्तो द्वीपे चाद्यचतुर्थके ॥ ८३ ॥
 द्विचतुर्थ्यां तथाचाप्ये विचतुर्थ्यां सुसंयमे ।
 अर्धचें त्वाद्यपञ्चम्यौ द्वितीयेभे सपञ्चमी ॥ ८४ ॥
 व्याकोशे च लिपञ्चम्यौ नैऋते द्विशराभिषे ।
 वृपमे प्रथमापष्टुच्यौ द्विपञ्च्यौ च तथा विने ॥ ८५ ॥
 काव्ये तृतीया पष्टी च विपासेऽविधरसाभिषे ।
 आनीरे पञ्चमीपष्टुच्यौ साद्या कान्ते च सप्तमी ॥ ८६ ॥
 सौभे द्वितीयासप्तम्यौ त्रिसप्तम्यौ विपञ्चिमे ।
 गव्ये सप्तमीतुये श्रीवहे पञ्चसप्तमी ॥ ८७ ॥
 सपष्टी सप्तमी श्लिष्टे गणे पूर्वाष्टमी तथा ।
 भीमेऽष्टुमी द्वितीया च अष्टम्यौ चाप्ययोगमे ॥ ८८ ॥
 वर्ते चतुर्थ्यां पष्टी च पञ्चमी चाष्टमी चले ।
 पष्टुचतुर्थ्यौ शटे क्रान्ते सप्तमी चाष्टमीति च ॥ ८९ ॥
 इत्यष्टाविंशतिः प्रोक्ता द्विभद्राणामिहौकसाम् ।
 अथ वृमखिभद्राणि तर्वन्द्रं पुष्टिवर्धनम् ॥ ९० ॥
 स्याद् याम्यपञ्चमद्वारमाद्यमूषात्वयान्वितम् ।
 आद्या द्वितीया तुर्या च यस्य द्वारं विपञ्चिमम् ॥ ९१ ॥
 विलोमं नाम तद् वेशम् शूद्राणां पुष्टिवर्धनम् ।
 आद्या तृतीया तुर्या स्यादायामे सर्वतोमुखे ॥ ९२ ॥
 वधे द्वित्रिचतुर्थ्यैः स्युद्धारं च स्यादुदग्दिशि ।
 यत्र साद्ये द्विपञ्चम्यावेकाक्षं तदुदाहृतम् ॥ ९३ ॥

१. 'शोभे' क. पाठः । २. 'ते' ख. पाठः ।

३. लक्ष्यानुसारात् तु सुनीथमिति पात्रम् ।

सादे यत्र द्विपञ्चम्यौ तत् प्रोक्तं गृहमन्तिकम् ।
 यत्र स्युद्वित्रिपञ्चम्यः प्रकाशं सर्वद्विद्विकृत् ॥ ९४ ॥

पूर्वा चतुर्थीपञ्चम्यौ यत्र तत् पैत्रमुच्यते ।
 पञ्चमी द्विचतुर्थ्यौ च यत्रायस्तं तदीरितम् ॥ ९५ ॥

त्रिचतुःपञ्चमीयुक्तं भद्रमाहूर्मनीषिणः ।
 आद्या द्वितीया पष्टी च यत्र तत् प्रान्तशब्दितम् ॥ ९६ ॥

आद्या तृतीया पष्टी च स्यात् प्रसाधकवेशमनि ।
 तद् भवेत् सर्वतोद्वारं तथा सर्वार्थसाधकम् ॥ ९७ ॥

द्वितीया च तृतीया च पष्टी च क्षमनामनि ।
 तस्य प्रत्यग्निदिशि द्वारं शूद्रवर्गस्य चेष्टदम् ॥ ९८ ॥

पष्टी चतुर्थी चाद्या च स्युर्विधातारूपवेशमनि ।
 पष्टी द्वितीर्थे यस्मिस्तदायातं दक्षिणामुखम् ॥ ९९ ॥

पदचतुर्ख्यियुतं कान्तं तत् स्यात् सर्वार्थसाधकम् ।
 पदपञ्चाद्यायान्वितं चिलं तच्च स्याद् याम्यदिङ्मुखम् ॥ १०० ॥

द्वितीयापञ्चमीपञ्चो यस्मिन् स्युस्तद् द्विष्णन्दिरम् ।
 यत्र त्रिपञ्चमीषष्ठ्यस्तद् वदन्ति सुदक्षिणम् ॥ १०१ ॥

चतुर्थीपञ्चमीपञ्चो भये स्युस्तन्न द्विद्विकृत् ।
 पूर्वाद्वितीयासप्तम्यो यत्र तच्छृष्टसंज्ञितम् ॥ १०२ ॥

याम्यास्यमिदमिच्छन्ति शुभं सर्वार्थदं वृणाम् ।
 सादे तृतीयासप्तम्यौ प्रमोदे परिकीर्तिते ॥ १०३ ॥

यत्र स्युद्वित्रिसप्तम्यस्तद् वेशम् व्यायतं स्मृतम् ।
 यत्राद्या च चतुर्थी च सप्तम्यपि च तद् वियत् ॥ १०४ ॥

द्विचतुःसप्तमीमूष्माप्यं स्याद् दक्षिणामुखम् ।
 त्रिचतुसप्तमीभिस्तु सुनागं वेशम् कीर्त्यते ॥ १०५ ॥

तच्च याम्यापरमुखं धनथान्यसुखप्रदम् ।
 संपूर्णी पञ्चमी पूर्वा मूष्मा नागेन्द्रसंज्ञिते ॥ १०६ ॥

१. 'तृती', २. 'क्षे', ३. 'द्योच्छूतं' ख. पाठः ।

मृपा द्विपञ्चसप्तम्यो याम्यं च मुखमीरिते ।
 त्रिपञ्चसप्तमीमृपा शोभनं भवेत् ॥ १०७ ॥
 चतुर्थी पञ्चमी यत्र सप्तम्यपि च तद् घनम् ।
 पूर्वा पष्ठी सप्तमी च स्मृता शस्तोत्रे गृहे ॥ १०८ ॥
 द्वितीयासप्तमीपष्ठयो यस्मिंस्तत् कफसंज्ञितम् ।
 द्वारं वारुणमेतस्य हितं च स्याद् द्विजन्मनाम् ॥ १०९ ॥
 कर्ण स्यात् पञ्चमद्वारं त्रिपष्ठीसप्तमीयुतम् ।
 चतुर्थीसप्तमीपष्ठयो मृपाः स्युः कुष्टसंज्ञिते ॥ ११० ॥
 सप्तमीपञ्चमीपष्ठीयुक्तं क्रान्तं यशस्करम् ।
 आद्याष्टमी द्वितीया च मृपा प्रोक्ता क्रमागते ॥ १११ ॥
 आद्याष्टमी तृतीया च द्वितीयस्ते भवने स्मृताः ।
 यत्राष्टमी त्रिद्वितीये द्विमयं तदुदाहृतम् ॥ ११२ ॥
 आद्याष्टमी चतुर्थी च यत्र तचक्तसंज्ञितम् ।
 तुर्याष्टमी द्वितीया च यत्र तन्मलयं विदुः ॥ ११३ ॥
 तुर्याष्टमी तृतीया च यत्र तत् प्रोक्तमायतम् ।
 आद्याष्टमी पञ्चमी च स्याद् यस्मिंस्तद् वनं स्मृतम् ॥ ११४ ॥
 द्वितीया पञ्चमी मृपा यत्र स्यादप्टमी तथा ।
 तद् भाराख्यमुदग्बवतं शुभं विघ्नकुदन्यथा ॥ ११५ ॥
 त्रिपञ्चम्यष्टमीभिस्तु सुगारं परिकीर्तितम् ।
 यत्राष्टमी तदागारं चतुर्थी पञ्चमी तथा ॥ ११६ ॥
 यस्मिन्नाद्याष्टमीपष्ठयो वीरं तदिह कीर्तितम् ।
 यष्ट्यष्टमी द्वितीया च गृहे व्यायामनामनि ॥ ११७ ॥
 यष्ट्यष्टमीतृतीयाभिर्मृपाभिः प्रोक्तमायुतम् ।
 यष्ट्यष्टमीचतुर्थ्यः स्युर्यत्र तद् व्याहृतं विदुः ॥ ११८ ॥
 यष्ट्यष्टमीपञ्चमीभिर्दुर्गमं व्याधिकुन्नतम् ।
 आद्याष्टमीसप्तमीभिः संयुक्तं क्षोभमुच्यते ॥ ११९ ॥
 द्विसप्तम्यष्टमीयुक्तं गृहं कुत्रिमसंज्ञितम् ।
 त्रिसप्तम्यष्टमीभिस्तु मृपाभिः क्षोभणं भवेत् ॥ १२० ॥

चारुरुचयं चतुःसप्तम्यष्टमीभिः समन्वितम् ।
सप्तम्यष्टमीभिर्युक्तं घुवमिति स्मृतम् ॥ १२१ ॥

पद्सप्तम्यष्टमीयुक्तं कथं सर्वार्थसिद्धिम् ।
इत्युक्तानि त्रिभद्राणि शस्तान्येतेषु यानि च ॥ १२२ ॥

तानि नित्यं प्रयोज्यानि वर्णनां च मनीषिभिः ।
आद्याश्वतस्त्रो मूषा: स्युर्यत्र तत् कृतसंज्ञितम् ॥ १२३ ॥

सर्वद्विगुणकृत् पूर्वप्रत्यगद्वारं नचान्यथा ।
आद्यास्तिस्त्रः पञ्चमी च यस्मिन्नर्चायनं हि तत् ॥ १२४ ॥

तद् भवेत् पश्चिमद्वारं यहं सर्वगुणान्वितम् ।
यस्मिन्नाद्या द्वितीया च चतुर्थी पञ्चमी तथा ॥ १२५ ॥

तत् पाण्डित्याद्यास्तिस्त्रस्तथाद्या च यस्मिन्स्तद् यहमुद्धतम् ॥ १२६ ॥

द्वारेण पश्चिमेनैतच्छस्यते दक्षिणेन वा ।
द्वयाद्याश्वतस्त्रो यत्र स्युस्तन्मिथं प्रीतिवर्धनम् ॥ १२७ ॥

प्रशस्तं क्षत्रियादीनां तस्य द्वाः प्राच्यपाचि वा ।
आद्यास्तिस्त्रस्तथा पष्टी यस्मिन् मूषास्तदुत्सुकम् ॥ १२८ ॥

तच्छस्तं पश्चिमद्वारं विप्रादीनां जयावहम् ।
आद्या द्वितीया तुर्या च मूषा पष्टी च यत्र तत् ॥ १२९ ॥

याम्योप्रत्यइमुखं शस्तं विद्वं नाम कुलद्विकृत् ।
आद्या तृतीया तुर्या च यस्मिन् पष्टी च तच्छुभम् ॥ १३० ॥

विषकं नाम धाम स्याद् द्वारमस्य च पश्चिमम् ।
आद्यास्तिस्त्रो यहे यस्मिन् मूषा पष्टी च तच्छुभम् ॥ १३१ ॥

स्याद् याम्यपश्चिमद्वारमाहूतं नाम तद् यहम् ।
आद्याद्वितीयापञ्चम्यो यत्र पष्टी च तद् भवेत् ॥ १३२ ॥

रुचकं नाम याम्यप्रागद्वारं सकलकामदम् ।
एकत्रिपञ्चपष्टुचः स्युर्यत्र तदर्धमानकम् ॥ १३३ ॥

प्राक्पथिमोत्तरद्वारं चातुर्वर्णस्य द्विद्विदम् ।
 यत्र स्युद्वित्रिपञ्चम्यो मूषाः पष्टी च तद् गृहम् ॥ १३४ ॥
 स्यात् पूर्वदक्षिणद्वारं प्रथितं पृथुसंज्ञया ।
 यस्मिन्ब्राह्मीचतुःपञ्चपष्टुयस्तत् कलभं विदुः ॥ १३५ ॥
 गुणैरुपेतं सकलैरुदगद्वारं निकेतनम् ।
 द्विचतुःपञ्चमीपष्टुयो यस्मिस्तच्छेलमुच्यते ॥ १३६ ॥
 दक्षिणं मुखमेतस्य पथिमं वा पश्चस्यते ।
 चतस्रस्त्र्यादयो यस्मिन्ब्राह्मीयास्य तदुदीरितम् ॥ १३७ ॥
 अप्रशस्तं वदन्त्येतत् तद्विदो भवनाथमम् ।
 आद्यास्तिस्तः सप्तमी च मूषाः स्युर्यत्र तद् गृहम् ॥ १३८ ॥
 त्रिनाभमुन्नरद्वारं शस्तं सर्वगुणान्वितम् ।
 आद्याद्वितुर्यासप्तम्यो यत्र तत् स्वस्तिकं स्मृतम् ॥ १३९ ॥
 प्राक्पथिमोत्तरद्वारं चातुर्वर्णेऽपि शस्यते ।
 आद्याचतुर्थीसप्तम्यो मूषाः स्युर्यत्र वेश्मनि ॥ १४० ॥
 तदिह स्थिरमित्युक्तं द्वारं चैतस्य दक्षिणम् ।
 आद्यास्तिस्तः सप्तमी च यत्र तत् सरलं विदुः ॥ १४१ ॥
 तद् भवेत् पथिमद्वारं सर्वदोषोजितं गृहम् ।
 यत्राद्या च द्वितीया च पञ्चमी सप्तमी तथा ॥ १४२ ॥
 द्विगुणं नाम तद् वेश्म द्वारं चास्य यथेपिस्तम् ।
 आद्यातृतीयापञ्चम्यः सप्तम्यपि च यत्र तत् ॥ १४३ ॥
 नाद्यं नामातिशीलाद्यं(?)प्रशस्तं सर्वदेहिनाम् ।
 द्वितीया च तृतीया च पञ्चमी सप्तमी शुहे ॥ १४४ ॥
 यत्र तच्चित्रनामेष्टद्वारं चित्रगुणैर्वृतम् ।
 आद्याचतुर्थीपञ्चम्यो यत्र स्युः सप्तमी तथा ॥ १४५ ॥
 तद् भ्रान्तं नाम पूर्वोदगद्वारं भवनमृद्धिकृत् ।
 यत्र द्वितीया तुर्या च स्यात् पष्टी सप्तमी तथा ॥ १४६ ॥

१. 'स' क. पाठः । २. 'बल', ३. 'द्वितीयास' ख. पाठः ।

विधारणं गृहं तत् स्यात् सर्वकामविवर्धनम् ।
 तृतीया यत्र तुर्या च पञ्चमी सप्तमी तथा ॥ १४७ ॥

तत् साधारणमित्याहुः सर्वद्वारं सुखावहम् ।
 आद्या द्वितीया पष्टी च सप्तमी यत्र तन्नतम् ॥ १४८ ॥

आद्या द्वितीया पष्टी चं त्वंशे स्यात् सप्तमी तथा ।
 द्वितीया च तृतीया च क्रृपे पष्टी च सप्तमी ॥ १४९ ॥

आद्या तुर्या च पष्टी च रोगे स्यात् सप्तमी तथा ।
 यत्र द्वितीया तुर्या च स्यात् पष्टी सप्तमी च तत् ॥ १५० ॥

विशेषणं नाम गृहं दक्षिणोत्तरदिङ्मुखम् ।
 तृतीया यत्र तुर्या च स्यात् पष्टी सप्तमी गृहे ॥ १५१ ॥

प्रतीच्यमीप्सितद्वारं तद् गृहं सर्वकामदम् ।
 यत्राद्यापञ्चमीपष्टीसप्तम्यस्त्रिसमं हि तत् ॥ १५२ ॥

प्रभूतवृद्धिदं वेशम् सप्तस्तैरन्वितं गुणः ।
 द्वितीयापञ्चमीपष्टीसप्तम्यो यत्र वेशमनि ॥ १५३ ॥

तदिह स्वैरमित्याहुर्धनधान्यसुखावहम् ।
 तृतीयापञ्चमीपष्टीसप्तम्यो द्वारमुत्तरम् ॥ १५४ ॥

पञ्चिमं वा भवेद् यत्र सुप्रतीकं च वृद्धिकृत् ।
 तुर्याद्याभिश्चत्तुर्मिनलमुत्तरदिङ्मुखम् ॥ १५५ ॥

आद्याद्वित्यष्टमीभिः स्यात् सर्वरूपमीतिकृत् क्षयम् † ।
 व्यासे पूर्वा द्वितीया च स्याच्चतुर्थी तथाष्टमी ॥ १५६ ॥

आद्यातृतीयातुर्याः स्युराक्रीडे तद्दण्डमी ।
 आद्यास्तिसः क्रमाद् व्यर्थं मूषाः स्यादष्टमी तथा ॥ १५७ ॥

ईशानाख्ये स्युराद्याद्वित्रिपञ्चम्योऽष्टमी तथा ।
 पूर्वाष्टमीत्रिपञ्चम्यो यस्मिस्तत् सुखसंज्ञितम् ॥ १५८ ॥

तत् पूर्वोदिङ्मुखं वृद्धचै जायते हानयेऽन्यथा ।
 यत्र स्युरष्टमीद्वित्रिपञ्चम्यस्तदिहाव्ययम् ॥ १५९ ॥

१. 'च सप्तमी यत्र तन्नतम्' क. पाठः ।

† क्षयमिति लक्ष्ये पठितम् ।

द्वारं यथेष्टुमेतस्य वास्तुविद्याविदो जगुः ।
 यस्मिन् पूर्वाष्टमीतुर्यापञ्चम्यो मग्निं हि तत् ॥ १६० ॥
 प्रागुदक्षपञ्चिमद्वारमिदं शंसन्ति सूर्यः ।
 यत्र द्वितुर्यापञ्चम्यो मूषाः स्युस्तद्वद्वष्टमी ॥ १६१ ॥
 तत् क्षिप्रं नाम सुखकृद् यथेष्टुं द्वारमिष्यते ।
 त्रिपञ्चम्यष्टमीतुर्या आगस्त्ये पञ्चिमामुखे ॥ १६२ ॥
 द्वितीयाद्याष्टमीपष्टुचो यत्रैकोजं तदुच्यते ।
 तृतीयाद्याष्टमीपष्टुचो यत्र तद् द्विर्गतं गृहम् ॥ १६३ ॥
 द्वितिपष्टुचोऽष्टमी चापि यस्मिस्तल्लिंहमुच्यते ।
 आद्यातुर्याष्टमीपष्टुचो यत्र तत् पर्कमुच्यते ॥ १६४ ॥
 पष्टुचष्टमीद्वितुर्याभिः(?) स्याद् विलोमाभिप्यं गृहम् ।
 पष्टुचष्टमीद्वितुर्याभिरुद्दण्डमिति कीर्तिम् ॥ १६५ ॥
 यस्मिन्नाद्याष्टमीपष्टीपञ्चम्यो मुण्डमेव तत् ।
 द्विपञ्चम्यष्टमीपष्टुचो मूषा मातङ्गसंज्ञिते ॥ १६६ ॥
 त्रिपञ्चम्यष्टमीपष्टुचो भवन्त्यस्वलनामनि ।
 तत् खर्वनाम तुर्याद्यास्तिस्त्रो यस्मिस्तथाष्टमी ॥ १६७ ॥
 आद्याद्वितीयासप्तम्यः पिनाके स्युस्तथाष्टमी ।
 त्रिसप्तम्यष्टमीपूर्वा यत्रोद्यन्तं तदुच्यते ॥ १६८ ॥
 अष्टमीद्वितिपञ्चम्यो यस्मिस्तद् विशिखं गृहम् ।
 आद्याचतुर्थीसप्तम्यः प्रसमे स्युस्तथाष्टमी ॥ १६९ ॥
 रजे द्वितुर्यासप्तम्यो मूषाः स्युस्तद्वद्वष्टमी ।
 त्रिसप्तम्यष्टमीतुर्या यत्र तद् रुचकं विदुः ॥ १७० ॥
 प्राक्प्रत्यग्द्वारमेतस्य शृद्राणामतिवृद्धिदम् ।
 सप्तम्यष्टमी मूषा पञ्चम्यपि च सैफले ॥ १७१ ॥
 वामे द्विपञ्चसप्तम्यो मूषा ज्ञेयास्तथाष्टमी ।
 त्रिपञ्चसप्तम्यष्टम्यो यस्मिस्तद् वर्धमानकम् ॥ १७२ ॥

इदमर्थं क. पुस्तके छत्तम् । लक्षणवाक्यपाठानुसारेण पूर्वत्र लक्षणिदेशे अस्त्वलमिति पाठ्यम् ।

विशेषतो द्विदिकरं वैश्यानामिति तद्विदः ।
 चतुःपञ्चाष्टसम्यो यस्मिंस्तद् धावनं भवेत् ॥ १७३ ॥

सप्तम्याद्याष्टमीष्ठ्यो यत्र तत् सहमुच्यते ।
 द्विसप्तष्ठ्याष्टमीभिर्मूर्त्याभिथ्यनं भवेत् ॥ १७४ ॥

पञ्चाष्टमीद्विसप्तम्यो (?) यस्मिंस्तत् सेव्यमीरितम् ।
 यत्र तुर्याष्टमी पष्ठी सप्तमी चेति तत् कलम् ॥ १७५ ॥

तीर्णे पष्ठ्याष्टमीपञ्चसप्तम्यः सर्वकामदम् ।
 यत्राद्याः पञ्च तत् प्रोक्तं कानलं सर्वकामदम् ॥ १७६ ॥

एकद्वित्रिचतुःपष्ठ्यो यत्र तद्वृलुपं स्मृतम् ।
 आद्यास्तिस्त्रः पञ्चपष्ठ्यो यस्मिंस्तज्जित्यमुच्यते ॥ १७७ ॥

प्रगाले पञ्चमीपष्ठीतुर्यापूर्वाद्वितीयकाः ।
 त्रितुर्यापञ्चमीपष्ठ्यः साद्याः स्युः सालिनाभिषे ॥ १७८ ॥

यत्र द्वित्रिचतुःपञ्चपष्ठ्यस्तज्जित्यमुच्यते ।
 एकद्वित्रिचतुर्थ्यः स्युः सुजये सप्तमीयुताः ॥ १७९ ॥

पञ्चमीसप्तमीद्वित्रिपूर्वाः स्युविजयाभिषे ।
 यत्रैकद्वित्रिचतुःपञ्चसप्तम्यो यामनाम तत् ॥ १८० ॥

यत्रैकत्रिचतुःपञ्चसप्तम्यस्तज्जयं विदुः ।
 मृपा द्वित्रिचतुःपञ्चसप्तम्यो (जाह्नवा)तसंज्ञिते ॥ १८१ ॥

आद्यास्तिस्तस्तथा पष्ठीसप्तम्यो यत्र तज्जपम् ।
 आद्याद्वितुर्यापष्ठीभिः सप्तम्या च तपं विदुः ॥ १८२ ॥

पष्ठीत्रितुर्यासप्तम्यो ज(ये?मे)पूर्वान्विता मताः ।
 द्वित्रितुर्यास्तथा पष्ठीसप्तम्यो वैरसंज्ञिते ॥ १८३ ॥

चरं तद् यत्र पूर्वे द्वे पञ्चपञ्चसप्तमीयुते ।
 चैत्ये स्यात् सप्तमी पष्ठी पञ्चम्याद्या तृतीयका ॥ १८४ ॥

विरोपे द्वित्रिपञ्चम्यः स्यात् पष्ठी सप्तमी तथा ।
 चतुर्थी पञ्चमी पष्ठी सप्तम्याद्या च सुप्रभे ॥ १८५ ॥

१. 'लुमं', २. 'पर' ल. पाठः ।

० क. युस्तकदृष्ट्यादेवरीत्या च 'वैरे' इति पाठ्यम् ।

प्रभारुये द्विचतुःपञ्चपञ्च्यः स्युः सप्तमी तथा ।
 त्रिचतुःपञ्चसप्तम्यः पृष्ठी च स्यात् प्रतीक्षके ॥ १८६ ॥
 आद्याश्वतस्त्रो यत्र स्युः साष्टम्यः क्षमिणं हि तत् ।
 स(स?)पूर्वा द्वित्रिपञ्चम्यो युक्तनान्नि तथाष्टमी ॥ १८७ ॥
 शान्ते द्वितुर्यापञ्चम्यः पूर्वा स्यादष्टमी तथा ।
 पूर्वात्रितुर्यापञ्चम्यः साष्टम्यस्त्रितसंज्ञिते ॥ १८८ ॥
 विनोदे द्वित्रिपञ्चम्यशतुर्था चाष्टमी तथा ।
 सन्दोहे त्वष्टमीपष्टयौ तिस्रः पूर्वादिकास्तथा ॥ १८९ ॥
 आद्याद्वितुर्यापष्टीभिरष्टम्या विप्रदोहकम् ।
 पष्टुचष्टमीत्रितुर्याद्या यस्मिस्तद् विद्वतं विदुः ॥ १९० ॥
 द्वित्रितुर्याष्टमीपञ्च्यो यत्र तत् सततं मतम् ।
 आद्याद्विपञ्चमीपष्टुचस्ततनान्नि तथाष्टमी ॥ १९१ ॥
 आद्यात्रिपञ्चमीपञ्च्यो व्याकुले स्युस्तथाष्टमी ।
 द्वित्रिपञ्चचतुष्पञ्च्यो विज्ञेया लीनसंज्ञके ॥ १९२ ॥
 तुर्याद्यापञ्चमीपञ्च्य आलीने स्युस्तथाष्टमी ।
 द्वितुर्यापञ्चमीपञ्च्यो विचित्रे तद्वदष्टमी ॥ १९३ ॥
 आद्याश्वतस्त्रो मूर्खाः स्युः साष्टम्यो लम्बनाहये ।
 आद्यास्तिस्त्रोऽष्टमी तद्वत् सप्तम्यपि भवेत् खरे ॥ १९४ ॥
 शेखरे सप्तमीतुर्याद्वितीयाद्यास्तथाष्टमी ।
 विवुधे त्वष्टमी तुर्या तृतीयाद्याश्व सप्तमी ॥ १९५ ॥
 चैत्रारुये व्यष्टमीतुर्यासप्तम्यः सतुतीयकाः ।
 आद्याद्विपञ्चसप्तम्यो व्यासकारुये तथाष्टमी ॥ १९६ ॥
 आद्यात्रिपञ्चसप्तम्यः साष्टम्यः सम्पदाभिधे ।
 यत्र द्वित्यष्टमीपञ्चसप्तम्यस्तत् पदं विदुः ॥ १९७ ॥
 तुर्याद्यापञ्चमी(पष्ठी)सप्तम्यस्त्रिशिखे तथा ।
 द्विपञ्चम्यष्टमीतुर्यासप्तम्यशतुराभिधे ॥ १९८ ॥
 त्रिसप्तम्यष्टमीतुर्यापञ्चम्यः प्रान्तनामनि ।
 आद्याद्वितीयासप्तम्यः पञ्चम्यष्टम्यौ च सुस्थिते ॥ १९९ ॥

दुःस्थितं यत्र पञ्चाद्या चतुर्थी सप्तमी तथा ।
स्थितेऽष्टमीद्विसप्तम्यस्त्रिपञ्चाद्यावपि च स्मृते ॥ २०० ॥

चक्रे पष्ठयष्टमीतुर्यासप्तम्याद्याः प्रकीर्तिः ।
वैक्रे द्वितीयासप्तम्यो पष्ठयष्टम्यो चतुर्थिका ॥ २०१ ॥

लघेऽष्टमीत्रिसप्तम्यस्तुर्यापष्टयो च कीर्तिः ।
पञ्चमीसप्तमीपष्ठयो लाभे पूर्वाष्टमी तथा ॥ २०२ ॥

द्विपञ्चसप्तम्यष्टम्यः पष्टी संपर्कसंज्ञिते ।
त्रिपञ्चपष्टीसप्तम्यो मूलनाम्नि तथाष्टमी ॥ २०३ ॥

स्युरष्टसप्तपद्पञ्चचतुर्थ्यस्त्वब्ययाभिष्ठे ।
पूर्वाद्या यत्र पण्मूवाः किन्नरं नाम तद् गृहम् ॥ २०४ ॥

यत्राद्याः पञ्च सप्तम्या सह तत् कौस्तुमं विदुः ।
पूर्वाद्वित्रिचतुःपष्टीसप्तम्यो हम्येसंज्ञिते ॥ २०५ ॥

सप्तमी पञ्चमी पष्टी द्वित्रिपूर्वाश धारिके ।
निष्ठे द्विचतुःपञ्चपष्टयाद्याः सप्तमी तथा ॥ २०६ ॥

त्रिचतुःपञ्चपद्पञ्चम्याद्याः स्युर्यत्र तद् वसु ।
साटीके त्रिचतुःपञ्चद्विपष्टयः स्युस्तथाष्टमी ॥ २०७ ॥

यत्राद्यापञ्चसप्तम्यो वामनं नाम तद् विदुः ।
आद्याद्वित्रिचतुःपष्टयः साष्टम्यो गौरनामनि ॥ २०८ ॥

आद्याद्वित्रिष्टमीपष्टयः पञ्चमी चास्थिराभिष्ठे ।
क्रमिणे त्रिचतुःपञ्चपूर्वाः पष्टयष्टमी तथा ॥ २०९ ॥

खले पूर्वाष्टमीपष्टीत्रितुर्याः पञ्चमीयुताः ।
विवरे त्रिचतुःपञ्चद्विपष्टयः स्युस्तथाष्टमी ॥ २१० ॥

आद्याद्वित्रिचतुःसप्तम्यष्टम्यो वालिशाभिष्ठे ।
पूर्वाष्टमीद्वित्रिसप्तपञ्चम्यो शौमनामनि ॥ २११ ॥

त्रिपुष्टे द्विचतुःपञ्चसप्तम्याद्यास्तथाष्टमी ।
मन्दिरे त्रिचतुःपञ्चसप्तम्याद्यास्तथाष्टमी ॥ २१२ ॥

भवे द्वित्रिचतुःपञ्चम्यष्टम्यः सप्तमी तथा ।
 अशोके द्वित्रिपद्सप्तम्यष्टम्यः पूर्वशा सह ॥ २१३ ॥
 भास्त्रे द्वितुःपष्ठ्यः सप्तम्याद्याष्टमीयुता ।
 त्रिसप्तम्यष्टमीपष्ठीतुर्याद्याश्चौष्यसंज्ञिते ॥ २१४ ॥
 द्वित्रितुर्याष्टमीपष्ठ्यो लातव्ये सप्तमी तथा ।
 द्विसप्तम्यष्टमीपष्ठीपञ्चम्याद्याश्च सुस्वने ॥ २१५ ॥
 त्रिपञ्चम्यष्टमीपष्ठीसप्तम्याद्यास्तथा मखे ।
 द्वित्रिसप्ताष्टमीपष्ठीपञ्चम्योऽष्टमी तथा ॥ २१६ ॥
 नेत्रे पूर्वाचतुःपञ्चपद्सप्तम्योऽष्टमी तथा ।
 भ्रमे स्युर्द्विचतुःपञ्चपद्सप्तम्योऽष्टमी तथा ॥ २१७ ॥
 योगे च त्रिचतुःपञ्चपद्सप्तम्योऽष्टमी तथा ।
 एकद्वित्रिचतुःपञ्चपद्सप्तम्यो भवन्ति चेत् ॥ २१८ ॥
 मूपास्तदार्नीं भाण्डीरभिति प्राहुर्निवेशनम् ।
 एकद्वित्रिचतुःपञ्चपञ्जो यत्र तथाष्टमी ॥ २१९ ॥
 तद् वैसनभिति प्राहुर्वास्तुविद्याविदो शृहम् ।
 एकद्वित्रिचतुःपञ्चसप्ताष्टम्यो युहे यदि ॥ २२० ॥
 मूपा भवन्ति तद् विद्यात् प्रस्थमित्यभिभानतः ।
 एकद्वित्रिचतुर्थ्यः स्युः पष्ठी सप्तम्यथाष्टमी ॥ २२१ ॥
 यस्मिन् मूपास्तदत्राहुः प्रतानभिति मन्दिरम् ।
 चतुर्थीवज्जिताभिः स्यान्मूपाभिवेशम् वासुलम् ॥ २२२ ॥
 कटं तृतीयाहीनाभिविज्ञातव्यं निवेशनम् ।
 मूपाभिरद्वितीयाभिर्लक्ष्मीवासमुदाहतम् ॥ २२३ ॥
 सुगन्ध्यान्तपनाद्याभिरस्ताभिः सर्वभद्रकम् ।
 इत्येकभद्रप्रभृतीनि वेशमान्युक्तानि यावदृहमष्टभद्रम् ।
 एतांश्चतुश्शालगृहप्रभेदान् यो वोचि पूजां स लभेत लोके ॥ २२४ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसुव्वारापरनामिन वास्तुशास्त्रे
 चतुश्शालविधानं नाम एकोनविंश्शोऽध्यायः ॥

अथ निश्चोचादिफलानि नाम विंशोऽध्यायः ।

अग्रतः पृष्ठतः शेषदी द्वारेण नियता गृहे ।
 यतो द्वारं तदयं स्यात् पृष्ठं पृष्ठमुदाहृतम् ॥ १ ॥
 द्रव्यायामोदर्यव्यासैः शाला यत्राधिका भवेत् ।
 वामा वा दक्षिणा वापि अग्रतः पृष्ठतोऽपि वा ॥ २ ॥
 हन्ति द्रव्याधिका द्रव्यमायामाभ्यधिका कुलम् ।
 उच्छ्रायाभ्यधिका पृजां सन्तर्नि विस्तराधिका ॥ ३ ॥
 येष्य निश्चा भवेद् भूमिर्वामा दक्षिणकास्थला ।
 वहुदोषं हि तद वास्तु पुत्रपांतविनाशकम् ॥ ४ ॥
 यस्य दक्षिणका निश्चा भूमिर्वामास्थला भवेत् ।
 यन्नेनापि कृतं तत् स्याद् भर्तुरल्पफलोदयम् ॥ ५ ॥
 पश्चिमेन भवेनिश्चा भूमिः स्थूलतराग्रतः ।
 यत्र तत् सर्ववर्णेषु सर्वकामप्रदं गृहम् ॥ ६ ॥
 अग्रतश्च यदा हीनं पृष्ठतोऽच्छ्रेत् भवेत् ।
 भवनं स्वामिनो होशु विरागव्यसनाय तत् ॥ ७ ॥
 सच्छब्दं च सकक्षं च तथैव सपरिक्रमम् ।
 सप्रभं च समाख्यातं गृहमत्र चतुर्विधम् ॥ ८ ॥
 वाशोदकं च सच्छत्रं सकक्षमुभयोदकम् ।
 सावश्यायं तु यद् वेश्म तद विद्यात् सपरिक्रमम् ॥ ९ ॥
 एकेनाप्यत्र मुखतः पृष्ठतः पार्वतोऽपि वा ।
 सप्रभं स्यादलिन्देन लक्षणं तु पृथक्पृथक् ॥ १० ॥
 एकोऽलिन्दस्तु कर्तव्यो मुखतो दक्षिणेन वा ।
 मुखे राजप्रसादाय दक्षिणेऽर्थविवरणः ॥ ११ ॥

१. 'सा', २. 'द्वारे' ख. पाठः । ३. 'हृ' क. पाठः । ४. 'या' ख. पाठः ।
 ५. 'प्रायो नि' ख. पाठः । ६. 'स्तु' क. पाठः । ७. 'स्यादक्षिणिका' ख. पाठः ।
 ८. 'स्थ' क. पाठः । ९. 'त्वा', १०. 'होशु', ११. 'स्याम्य' ख. पाठः ।
 १२. 'एका' क. पाठः ।

वामतस्तु न कर्तव्य एकोऽलिन्दो न पृष्ठतः ।
 वामतोऽर्थविनाशाय पृष्ठतो मियते गृही ॥ १२ ॥
 यस्य स्यातामलिन्दौ द्वौ गृहस्योभयपार्श्वयोः ।
 धनलाभं विजानीयात् तत्प्रवेशे कुदुम्बिनः ॥ १३ ॥
 यस्य स्यातामलिन्दौ द्वावग्रतः पृष्ठतस्तथा ।
 धनधान्यमवाप्नोति सौभाग्यं चापि तदगृही ॥ १४ ॥
 यस्य वा हलकालिन्दो मुखतो दक्षिणेन वा ।
 राजप्रसादैस्तत्स्वामी धनधान्यैश्च वर्धते ॥ १५ ॥
 वामतो हलकालिन्दो मुखतश्च कृतो यदि ।
 राजदण्डभयं विद्यात् पत्री चास्य विनश्यति ॥ १६ ॥
 दक्षिणो हलकालिन्दः पश्चिमश्च कृतो यदि ।
 ततः परापि दृद्धिः स्यात् सौभाग्यं च परं भवेत् ॥ १७ ॥
 पृष्ठतो हलकालिन्दो वामतश्च कृतो यदि ।
 कलत्रपरणं तत्र भवेद् दुर्भगतापि च ॥ १८ ॥
 पृष्ठतो वामतश्चैव पुरतो दक्षिणेन वा ।
 अलिन्दस्य कृतस्याथ वक्ष्यामोऽनुक्रमात् फलम् ॥ १९ ॥
 पृष्ठतो दारनाशाय धनलोभाय दक्षिणे ।
 अग्रे राजप्रसादाय वामतोऽर्थविनाशनः ॥ २० ॥
 समापितं तु यद् वास्तु सर्वतः परिशोधितम् ।
 स्वामिनस्तद् भवेद् धन्यं स्थपतेश्च यशस्करम् ॥ २१ ॥
 अजिंतं वर्धते तस्य दृद्धिश्च स्यान्तपश्चिया ।
 धर्मकामाश्च वर्धन्ते कीर्तिरायुर्यशो वलम् ॥ २२ ॥
 नित्यं प्रक्रीडितजनं नित्यं सन्निहितश्च तत् ।
 नृत्यवादित्रगीतैश्च नित्यामोदं निरामयम् ॥ २३ ॥
 तत्र नैकप्रकाराणि त्रिशालान्युपलक्षयेत् ।
 प्रकारेषु च सर्वेषु निन्द्यौ याम्यापरोजिज्ञतौ ॥ २४ ॥

१. 'नाशाय', २. 'चिं', ३. 'न', ४. 'हितं स' ख. पाठः ।

एकस्मिन् स्वामिनो यृत्युरपरस्मिन् धनक्षयः ।
 पूर्वोच्चरेजिङ्गतौ धन्यौ संज्ञाशैषां ग्रकारतः ॥ २५ ॥

स्युरुदक्षुर्वयाम्याप्यशालाहीनान्यनुक्रमात् ।
 हिरण्यनाभसुक्षेत्रचुल्लीपक्षग्ननामभिः ॥ २६ ॥

विनियोगो यथालिन्दमलिन्दव्यूहिरिच्छया ।
 वेशमान्यथ द्विशालानि कीर्त्यन्ते पद् यथाक्रमम् ॥ २७ ॥

दिकर्णेषु द्विशालानि तत्कर्णान्येषु निर्दिशेत् ।
 संमुखे द्वे समेतानि पडेतान्युपलक्षयेत् ॥ २८ ॥

सिद्धार्थं दक्षिणाप्रत्यगं भवन्त्यत्रार्थसिद्धयः ।
 यमसूर्यमुदक्षप्रत्यक् तत्र मृत्युभयं सदा ॥ २९ ॥

प्रागुदीच्योस्तु दण्डः स्याद् दण्डस्तत्र सदा भवेत् ।
 प्राग्याम्ययोस्तु वाताख्यं वास्तु तत् कलहोत्तरम् ॥ ३० ॥

उदगदक्षिणसाम्मुख्ये द्विशालं काचवास्त्वति ।
 तत्र ज्ञातिविरोधः स्यात् तत् कुर्यात् कदाचन ॥ ३१ ॥

प्राक्प्रतीच्योस्तु साम्मुख्ये चुल्लीवास्तु विनिर्दिशेत् ।
 तत्र वित्तक्षयो घोरः कदाप्येतन्न कारयेत् ॥ ३२ ॥

चतुश्शालं त्रिशालेन प्रान्तं प्राकारवर्तिना ।
 पूर्वेण सप्तशालेषु मणिच्छन्द इति स्मृतम् ॥ ३३ ॥

अन्यानि चैवं त्रीण्याहुः प्रान्तमेव प्रदक्षिणम् ।
 अपरं परिधानं च सप्तश्शमिति तानि च ॥ ३४ ॥

एकमिती तु शाले द्वे यृहसंघट उच्यते ।
 न तं कुर्यात् स हि सदा वन्धदोपवधप्रदः ॥ ३५ ॥

१. 'स्थि', २. 'ती' ल. पाठः । ३. 'व', ४. 'स' क. पाठः ।
 ५. 'क्षयर्वास्तत्रा', ६. 'व' ल. पाठः । ७. 'क्षि' क. पाठः ।

इत्युच्चनीचगृहभागफलं प्रदिष्ट-
मस्मिन्नलिन्दफलमप्यशुभं शुभं च ।
यद् द्वित्रिशालगृहलक्ष्म तदप्यमूष्मिन्
सामान्यतो द्वितयोगभवं च सम्यक् ॥ ३६ ॥

इति महाराजाखिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनानानि वास्तुशास्त्रे
निम्नोच्चफलच्छत्रादिसंज्ञालिन्दफलसदास्तुफलद्विशालत्रिशा-
लगृहसङ्कृतलक्षणफलानि नाम विंशोऽध्यायः ॥

अथ द्वासप्ततित्रिशाललक्षणं नामैकविंशोऽध्यायः ।

अथ द्वासप्ततेर्वामस्त्रिशालानां यथाक्रमम् ।
अभिधानानि कात्स्नर्थेन लक्षणानि पृथक्पृथक् ॥ १ ॥
मुख्यानि तेषु चत्वारि कथ्यन्ते तानि नामतः ।
हिरण्यनाभं सुक्षेत्रं चुल्ली पक्षघ्रमेव च ॥ २ ॥
हिरण्यनाभमुल्कुटं हीनमुत्तरशालया ।
तत् स्याद् धनप्रदं भर्तुः सुक्षेत्रं पूर्वया विना ॥ ३ ॥
सुक्षेत्रं लक्षणोपेतमृद्धिद्विद्धिप्रदं विभोः ।
चुल्ली दक्षिणया हीना शालया वित्तनाशिनी ॥ ४ ॥
पक्षघ्रं पश्चिमाहीनं वैरकृत् कुलनाशनम् ।
अलिन्दयोगादेतेषां लघुप्रस्तारयोगतः ॥ ५ ॥
मूषायोगाच भेदाः स्युरष्टादश पृथक्पृथक् ।
जाम्बूनदं हिरण्याख्यं रुक्माख्यं हेमसंज्ञितम् ॥ ६ ॥
कनकं काञ्चनं स्वर्णं सुवर्णं च ततः परम् ।
सन्तापसंज्ञं सारं च तथा चामीकराद्यम् ॥ ७ ॥
तपनं तापनीयं च शातकुम्भमथापि च ।
हिरण्यनाभं कल्याणं भूषणं भूतिभूषणम् ॥ ८ ॥

१. 'मं'; २. 'भूषिभू' ल. पाठः ।

मेदा हिरण्यनाभस्येत्यष्टादश भवन्त्यमी ।
 नागं सूर्यप्रभास्यं च मन्त्रवारणकं तथा ॥ ९ ॥

चतुर्थं केसरीत्युक्तं वासवं चेन्द्रपेव च ।
 हरिर्दंसं सारसा(ण्डैल्यं) कुञ्जरं तोयदं तथा ॥ १० ॥

मेघमालाभिधानं च धारासारं महोदरम् ।
 कर्दमं नामतश्चान्यत् सुक्षेत्रं प्रकरं तथा ॥ ११ ॥

सुक्षेत्रानुगतान्याहुस्तथान्यद् धान्यपूरकम् ।
 चुल्लीभेदानथं ब्रूमस्तेषामादं भुजन्नम् ॥ १२ ॥

निर्जीवास्यं विहङ्गं च नकुलं पञ्चगाहयम् ।
 शतच्छिंद्रं च सर्पं च कोपसंहं भगन्दरम् ॥ १३ ॥

उद्गेजनाख्यं सन्त्यासं निस्तोषं करुणानन्तम् ।
 वारणं दारणं चुल्ली ककुदं कन्दरं तथा ॥ १४ ॥

इति चुल्लीप्रभेदेषु मन्दिराणि दशाए च ।
 ब्रूमः पक्षव्यसंबद्धगृहनामानि सम्पत्ति ॥ १५ ॥

राक्षसं * ध्वान्तसंहारं देवारि सुरदारुणम् ।
 घोषणं व्याघ्रशार्दूले शोषणास्यं विशोषणम् ॥ १६ ॥

मन्त्रदं च निरानन्दं शाकुनं विघ्ननिर्वृणे ।
 रिषुसंहृदपक्षघे सुतव्यं वैरिपूरणम् ॥ १७ ॥

इत्यष्टादशं पक्षव्यभेदाः प्रोक्ता यथाक्रमम् ।
 हिरण्यनाभभेदेषु धन्यं जाम्बूनदं गृहम् ॥ १८ ॥

आद्याद्याभिश्चतस्रभिर्मूपाभिरुपलक्षितम् ।
 यत्राद्याद्वित्रिपञ्चम्यो हिरण्यं नाम तच्छ्रुभम् ॥ १९ ॥

पञ्चम्याद्याद्वितुर्याभिः स्याद् रुक्मं रुक्मदं गृहम् ।
 आद्याद्वितुर्यापञ्चम्यो यत्र तद्वेषंजितम् ॥ २० ॥

१. 'च', २. 'च्छवं' ३. 'ज्ञा', ४. 'त', ५. 'कु', ६. 'ह', ७.
 'भात् परि' ख. पाठः । ८. 'अ' क. पाठः ।

* लक्षणे तु ध्वान्तसंभातमिति ख. पुस्तके पठन्ते ।

द्वित्रितुर्यापञ्चमीभिः कनकं कनकाचहम् ।
 साद्याभिद्वित्रिषष्ठीभिः काञ्चनं काञ्चनप्रदम् ॥ २१ ॥
 आद्याद्वितुर्यापष्ठीभिः स्वर्णं स्वर्णचिट्ठये ।
 सुवर्णमाद्यात्रिचतुःषष्ठीभिः स्यात् सुवर्णदम् ॥ २२ ॥
 स्याद् द्वित्रितुर्यापष्ठीभिः सन्तापं तापशानितकृत् ।
 आद्याद्विषष्ठीपञ्चमीषष्ठयो यत्र तत् सारमुचमम् ॥ २३ ॥
 चामीकरं त्रिषष्ठाद्यापञ्चमीभिर्गृहोत्तमम् ।
 द्वित्रिपद्यपञ्चमीभिः स्यात् तपनं नाम मन्दिरम् ॥ २४ ॥
 पद्युर्याद्यापञ्चमीभिस्तापनीयमुदाहतम् ।
 शातकुम्भं द्विषष्ठपञ्चतुर्थाभिर्भवेद् गृहम् ॥ २५ ॥
 हिरण्यनामं त्रिचतुःपञ्चषष्ठीभिरीरितम् ।
 कल्याणमाद्यात्रिचतुःपञ्चषष्ठीभिस्त्वयते ॥ २६ ॥
 पद्यपञ्चद्वित्रितुर्याभिर्भवेद् भूषणसंज्ञितम् ।
 आद्याद्वित्रिचतुःपञ्चषष्ठीभिर्भूतभूषणम् ॥ २७ ॥
 अथ सुक्षेत्रभेदानां लक्षणान्यभिद्यमहे ।
 यत्राद्याद्वित्रितुर्याभिस्तनागं नाम मन्दिरम् ॥ २८ ॥
 यत्राद्याद्वित्रिपञ्चम्यस्तत् सुर्यप्रभमुच्यते ।
 आद्याद्वितुर्यापञ्चम्यो यत्र तन्मतवारणम् ॥ २९ ॥
 आद्यात्रितुर्यापञ्चम्यो यत्र तत् केसरीं विदुः ।
 वासवं पञ्चमीतुर्याद्वितीयाभिस्तदुच्यते ॥ ३० ॥
 पष्ठाद्यात्रिद्वितीयाभिरिन्द्रमन्दिरमीरितम् ।
 आद्याद्वितुर्यापष्ठीभिर्हरिसंज्ञमुदाहतम् ॥ ३१ ॥
 आद्यात्रितुर्यापष्ठीभिर्हसंज्ञं निवेशनम् ।
 पष्ठीद्वित्रिचतुर्थाभिः सारसं नामतो भवेत् ॥ ३२ ॥
 आद्याद्विषष्ठपञ्चमीभिः कथयन्तीह कुञ्जरम् ।
 आद्यात्रिपञ्चपष्ठीभिर्विज्ञयं तोयदं गृहम् ॥ ३३ ॥

† लक्ष्ये तु भूतिभूषणमिति पठते ।

मेघमालं त्रिपद्पञ्चद्वितीयाभिरुदाहृतम् ।
 धारासारं चतुःपञ्चपादाद्याभिर्भवेद् गृहम् ॥ ३४ ॥

द्विचतुःपञ्चपष्टीभिर्महोदरमिति स्मृतम् ।
 कर्दमं नाम पद्पञ्चत्रितुर्याभिर्जयावहम् ॥ ३५ ॥

पद्पञ्चत्रितुर्याद्याद्याभिः सुक्षेत्रं स्याद् धनप्रदम् ।
 द्वित्रिपद्पञ्चत्रितुर्याभिर्भवेत् प्रकरमृद्धिदम् ॥ ३६ ॥

आद्याभिथ पडेताभि(?)विजेयं धान्यपूरकम् ।
 अष्टादशैते सुक्षेत्रगृहभेदाः प्रकीर्तिः ॥ ३७ ॥

आद्याद्वित्रिचतुर्थीभिर्मृपाभिः स्याद् भुजङ्गम् ।
 निर्जीविमाद्यापञ्चत्रिद्वितीयाभिनिवेशनम् ॥ ३८ ॥

आद्याद्विपञ्चत्रितुर्याभिर्व(इन्तीभिविद्वितीद वि)हङ्गमम् ।
 पञ्चाद्यात्रिचतुर्थीभिर्मृपाभिर्भवेत् विदुः ॥ ३९ ॥

पञ्चद्वित्रिचतुर्थीभिः पच्चां नामतो भवेत् ।
 शतच्छिद्रं पठाद्यात्रिद्वितीयाभिर्भवेद् गृहम् ॥ ४० ॥

आद्याद्वितुर्यापष्टीभिः सर्वप्रित्यभिधीयते ।
 आद्यात्रिपद्चतुर्थीभिः कोपप्रित्यभिशब्दितम् ॥ ४१ ॥

पद्चतुस्त्रिद्वितीयाभिर्भवेद् वेशम् भगन्दरम् ।
 आद्याद्विपञ्चपष्टीभिरुदेजनमृदाहृतम् ॥ ४२ ॥

सन्न्यासमाद्यापञ्चत्रिपष्टीभिर्भवनाभमम् ।
 द्वित्रिपद्पञ्चमीभिस्तु † निस्तोयमभिधीयते ॥ ४३ ॥

तुर्याद्यापञ्चपष्टीभिः करुणाननयुच्यते ।
 द्विचतुःपञ्चपष्टीभिर्वारणं मुखवारणम् ॥ ४४ ॥

त्रिचतुःपञ्चपष्टीभिर्दारणं श्रीविदारणम् ।
 चैल्लथाद्यात्रिचतुःपञ्चपष्टीभिर्विचनाशनम् ॥ ४५ ॥

१. 'इविह' ख. पाठः । २. 'भवेत्' क. पाठः । ३. 'द्याभिद्विती',
 ४. 'ज्ञा', ५. 'तुर्याद्या' ख. पाठः ।

† लक्षपठानुरोधेन निस्तोषमिति पाठशम् ।

पट्पञ्चद्वित्रितुर्याभिः कहुदं नाम मन्दिरम् ॥
 कन्दरं पट्चतुःपञ्चत्रित्याभिर्गृहाधमम् ॥ ४६ ॥
 अथाष्टादश कथ्यन्ते भेदाः पक्षग्नसंश्रयाः ।
 तेषु राथसमाद्याद्वित्रिचतुर्थीभिरुच्यते ॥ ४७ ॥
 पञ्चाद्याद्वित्रितीयाभिर्वान्तसंघातमीरितम् ।
 पञ्चाद्याद्वित्रिचतुर्थीभिर्देवारीति निगथ्यते ॥ ४८ ॥
 आद्यात्रिपञ्चतुर्याभिर्विज्ञे यं देवदारुणम् ।
 पञ्चत्रिद्विचतुर्थीभिर्विष्णुषं दुःखघोषणम् ॥ ४९ ॥
 पठाद्याद्वित्रितीयाभिर्व्याघ्रमित्यभिर्धीयते ।
 आद्याद्वित्रितीयापष्टीभिः शार्दूलं स्यान्त्रिवेशनम् ॥ ५० ॥
 आद्यात्रितुर्यापष्टीभिः शोषणं पुत्रशोषणम् ।
 पट्तुर्याद्वित्रितीयाभिर्विजानीयाद् विशोषणम् ॥ ५१ ॥
 आद्याद्विपञ्चपष्टीभिर्मत्तदं नाम मन्दिरम् ।
 निरानन्दाख्यमाद्यात्रिपञ्चपष्टीभिरुच्यते ॥ ५२ ॥
 पञ्चपद्वित्रितीयाभिः शाकुनं नामतो भवेत् ।
 विग्रहाद्याचतुःपञ्चपष्टीभिर्विग्रहवर्धनम् ॥ ५३ ॥
 निर्वृणं पट्चतुःपञ्चद्वितीयाभिरसांख्यकृत् ।
 त्रिचतुःपञ्चपष्टीभिर्वदन्ति रिपुसंहदम् ॥ ५४ ॥
 पट्पञ्चतुर्यात्या(था)भिः पक्षग्नं सुतनाशनम् ।
 पट्पञ्चद्वित्रितुर्याभिः सुतग्नं सुतमूदनम् ॥ ५५ ॥
 पट्पञ्चद्वित्रितुर्याद्या यत्र तद् वैरिपूरणम् ।
 पक्षग्नस्यानुगान्येवं गृहाण्यष्टादश कमात् ॥ ५६ ॥
 चतुराद्याद्विशालेषु मूषा वाहा न चान्तरा ।
 स्याद् विनाद्यां द्वितीयां च त्रिशालं पञ्चभद्रकम् ॥ ५७ ॥
 वाह्यतः कममुत्सृज्य त्रिशालविधिरीरितः ।

१. 'षो' क. पाठः । २. 'के', ३. 'विशाले वि' ख. पाठः ।

हिरण्यनाभादिनिकेतनानां चतुष्टयस्यैवममी प्रकाराः ।

द्विसप्तिः कृत्स्ततयोषदिष्टाः प्रत्येकमण्डशभेदक्लृप्ताः ॥ ५८ ॥

इति महाराजाचिराजश्रीमोजदेवतानितिते समराङ्गणगृहवारापरनाभिः वास्तुशास्त्रे
द्वासप्तित्रिशाललक्षणं नामकविंशोऽध्यायः ॥

अथ द्विशालगृहलक्षणं नाम द्वार्विंशोऽध्यायः ।

द्विशालानि द्विपञ्चाशत् स्युः शुभान्यशुभानि च ।

लक्षणानि क्रमात् तेषामिदानीं सम्प्रचक्षमहे ॥ १ ॥

सिद्धार्थं यमसूर्यं च दण्डसूर्यं वातसंज्ञितम् ।

चुल्ही काचं च मुख्यानि द्विशालानि पठेव हि ॥ २ ॥

अनेकभेदभिन्नानि लघुप्रस्तारयोगतः ।

मूषाभेदक्लृप्तेण स्युर्भेदाभेदक्लृप्तेण तु ॥ ३ ॥

तथा निलीनकरणाद् वीथिकालिन्दमार्गतः ।

प्राग्रीवादिविधानेन द्विशालयादिविपर्ययात् ॥ ४ ॥

यथासम्भवमेतानि कथयामः समासतः ।

निर्वाहतश्च मूषाणामनिर्वाहाच नामतः ॥ ५ ॥

छन्दतो गुणतो रूपादशुभानि शुभानि च ।

हितार्थाय नरेन्द्राणां वर्णिनां लिङ्गिनामपि ॥ ६ ॥

हस्तिनी महिषी चेति द्वे शाले यत्र वेशमनि ।

तत् सिद्धार्थमिति ज्ञेयं वित्तसम्पत्तिकारकम् ॥ ७ ॥

मृत्युदं महिषीगावीभ्यां भवेद् यमसूर्यकम् ।

दण्डं स्याच्छगलीगावीशालाभ्यां दण्डभीतिदम् ॥ ८ ॥

वातं करेणुच्छगलीयुक्तमुद्गेगकारकम् ।

महिष्यजाभ्यामुद्गेगकरी चुल्ही धनापदा ॥ ९ ॥

काचं करेणुगावीम्यां सुहृत्पीतिविनाशनम् ।
 एकमूषपमूषं च न द्विशालेषु कारयेत् ॥ १० ॥
 व्यत्यासात् काचचुल्लयोश्च सर्वाभिस्तस्मिन्था ।
 चत्वार्याद्यानि भिद्यन्ते लघुप्रस्तारयोगतः ॥ ११ ॥
 प्रत्येकमेकादशाया मन्दिराण्यभिधानतः ।
 अन्ये चतुर्धा भिद्यन्ते प्रत्येकं द्वे निवेशने ॥ १२ ॥
 एषां मूषा भिद्यभेदात् तद्वायावाहेतुकां ।
 बसुधारं भवेत् तेषामाद्यं सिद्धार्थकं ततः ॥ १३ ॥
 कल्याणकं शाख्वतं च शिवं कामप्रदं तथा ।
 खीदं शान्तं निष्कलङ्कं धनाधीशं कुबेरकम् ॥ १४ ॥
 सिद्धार्थमनुजान्येवमेतान्येकादश क्रमात् ।
 संहारं यमसूर्यं च कालं वैवस्वतं यमम् ॥ १५ ॥
 करालं विकरालं च कवन्धं मृतकं शैवम् ।
 यमसूर्यस्य भेदाः स्युः सज्जनो महिषं तथा ॥ १६ ॥
 प्रचण्डचण्डे दण्डार्थ्यमुद्दण्डं काण्डकोटरे ।
 विग्रहं निग्रहं धूम्रं निर्धूमं दन्तिदार्थणम् ॥ १७ ॥
 एकादशामी दण्डस्य भेदा दण्डभयप्रदाः ।
 मरुत्पवनवातार्थ्यान्यनिलं सप्रभञ्जनम् ॥ १८ ॥
 घनोर्यम्बुदविधवंसि * प्रलयं कलहं कलिः ।
 कलिचुल्ली च वातस्य भेदा उद्देगदायकाः ॥ १९ ॥
 रोगं चुल्लयनलं भस्य चुल्लया भेदचतुष्टयम् ।
 काचस्य तु च्छलं काचं कुलग्रं † च विरोधि च ॥ २० ॥
 द्वाष्टाशद् द्विशालानाम्मी भेदाः प्रकीर्तिताः ।
 वृूपः साम्प्रतमेतेषां लक्षणानि पृथक्पृथक् ॥ २१ ॥

१. 'दत्', २. 'कः', ३. 'शिवम्', ४. 'मं', ५. 'नार्या' क. पाठः ।
 ६. 'लं' ख. पाठः ।

* लक्षणस्त्रोके पतस्थाने रोगमिति पठते । † लक्षणपाठरीत्या द्वा कुलहमिति पाठस्मृ ।

आद्याद्वितीये वहतो यत्र मूषे धनप्रदे ।
वसुधाराभिधानं तद् गृहं सर्वार्थकानुगम् ॥ २२ ॥

आद्यातृतीये वहतो यत्र सिद्धार्थकं हि तत् ।
सर्वोपद्रवनिर्मुक्तं सिद्धिकृच्चिन्तितार्थकुर् ॥ २३ ॥

द्वितृतीयं वहन्मूषं भवेत् कल्याणमृद्धिकृत् ।
वहदावचतुर्थीकं शाश्वतं गृहमुत्तमम् ॥ २४ ॥

शिवं द्वितीयातुर्याभ्यां वहन्तीभ्यां सुखप्रदम् ।
कामदं त्रिचतुर्थीभ्यां भवेच्चिन्तितकामदम् ॥ २५ ॥

आद्याद्यांभिः (सु?स्तु) तिसृभिः स्त्रीप्रदं संप्रदं(?) प्रभोः ।
आद्याद्वितीयातुर्याभ्यिः शान्तं शान्तिप्रदायकम् ॥ २६ ॥

आद्यातृतीयातुर्याभिनिष्कलङ्कं समृद्धिकृत् ।
द्वितीयाचतुर्थीभिर्थनेशं धनवर्द्धनम् ॥ २७ ॥

आद्याद्याभिश्चतसृभिः कुवेरं विचट्टद्विकृत् ।
यममूष्यप्रभेदेषु ब्रूमो लक्ष्म फलानि च ॥ २८ ॥

आद्याद्वितीयामूषाभ्यां संहारं स्वामिनाशनम् ।
गृहमाद्यातृतीयाभ्यां मृत्युदं यममूष्यकम् ॥ २९ ॥

द्वितृतीयं वहन्मूषं कालं योपिद्विनाशनम् ।
वैवस्वतं वहतुर्यप्रथमं रोगकारकम् ॥ ३० ॥

यमालयं द्वितुर्याभ्यां स्वामिनो यमदर्शनम् ।
करालं त्रिचतुर्थीभ्यां भर्तुः प्राणविनाशनम् ॥ ३१ ॥

आद्याभिस्तसृभिः स्वामिनाशनं विकरालकम् ।
आद्याद्वितीयातुर्याभ्यिः कवन्धं भर्तृनाशनम् ॥ ३२ ॥

आद्यातृतीयातुर्याभिर्भर्तृम् मृतकालयम् ।
शिवं द्वित्रिचतुर्थीभिः स्वामिनो मरणप्रदम् ॥ ३३ ॥

आद्याद्याभिश्चतसृभिः स्वामिन्द्रं महिषं विदुः ।
प्रचण्डं दण्डभेदेषु पूर्वया सद्वितीयया ॥ ३४ ॥

१. 'सिद्धार्थ' क. पाठः । २. 'दम्', ३. 'भितिस्', ४. 'क' ख.
पाठः । ५. 'द्वि' क. पाठः । ६. 'शसं', ७. 'त्रुर्याभिः' ख. पाठः ।

गृहमादौ विजानीयाद् भर्तुर्नृपभयप्रदम् ।
 चण्डमाच्यातृतीयाभ्यां चण्डण्डभयप्रदम् ॥ ३५ ॥
 दण्डं स्पाद् द्वितीयाभ्यां राजदण्डाय दारुणम् ।
 उद्दण्डमाच्यातृतीयाभ्यां स्वामिनो दण्डभीतिदम् ॥ ३६ ॥
 काण्डं द्वितीयातुर्याभ्यां काण्डवज्ज्वेदकारकम् ।
 कोटरं त्रिचतुर्थीभ्यां स्वामिनो विग्रहावहम् ॥ ३७ ॥
 प्रथमा(द्वि)तीयाभिविग्रहं वधवैन्धकृत् ।
 आद्याद्वितीयातुर्याभिनिंग्रहं विग्रहावहम् ॥ ३८ ॥
 आद्यातृतीयातुर्याभिर्धूमं सर्वधनापहम् ।
 द्वितीयाचतुर्थीभिनिंग्रहं धननाशनम् ॥ ३९ ॥
 आद्याद्याभिश्वतसूभिर्दनितदारुणमर्थहृत् ।
 आद्याद्वितीयामूषाभ्यां वातभेदेषु मन्दिरम् ॥ ४० ॥
 मरुत्संज्ञं भवेत् तत्र वसता कलहः सदा ।
 उद्देगकारि पवनं तृतीयाद्योपलक्षितम् ॥ ४१ ॥
 वाताख्यं द्वितीयाभ्यां सदा सन्तापकारकम् ।
 सन्तापोद्वासकार्याद्यातुर्याभ्यामनिलं भवेत् ॥ ४२ ॥
 प्रभञ्जनं द्वितीयाभ्यां शोकसन्तापकारकम् ।
 तृतीयया चतुर्थ्या च धैनार्युद्देगकारकम् ॥ ४३ ॥
 आद्यया द्वितीयाभ्यां रोगं कार्यार्थनाशनम् ।
 आद्याद्वितीयातुर्याभिः प्रलयं चित्ततापकृत् ॥ ४४ ॥
 आद्याद्वितीयातुर्याभिः कलहं कलहावहम् ।
 द्वितीयाचतुर्थीभिः कलिः सन्तापकारकम् ॥ ४५ ॥
 आद्याद्याभिश्वतसूभिः कलिचुल्ली धनापहा ।
 रोगमाद्याद्वितीयाभ्यां चुल्लीभेदेषु शोकदम् ॥ ४६ ॥

१. 'वाघ' ख. पाठः । २. 'व(न)मु' क. पाठः । ३. 'मूषाभिः' ख. पाठः ।
 ४. 'लिस' क. पाठः ।

स्याद् द्वितीयातृतीयाभ्यां चुल्ली वित्तविनाशनी ।
 वसुद्वयनेलं नाम त्रितुर्याभ्यां निवेशनम् ॥ ४७ ॥

वित्तप्रमाद्यातुर्याभ्यां भस्मारूपं स्वामिनः सदा ।
 उद्दमुखाभ्यां मूपाभ्यां काचमेदेषु मन्दिरम् ॥ ४८ ॥

चलं नाम भवेन्नित्यं बन्धुवर्गापमानकृत् ।
 दक्षिणोत्तरमूपाणां पौरस्त्ये वहतो यदि ॥ ४९ ॥

† काञ्चं नाम तदा वेशम् सज्जनानन्दकारकम् ।
 मूपाभ्यां दक्षिणाभ्यां स्यात् कुलैः त्रिकुलक्षयम् ॥ ५० ॥

दक्षिणोत्तरमूपाणां पाशात्ये वहतो यदि ।
 † विरोधं नाम तदेशम् सर्वलोकविरोधकृत् ॥ ५१ ॥

उक्तान्येवं द्विपञ्चाशद् द्विशालानां समासतः ।
 एनानि मूपावहनप्रभेदात् फलप्रभेदाच्च निदर्शितानि ।

द्विशालवेशमान्यधुनैकशालान्युदाहियन्ते भवनानि सम्यक् ॥ ५२ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गात्मवाचापरनामिन वास्तुशास्त्रे

द्विशालगृहलक्षणं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥

अथ एकशाललक्षणफलादि नाम त्रयोर्विंशोऽध्यायः ।

गृहाणामेकशालानां वक्ष्यामो लक्षणान्यथ ।
 शस्तानां निन्दितानां च यथावदनुपूर्वशः ॥ १ ॥

विन्यसेचतुरः पूर्वं गुरुन् वर्णान् यथाविधि ।
 एव एव प्रसूयन्ते भेदाः पोदश वेशमनाम् ॥ २ ॥

१. 'नि', २. 'खी' क. पाठः । ३. 'ल हन्ति कु' ख. पाठः ।
 ४. 'रव' क. पाठः ।

† लक्ष्यपाठानुरोधात् काचमिति पाञ्चम् । † लक्ष्ये विरोधीति पञ्चते ।

गुरोरधो लघुं न्यस्येत् पूर्वं ज्ञेषं यथोपरि ।
 गुरुभिः पूरयेत् पथाद् यावत् स्युर्लघवोऽखिलाः ॥ ३ ॥

विद्यादलिन्दान् सर्वेषु लघुस्थानेषु पण्डितः ।
 सच्चावर्तं गृहमुखादेतांश्च विनियोजयेत् ॥ ४ ॥

एषामलिन्दसंयोगाद् भवनानां पृथक् पृथक् ।
 नामानि गुणदोषाश्च वक्ष्यन्तेऽनुक्रमादतः ॥ ५ ॥

ध्रुवं धन्यं जयं नन्दं खरं कान्तं मनोरमम् ।
 सुमुखं दुर्मुखं कूरं सुपक्षं धनदं क्षयम् ॥ ६ ॥

आक्रन्दं विषुलं चैव विजयं गृहमुत्तमम् ।
 घुवे जयमवाप्नोति धन्ये धान्यागमो भवेत् ॥ ७ ॥

जये सपत्नाऽन् जयति नन्दे सर्वाः समृद्धयः ।
 खरमायासदं वेशम् कान्ते च लभते श्रियम् ॥ ८ ॥

आयुरारोग्यमैश्वर्यं तथा विच्छ्य सम्पदः ।
 मनोरमे मनस्तुष्टिर्गृहभर्तुः प्रकीर्तिता ॥ ९ ॥

सुमुखे राज्यसन्मानं दुर्मुखे कलहः सदा ।
 कूरव्याधिभयं कूरे सुपक्षं गोत्रवृद्धिकृत् ॥ १० ॥

धनदे हेमरत्नादि गार्थैव लभते पुमान् ।
 क्षयं सर्वक्षयं गेहमाक्रन्दं ज्ञातिमृत्युदम् ॥ ११ ॥

आरोग्यं विषुले रुयातिविजये सर्वसम्पदः ।
 यदि धन्ये द्वितीयोऽपि मुखालिन्दः प्रयुज्यते ॥ १२ ॥

तद् गृहं रम्यनामेह भर्तुः सौभाग्यकारकम् ।
 मुखालिन्देन नन्दारुद्यं द्वितीयेन सुयोजितम् ॥ १३ ॥

तच्छ्रीधरमिति रुयातं तस्मिन् श्रीनित्यमाविशेत् ।
 अलिन्दश्वेद् द्वितीयोऽपि कान्तस्यास्ये निवेश्यते ॥ १४ ॥

मुदितं तद् भवेद् भर्तुभूतिकृद् भवनोत्तमम् ।
 सुमुखस्य यदालिन्दो वक्त्रेऽन्यो विनिवेश्यते ॥ १५ ॥

१. 'व', २. 'ध्रुवम्' स. पाठः ।

वर्धमानं तदा तत् स्यात् स्वामिलक्ष्मीविवर्धनम् ।
 कूरं युक्तं द्वितीयेन मुखालिङ्गेन मन्दिरम् ॥ १६ ॥
 करालं तद् विजानीयाद् भर्ता तस्य विनश्यति ।
 अलिङ्गेन द्वितीयेन धनदं योजितं पुनः ॥ १७ ॥
 सुनाभं तद् भवेत् तस्मिन् पंशुन् पुत्रानवाप्नुयात् ।
 आक्रन्दस्य पुरोभागे यद्यलिङ्गः कृतोऽपरः ॥ १८ ॥
 ध्वाक्षसंबं गृहं तज्ज्ञा निन्दितं प्रवदन्ति तत् ।
 द्वितीयालिङ्गदघटना विजयस्य मुखे यदि ॥ १९ ॥
 तत् समृद्धमिति रुयातं गृहं स्यात् पुण्यकर्मणाम् ।
 यान्युक्तानि ध्रुवादीनि पूर्ववेऽमानि पोडश ॥ २० ॥
 शालाविभागं ज्ञात्वैपां तिर्यक् पद् दारु विन्यसेत् ।
 पोडशान्ये च भेदाः स्युः संज्ञाशैषपामनुक्रमात् ॥ २१ ॥
 सुन्दरं वरदं भद्रं प्रमोदं विमुखं शिवम् ।
 सर्वलाभं विशालं च विलक्षमशुभं व्यजम् ॥ २२ ॥
 उद्योतं भीषणं शन्यमजितं कुलनन्दनम् ।
 नामभिर्वेश्मनामेषां गुणदोपान् प्रकल्पयेत् ॥ २३ ॥
 यथार्थनामान्येतानि यस्मात् प्रोक्तान्यविस्तरात् ।
 एभ्य एवापराणि स्युर्वेश्मान्यन्यानि पोडश ॥ २४ ॥
 शालापुरोविनियुक्तातिर्यक्पददारुकारणात् ।
 हंसं सुलक्षणं सौम्यं जयन्तं भव्यमुक्तम् ॥ २५ ॥
 रुचिरं सम्भृतं क्षेपमाक्षेमं सुकृतं वृषम् ।
 उच्छव्यं व्ययमानन्दं सुनन्दं चेति कीर्तिंतम् ॥ २६ ॥
 एपामपि यथार्थत्वाद् गुणदोपान् निरूपयेत् ।
 शालामध्ये च तिर्यकस्थं पददारु विनिवेशयेत् ॥ २७ ॥
 विहाय मर्मणां वेशानमीषामेवं वेशमनाम् ।
 पोडशैव परेऽपि स्युर्भेदास्तांश्च यथाक्रमम् ॥ २८ ॥

१. 'द्वेषम प', २. 'वहून्' ख. पाठः । ३. 'द्वि' क. ख. पाठः । ४. 'गभद्रं निवेशयेत् ।', ५. 'पुनःप', ६. 'गा', ७. 'ति', ८. 'व सज्जनाम्' ख. पाठः ।

कथयामः समासेन यथाथैरेव नामभिः ।
 अलङ्कृतमलङ्कारं रमणं पूर्णमम्बरम् ॥ २९ ॥
 पुण्यं सुगर्भं कलशं दुर्गतं रिक्तमीषितम् ।
 सुभद्रं वन्दितं दीनं विभवं सर्वकामदम् ॥ ३० ॥
 शालान्तःस्थितपद्मारुपश्चादपवरैः कृतैः ।
 एभ्योऽपरेऽपि निर्दिष्टा भेदाः पोडश वेश्मनाम् ॥ ३१ ॥
 प्रभवं भाविकं क्रीडं तिलकं क्रीडनं सुखम् ।
 यशोदं कुमुदं कालं भासुरं सर्वभूषणम् ॥ ३२ ॥
 वसुधारं धनहरं कुपितं विचट्टदिदम् ।
 कुलोदयं च विजेयं गुणदोपास्तु पूर्ववत् ॥ ३३ ॥
 अनन्तरमिहोक्तानि यानि वेश्मानि पोडश ।
 प्रत्येकं तान्यलिन्देन परि(कुञ्जु)र्याच्चतुर्दिशम् ॥ ३४ ॥
 तद्देदेभ्यः प्रसूतानि कथयामो विधानतः ।
 कूडामणि प्रभद्रं च क्षेमं शेखरसमद्भुतम् ॥ ३५ ॥
 विकाशं भूतिदं हृष्टं विरोधं कालपाशकम् ।
 निरामयं सुशालं च रौद्रं मौर्यं मनोरथम् ॥ ३६ ॥
 सुभद्रं चेति सदनं संज्ञाभिरुपलक्षयेत् ।
 वेश्मनामेकशालानां शतं स्याच्चतुरुचरम् ॥ ३७ ॥
 कथितं तच संस्थानैर्नामभित्र यथाक्रमम् ।
 हस्तिनी महसी गावी छागली च यथाक्रमम् ॥ ३८ ॥
 तद्द्वयेन द्विपूर्वाणि ब्रूमो नामानि वेश्मनाम् ।
 द्विहसंकं द्विचक्रादं द्विसारसमथापरम् ॥ ३९ ॥
 द्विकोकिलं बुधैः ख्यातं हस्तिन्यादेः क्रमाद् गृहम् ।
 त्रीण्यायुः पशुधान्यानां क्रमादाचानि दृढये ॥ ४० ॥
 एतेषामेव नाशाय भवेद् वेश्म द्विकोकिलम् ।

१. 'ब्रू', २. 'मो', ३. 'छ' ख.पाठः ।

इत्येकशालभवनान्युदितान्यलिन्द-
षड्दारुकापवरकावरणादिभेदैः ।
संज्ञा च लक्षणफलैः करिणीमुखाभिः
शालाभिरेवमपराणि च युग्मेजानि ॥ ४१ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजेऽवावेरचिते समराङ्गसूत्रधारापरनाभिन वास्तुशास्त्रे
एकशाललक्षणफलद्विहंसकादिलक्षणफलानि नाम त्रयोर्विंशोऽध्यायः ।

अथ द्वारपीठभित्तिमानादिकं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ।

कर्णशालानिवद्वानि पण्डिपैरन्तरस्थितैः ।
असम्बाधाजिराणि स्युर्हलानि दश पञ्च च ॥ १ ॥
ईश्वरं वृषभं चन्द्रं रोगं पापं भयप्रदम् ।
नन्दनं खादकं ध्वाङ्कं विकृतं विलयं क्षयम् ॥ २ ॥
याम्यं च विपरीतं च भद्रकं चेति नामतः ।
एतानि हलकार्यानि विद्याद् गेहानि यन्त्रतः ॥ ३ ॥
अग्निरक्षोनिलेश्वानकोणंगानां यथाक्रमम् ।
एकद्वित्रिचतुर्थार्थ्या हलकानां प्रकल्पयेत् ॥ ४ ॥
अनेन क्रमयोगेन च्छन्दोभेदा भवन्ति च ।
तत्राद्येनेश्वरं नाम हलकेन युहं भवेत् ॥ ५ ॥
सर्वलक्षणसंयुक्तं सर्ववृद्धिफलप्रदम् ।
वृषभं तु द्वितीयेन पुत्रदारैविवर्धनम् ॥ ६ ॥
प्रथमं च द्वितीयं च युहे तु हलकं यदि ।
चन्द्रं वृद्धिकरं नृणां सर्वलक्षणसंयुतम् ॥ ७ ॥
वायवयं हलकं यत्र रोगं रोगविवर्धनम् ।
प्रथमं च तृतीयं च युहे तु हलकं यदि ॥ ८ ॥

१. 'मलाभिः' क, 'मितानि', ख, पाठः । २. 'ये भागं य',
३. 'रादिव', ४. 'भयप्रदम्' ख, पाठः ।

पोपं तन्नामतो वास्तु सर्वपापप्रयोजकम् ।
 पितृरोगोक्तकोणाभ्यां भयदं रोगमृत्यवे ॥ ९ ॥
 पितृरोगाग्निकोणेषु नन्दनं गृहमादिशेत् ।
 सुखमर्थप्रदं शान्तं हलकं परिकीर्तिम् ॥ १० ॥
 ईशान्यां तु चतुर्थेन खादकं खादकं गृहम् ।
 लाङ्गलाद्या यदा शाला ईशान्यां च यदापरा ॥ ११ ॥
 ध्वाहक्षं तन्नामतो वास्तु दरिद्राणां विधीयते ।
 द्वितीया च चतुर्थी च शाला लाङ्गलके यदि ॥ १२ ॥
 विकृतं विकृतावासं प्रवासोऽत्र कुदुम्बिनः ।
 आद्या शाला द्वितीया च चतुर्थी च यदा पुनः ॥ १३ ॥
 विलयं हानिदं नित्यं गृहं तद् वित्तनाशनम् ।
 वायव्यं हलकं यस्मिन्नैशान्यां च यदा पुनः ॥ १४ ॥
 क्षयं क्षयकरं नित्यं हलकेषु गृहं भवेत् ।
 अग्निवायुमहेशानां शाला लाङ्गलके यदि ॥ १५ ॥
 याम्यं मृत्युकरं नृणां न तत् कुर्यात् कदाचन ।
 मारुते नैऋतैशान्याः शालाकर्णेषु लाङ्गलम् ॥ १६ ॥
 विपरीतं व्याधिकरं नृणां नाशकरं तथा ।
 चतस्रो हलके यत्र प्रादक्षिण्यगुरुवाः स्थिताः ॥ १७ ॥
 भद्रकं नाम तद् वास्तु सर्वभद्रप्रयोजकम् ।
 द्वारोच्छायं सविस्तारं तलोच्छायं च वेश्मर्नाम् ॥ १८ ॥
 पीठस्य च समुत्सेषं भिन्नविस्तारमेव च ।
 तथा दारुक(लाँला)चैव या प्रोक्ता गृहकर्मणि ॥ १९ ॥
 एकशालाविधानं च तेषां नामानि यानि च ।
 तत् सम्ब्रति प्रवक्ष्यामो यथावदनुरूपेशः ॥ २० ॥
 पोडशानां समुद्रेष्यो विश्वतेरपि चापरः ।
 विश्वतेः सचतुष्कायास्तथाष्टाविश्वतेरपि ॥ २१ ॥

१. 'पापकं नाम', २. 'तु', ३. 'ची' ४. 'तेषां', ५. 'खास्तथा'
 ६. 'नः' क. पाठः । ७. 'दा', ८. 'तेरपि चतुष्कायां तथा' ख. पाठः ।

द्वात्रिंशतोऽपरश्चेति । पञ्च वर्गाधिपा मताः ।
 शालाचतुर्थमागेन भित्तिविस्तार इष्यते ॥ २२ ॥

वर्गेषु भित्तिलक्ष्मोक्तं पोदशादिषु पञ्चसु ।
 मर्मणीढा भवेद् यत्र भित्तिस्तम्भतुल्यादिभिः ॥ २३ ॥

कुर्वीत हौसं बृद्धिं वा तत्र मर्मव्यथां त्यजेत् ।
 अतिसंबृतैविस्तारं कार्यमुद्दिश्य बुद्धिमान् ॥ २४ ॥

शालाप्रविष्टं कुर्वीत । हीनवास्तुच्छलिन्दकम् ।
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे भूमिभागे समीकृते ॥ २५ ॥

उपरिष्टाद् भवेत् पीठं * तलादर्धसमुच्छ्रृतम् ।
 नियुक्ते तु ततः पीठे वास्तुविस्तारतोऽङ्गुलम् ॥ २६ ॥

प्रतिहस्तं समुद्रत्य सप्तत्या सह योजयेत् ।
 द्वारोच्छायाः समाख्याता वर्गेषुक्तेषु पञ्चसु ॥ २७ ॥

उच्छायार्थेन वैपुल्यमटाशेन विवर्जितम् ।
 द्वारविस्तारपादांशे पट्टविस्तार इष्यते ॥ २८ ॥

विस्तारार्थेन वाहुलयं सर्वं वेद्या(तस्त)लोपरि ।
 उत्तरोत्तरवैपुल्यं कुर्याच्छाखावशाद् बुधः ॥ २९ ॥

वेद्या विस्तारवाहुलये विधेये शाखयोरपि ।
 द्वारविस्तारपादेन मूले स्तम्भस्य विस्तृतिः ॥ ३० ॥

दशभागविहीनात्रे पट्टः स्तम्भेन सम्मितः ।
 स्तम्भाग्रस्य त्रिभागेन पट्टकोटिर्विधीयते ॥ ३१ ॥

हीरग्रहणमायामे स्तम्भाग्रात् तु चतुर्गुणम् ।
 पट्टान्यान्युद्धवेत् (?) तत्र व्यासवाहलयोस्तथा ॥ ३२ ॥

१. 'हौस', २. 'जेत्', ३. 'त' क. पाठः । ४. 'धैरेद्यातलोभ्वर' (?)
 ५. 'गोना' ख. पाठः । ६. 'दा' क. पाठः । ७. 'ज्ञान्वान्द' ख. पाठः ।

† 'ते पञ्चसमुदायाः विप्रादीनां अयुक्तमेण यथा (वर्थं) योज्याः । व्यासस्येदं चेष्ट-
 मानम्' इति, ‡ 'पञ्च + + + हीनवास्तुप्रमाणं तद्रुहं शालाखयं तदन्तर्गतं घट्टदार-
 कं कुर्वीत्' इति, * 'तलशब्देन प्रथमभूम्युच्छायः' इति च डिप्पणानि सन्ति ।

पद्मकोञ्चर्थमुत्सेधादुत्सेधार्थेन निर्गतम् ।
 तन्त्रकस्य प्रमाणं स्यादिति शास्त्रविदो विदुः ॥ ३३ ॥
 द्रव्याण्युपर्युपर्यस्य परापरविभागतः ।
 पद्मकोञ्चाश्चतुर्थेन प्रविभागेन हासयेत् ॥ ३४ ॥
 पूर्वामुखं गृहं यत्तु द्वारं माहेन्द्रसंयुतम् ।
 हस्तिनी च भवेच्छाला तद् गृहं भद्रसंज्ञितम् ॥ ३५ ॥
 भद्रं भद्रकरं भर्तुर्यशोवलविवर्धनम् ।
 सिध्यन्ति चास्य कार्याणि भद्राख्ये वसतो गृहे ॥ ३६ ॥
 दक्षिणाभिमुखं वेदम् द्वारं चास्य गृहक्षतम् ।
 महिषी चै भवेच्छाला तद् गृहं नन्दपीठकम् ॥ ३७ ॥
 नन्दपीठगृहं पुंसां नित्यानन्दकरं स्मृतम् ।
 सर्वसम्पद्गुणोपेतं धनधान्यविवर्धनम् ॥ ३८ ॥
 वारुण्यभिमुखं सद्म द्वारं च कुसुमाहयम् ।
 गावी चैव भवेच्छाला सौरभं तद्विदुर्वृथाः ॥ ३९ ॥
 सौरभे नित्यहृष्टत्वं वसतां गृहमेधिनाम् ।
 सफलं कृपिवाणिज्यं पुत्राश्च वशवतिनः ॥ ४० ॥
 उत्तराभिमुखं धिष्यं द्वारं भल्लाटसंयुतम् ।
 छागली च भवेच्छाला पुष्कराख्यं तदुच्यते ॥ ४१ ॥
 शीलवान् नित्यसैन्तुष्टः सुहत्सुजनवत्सलः ।
 सुभगः पुष्कराख्ये च वहुपुत्रधनान्वितः ॥ ४२ ॥
 भद्रं च नन्दपीठं च सौरभं पुष्करं तथा ।
 प्रथमार्थे तु वर्गस्य प्रथमस्य प्रयोजयेत् ॥ ४३ ॥
 सर्वभद्रादिकाः सर्वे निवेशा ये प्रकीर्तिः ।
 उत्पन्नास्ते विमानेभ्यः पञ्चभ्यः पञ्चपञ्चके ॥ ४४ ॥

१. 'मुखम्', २. 'चेत्तुते शा', ३. 'संहृष्टसुहृष्टवज्', ४. 'तु' ख. पाठः ।

समस्तगृहाणां सङ्ख्याकथनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः । १२९

द्वारस्य पीठस्य च मन्दिरेषु भित्तेश्च मानं कथितं क्रमेण ।
तथोदिता दारुकलास्तु सम्यक् प्रहीणवास्तोः सकलं च लक्ष्म ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवनिरचिते समराङ्गसूत्रभारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
द्वारपीठभित्तिमानदारुकलाहीनवास्तुलक्षणं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥

अथ समस्तगृहाणां सङ्ख्याकथनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ।

वेश्मनां पञ्चशालानां कथ्यन्ते लक्षणान्यथ ।
चतुर्विंशतिसंयुक्तं सहस्रं तानि सङ्ख्ययां ॥ १ ॥

गुरुणां दशसङ्ख्यानां प्रस्तारस्य च कल्पनात् ।
गृहाणां पञ्चशालानां भेदा लघुविभागतः ॥ २ ॥

पञ्चशालं भवेद् योगाद् गृहयोद्दित्रिशालयोः ।
यद्वा योगाद् भवेदेतच्चतुःशालैकशालयोः ॥ ३ ॥

चतुर्णामपि वर्णानामिदं सब्रं प्रशस्यते ।
हिरण्यनाभयभृति वैर्णानामिह वेश्मनाम् ॥ ४ ॥

सिद्धार्थादिसमायोगान्निष्पद्येत् गृहाएकम् ।
योगाद्दिरण्यनाभस्य सिद्धार्थेन गृहं भवेत् ॥ ५ ॥

हेमकूटाख्यमस्यैव वातेन स्वर्णशेखरम् ।
सुक्षेत्रस्य च सिद्धार्थसंयोगेन श्रियावहम् ॥ ६ ॥

तस्यैव यममूर्येण भवेद् वेश्म महानिधिः ।
चुल्लयास्तु यममूर्येण सदादीपं प्रजायते ॥ ७ ॥

दण्डसंयोगतस्तस्य चित्रभान्वभिर्भवेत् ।
पक्षम्ब्रस्य तु दण्डेन सदौदोषं विनिर्दिशेत् ॥ ८ ॥

पक्षम्ब्रस्यैव वातेन योगान्विविम्बुच्यते ।
न काचचुल्लीसंयोगखिशालादिषु शस्यते ॥ ९ ॥

१. 'या ॥ पञ्चशालं', २. 'भेदतः ॥', ३. 'चतुर्णामि', ४. 'स्व',
५. 'दातो' ख. पाठः ।

अन्योन्यवीक्ष्यमाणानां भेदास्तेनेह नोदिताः ।
 एकशालयु(ते?ते)भेदाः स्युच्चतुशालवेशमनि ॥ १० ॥
 चत्वारः पञ्चशालानां ब्रूमस्तेषां च विंशतिः ।
 यदा भवत्यजा शाला सर्वतोभद्रवेशमना ॥ ११ ॥
 सुदर्शनमिति प्राहुः पञ्चशालं तदा गृहम् ।
 तदेव करिणीयोगात् सुरूपमिति कथ्यते ॥ १२ ॥
 सुन्दरं महिषीयोगाद् गावीयोगात् शोभनम् ।
 वर्धमानस्य चैतासां शालानां योगतः क्रमात् ॥ १३ ॥
 सुनाभं सुप्रभं योग्यं विनोदं च भवेद् गृहम् ।
 नन्द्यावर्तेऽप्येवमेव शालायोगेन जायते ॥ १४ ॥
 सुखंदं नन्दनं नन्दं पुण्डरीकं च मन्दिरम् ।
 रुचकस्याप्यजादीनां योगेन स्पुरनुक्रमात् ॥ १५ ॥
 नामतो भद्ररुचिररोचिष्णुनि प्रहर्षणम् ।
 स्वस्तिकेऽप्यनया युक्त्या भवेद् गृहचतुष्टयम् ॥ १६ ॥
 योपं सुयोपणं निनिदयोपं श्रीपदमेव च ।
 विंशतिः सर्वतोभद्रप्रभृत्यालययोगतः ॥ १७ ॥
 जातानि पञ्चशालानि योग्यानि पृथिवीमुजाम् ।
 पूर्वोक्तेरष्टभिः सार्वं स्यादष्टाविंशतिर्गृहैः ॥ १८ ॥
 + कथ्यते^१ पञ्चशालानां भूषाभेदकमोऽधुना ।
 विभद्रमेकं तत्रैकंभद्राणि दशसङ्ख्यया ॥ १९ ॥
 द्विभद्राणि पुनः पञ्चत्वारिंशत् प्रचक्षते ।
 त्रिभद्राणां शतं विंशत्युत्तरं द्वे दशोत्तरे ॥ २० ॥
 चतुर्भद्रगृहाणां तु द्विपञ्चाशच्छतद्वयम् ।
 गृहाणां पञ्चभद्राणां पद्मभद्राणां दशोत्तरे ॥ २१ ॥

१. 'नाम्', २. 'नन्दं', ३. 'ते' ख. पाठः । ४. 'व' क. पाठः ।

[†] अपीयामष्टाविंशतीनां (?)मध्ये एकतमस्य भूषाभेदे कृते एतावन्ति रूपाणि भवन्ति । इति दिष्टणमस्ति ।

श्रीप्रदत्तमिति प्राहुस्तदा वेशम महीभृताम् ।
एकैकस्य द्विभेदत्वाच्चत्वारिंशदियं भवेत् ॥ ७४ ॥

एवमत्र प्रकाराः स्युच्छत्वारिंशद् युताष्टभिः ।
यदा त्रिशालं भवनं चतुशालेन युज्यते ॥ ७५ ॥

तदापि सप्तशालं स्याच्चतुर्भेदं समासतः ।
पञ्चानां राजगेहानां मिलत्येकतमस्य चेत् ॥ ७६ ॥

त्रिशालं स्यात् तदा सप्तशालं विंशतिभेदवत् ।
हिरण्यनाम(भोद्यो)गेन सर्वतोभद्रमन्दिरम् ॥ ७७ ॥

श्रीवत्सं जनयेद् वेशम नरेन्द्राणां हितावहम् ।
श्रीबृक्षं सर्वतोभद्रे सुक्षेत्रे मिलिते भवेत् ॥ ७८ ॥

चुल्लियुक्ते पुनस्तस्मिन् श्रीपालं नाम जायते ।
पक्षग्ने सर्वतोभद्रयुक्ते श्रीकण्ठमुच्यते ॥ ७९ ॥

हिरण्यनामे श्रीवासं वर्धमानयुते भवेत् ।
श्रीनिवासं तु सुक्षेत्रे वर्धमानेन मिश्रिते ॥ ८० ॥

वर्धमानेन चुल्लया च गृहं श्रीभूषणं विदुः ।
पक्षग्नं वर्धमानेन यदा संयोगमृच्छति ॥ ८१ ॥

तदा श्रीमण्डनं नाम जायते भवनोत्तमम् ।
जाते हिरण्यनाभस्य नन्द्यावर्तेन सङ्गमे ॥ ८२ ॥

स्याद् वेशम श्रीकुलं नाम श्रियः कुलनिकेतनम् ।
नन्द्यावर्तेन सुक्षेत्रे युक्ते श्रीगोकुलं भवेत् ॥ ८३ ॥

नन्द्यावर्तस्य चुल्लयाश्च योगे श्रीस्थावरं गृहम् ।
नन्द्यावर्तस्य पक्षग्नयोगे कुम्भं प्रजायते ॥ ८४ ॥

हिरण्यनाभरुचकयोगे स्याच्छ्रीसमुद्रकम् ।
श्रीनन्दं नाम सुक्षेत्रे रुचकार्लयेन संयुते ॥ ८५ ॥

चुल्लयां रुचकयुक्तायां श्रीह्रदं नाम जायते ।
श्रीधरं नाम पक्षग्ने भवेद् रुचकसंयुते ॥ ८६ ॥

हिरण्यनाभेन युते स्वस्तिके श्रीकरण्डकम् ।
 सुक्षेत्रेण युते तस्मिन् श्रीभाण्डागारसंज्ञितम् ॥ ८७ ॥
 चुल्लीयुते श्रीनिलयं भवेन्नरपतिप्रियम् ।
 स्वस्तिकस्य यदा योगः पक्षघ्नेन प्रजायते ॥ ८८ ॥
 श्रीनिकेतनसंज्ञं स्यात् तदा नृपतिमन्दिरम् ।
 उक्तानि सप्तशालानि नामलक्षणयोगतः ॥ ८९ ॥
 सर्वाणि सार्वभौमानां वृपाणां मन्त्रिणामपि ।
 भवन्ति च सतां वित्तयशोविजयवृद्धये ॥ ९० ॥
 एकादिमूषावहनप्रभेदादथ वेशमनाम् ।
 एतेषां सप्तशालानां ब्रूमः संख्यामनुक्रमात् ॥ ९१ ॥
 १ वहत्येकापि नो यत्र मूषैकं तद् भवेद् गृहम् ।
 विभद्रमेकभद्राणि विजानीयाच्चतुर्दश ॥ ९२ ॥
 द्विभद्रवेशमनां सैका नवतिः परिकीर्तिता ।
 भवनानां त्रिभद्राणां चतुःषष्ठिः शतत्रयम् ॥ ९३ ॥
 सहस्रमेकाभ्यधिकं स्याच्चतुर्भद्रवेशमनाम् ।
 भवतः पञ्चभद्राणां द्वे सहस्रे द्विसंयुते ॥ ९४ ॥
 पद्मभद्राणां सहस्राणि त्रीणि त्रीणि गृहाणि च ।
 द्वात्रिंशतां चतुर्थिंशत् सप्तभद्रशतानि च ॥ ९५ ॥
 अष्टभद्राणि पद्मभद्रसद्ख्यातुल्यानि जायते(?) ।
 गृहाणां नवभद्राणां द्वे सहस्रे तथा द्वयम् ॥ ९६ ॥
 सहस्रं दशभद्राणामेकोत्तरमुदाहृतम् ।
 तथैकादशभद्राणां चतुर्षष्ठया शतत्रयम् ॥ ९७ ॥
 सैका द्वादशभद्राणां नवतिर्वेशमनां भवेत् ।
 स्युस्त्रयोदशभद्राणि गृहाणीह चतुर्दश ॥ ९८ ॥

१. 'शानि' ख, पाठः ।

२. 'यत्र यस्यां सप्तशालज्ञातौ एकापि मूषा यद् यहं न वहति न प्राप्नोति, तदेकं गृहं
न्ति' भवेत्' इति दिष्पणमास्ति ।

यच्चतुर्दशभिर्भद्रेरेकमेव हि वेशम् तत् ।
 इत्येषां सप्तशालानां सहस्राण्यत्र पोडश ॥ ९९ ॥

एकोनविंशती तद्दशीतिश्चतुरुचरा ।
 इदानीमष्टशालानि भवनान्यभिद्यमहे ॥ १०० ॥

वहिरन्तश्चतुःशालद्वयादेकं समासतः ।
 अन्यानि सर्वभद्रादिद्वयसंयोगतो दश ॥ १०१ ॥

एकोनविंशता क्षेत्रं चतुरश्च विभाजयेत् ।
 भागद्वयेन मूषा स्याच्छाला भागचतुष्टयात् ॥ १०२ ॥

कुर्वीत पञ्चभिर्भग्निस्तन्मध्येऽज्ञानवापिकाम् ।
 चतस्रश्च प्रतिदिशं मूषाः स्युस्तत्र वास्तुनि ॥ १०३ ॥

शालयोनं सप्तशालं पटशालं द्वितयोजितम् ।
 त्रिहीनं पञ्चशालं स्यादष्टशालमिदं कचित् ॥ १०४ ॥

तुल्यत्रिशालद्वितयं द्विशालेन युतं यदा ।
 अष्टौ तदाष्टशालानि गृहाण्यन्यानि निर्दिशेत् ॥ १०५ ॥

मूषाब्यूढिवशादष्टशालानामथ कथ्यते ।
 सहस्र्या तत्र विभद्रं स्यादवहन्मूषसंज्ञितम् ॥ १०६ ॥

पोडशैवैकभद्राणि द्विभद्राणां शतं विदुः ।
 विंशं पष्ठैया त्रिभद्राणां विजेयं शतपञ्चकम् ॥ १०७ ॥

अष्टादशाहुर्विंशानि चतुर्भद्रशतानि च ।
 पञ्चभद्रसहस्राणि चत्वारि स्युः शतवृयम् ॥ १०८ ॥

अष्टृष्टिश्च गेहानि तानि सम्यग् विभावयेत् ।
 सहस्राष्टकमष्टौ च पटभद्राणि प्रचक्षते ॥ १०९ ॥

एकादशसहस्राणि तथा शतचतुष्टयम् ।
 जानीयात् सप्तभद्राणि चत्वारिंशद् गृहाणि च ॥ ११० ॥

द्वादशैवाष्टभद्राणां सहस्राणि शताष्टकम् ।
 सप्तत्याभ्यधिकं प्राहुर्वास्तुविद्याविशारदाः ॥ १११ ॥

१. 'एकात्र चि'; २. 'त्र चतु' क. पाठः । ३. 'ष्ठैय' क., 'ष्ठै' र.
 पाठः । ४. 'द्वै' ख. पाठः ।

एकादशसहस्राणि तथा शतचतुष्टयम् ।
 चत्वारिंशत्त्वं गेहानि नवभद्राणि सङ्ख्यया ॥ ११२ ॥
 अष्टौ स्युर्दशभद्राणां सहस्राण्यष्टिभिः सह ।
 तथैकादशभद्राणां सङ्ख्यया स्यात् पञ्चभद्रवत् ॥ ११३ ॥
 अष्टादशशैतानि स्युर्विंशतिर्भवनानि च ।
 इति द्वादशभद्राणां सङ्ख्यया भवति वेश्मनाम् ॥ ११४ ॥
 स्यात् त्रयोदशभद्राणां पद्मवर्णं शतपञ्चकम् ।
 स्याचतुर्दशभद्राणां विंशत्यस्यविकं शतम् ॥ ११५ ॥
 वेश्मानि स्युस्तथा पञ्चदशभद्राणि पोडश ।
 एकमेव हि विज्ञेयं यृहं पोडशभद्रकम् ॥ ११६ ॥
 † पञ्चपट्टिसहस्राणि पद्मविंशतिर्भवकम् ।
 गृहाणामष्टशालानां भवत्येकत्र सङ्ख्यया ॥ ११७ ॥
 स्यात् समानचतुश्शालद्वययोगात् समासतः ।
 एकैकशालयोगाच नवशालचतुष्टयम् ॥ ११८ ॥
 सर्वतोभद्रमुख्यानां पिथो द्वितययोगतः ।
 एकैकशालयोगाच चत्वारिंशत् तथापरा ॥ ११९ ॥
 तुल्यत्रिशालत्रितययोगेन च चतुष्टयम् ।
 गृहाणां नवशालानामन्यदुक्तं पुरातनेः ॥ १२० ॥
 संस्थानमुक्तं गेहानां नवशालात्मनापिदम् ।
 मूपावहनभेदेन तत्सङ्ख्या कथ्यतेऽधुना ॥ १२१ ॥
 अवहन्मूपमेकं स्याद् वहन्त्यौष्टादशैकया ।
 द्वाभ्यां शतं त्रिपञ्चाशदधिकं वेश्मनां भवेत् ॥ १२२ ॥

१. 'सहस्राणि विंश', २. 'भद्राणां भ', ३. 'त्वं' ख. पाठः ।

| | | | | | | | | | |
|----------------|--------|----|-----|-----|------|------|------|--------|-------|
| † अष्टशालगृहा— | गृह१ | १६ | १२० | ५६० | १८२० | ४३६८ | ८००८ | ११४४० | १२८७० |
| गौमैवयं ६५५३६ | भद्र० | १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ भद्र | ८ |
| पोडशगुरुणां | | | | | | | | | |
| 'स्तरे' | भद्र१६ | १५ | १४ | १३ | १२ | ११ | १० | ९ भद्र | ८ |

न्ति । इति विष्णु दत्तमस्ति ।

तिस्रमिः स्युः शतान्यष्टौ सह पोदशभिर्गृहैः ।
 पष्ठयौ सहस्रत्रितयं तामिश्रतसभिर्भवेत् ॥ १२३ ॥

पञ्चाशीतिशतान्यष्टपठियुक्तानि पञ्चमिः ।
 वहन्तीमिः प्रजायन्ते मूषाभिरिह वेश्मनाम् ॥ १२४ ॥

अष्टादशसहस्राणि तथा पञ्चशतानि च ।
 चतुःपष्ठिं च गेहानि मूषाभिः पद्भिरादिवेत् ॥ १२५ ॥

एकत्रिंशत्सहस्राणि सहितान्यष्टमिः शतैः ।
 चतुर्विंशतियुक्तानि मूषाभिः सप्तभिर्विंदुः ॥ १२६ ॥

चत्वारिंशत्सहस्राणि त्रिसहस्री च वेश्मनाम् ।
 शतानि चाष्टपञ्चाशत् सप्त मूषाभिरष्टमिः ॥ १२७ ॥

चत्वारिंशत्सहस्राणि सहस्राण्यष्ट पदशती ।
 विंशतिं चैव मूषाभिर्गृहाणां नवभिर्विंदुः ॥ १२८ ॥

चत्वारिंशत्सहस्राणि सहस्रत्रयमोक्षाम् ।
 मूषाभिर्दशमिः साष्टपञ्चाशत्सप्तकम् ॥ १२९ ॥

एकत्रिंशत्सहस्राणि चतुर्विंशत्सप्ताष्टकम् ।
 मूषाभिरेकादशभिर्गृहाणां मुनयो जगुः ॥ १३० ॥

अष्टादशसहस्राणि तथा पञ्चशतानि च ।
 धान्नां द्वादशमूषाणां चतुःपष्ठिश जायते ॥ १३१ ॥

भवन्त्यष्टौ सहस्राणि तथा पञ्चशतानि च ।
 स्यात् त्रयोदशमूषाणामष्टपठिश वेश्मनाम् ॥ १३२ ॥

स्याच्चतुर्दशमूषाणां त्रिसहस्री सप्तष्टिका ।
 मूषाभिः पञ्चदशमिः पोदशाष्टशती तथा ॥ १३३ ॥

धान्नां पोदशमूषाणां त्रिपञ्चाशत्सप्त भवेत् ।
 स्युः सप्तदशमूषाणि वेश्मान्यष्टादश स्फुटम् ॥ १३४ ॥

मूषाभिरष्टादशभिर्वेशमैकं तद्विदो विदुः ।
 लक्षद्वयं सहस्राणि द्वाषष्टिश शतान्विता ॥ १३५ ॥

वेश्मनां नवशालानां चत्वारिंशचतुर्युता ।
 स्यात् समानचतुःशालद्वययोगात् समासतः ॥ १३६ ॥
 एकेन च द्विशालेन दशशालचतुष्टयम् ।
 सर्वतोभद्रमुख्यानां मिथो द्वितययोगतः ॥ १३७ ॥
 एकद्विशालयोगाच्च चत्वारिंशत् तथापरा ।
 तुल्यत्रिशालत्रितयपेकशालयुतं यदा ॥ १३८ ॥
 साधारणं तदान्यत् स्याद् दशशालचतुष्टयम् ।
 तुल्ये त्रिशाले युज्येते सर्वभद्रादिभिर्यदा ॥ १३९ ॥
 तदान्या दशशालानां समुत्पद्येत विशतिः ।
 तेष्वेकमवहन्मूर्खं विशतिर्मूर्खयैक्या ॥ १४० ॥
 वहन्त्या स्यादुभाभ्यां तु नवत्यभ्यधिकं शतम् ।
 चत्वारिंशानि तिसूभिः शतान्येकादश ध्रुवम् ॥ १४१ ॥
 चत्वारि स्युचतसूभिः सहस्राणि शताष्टकम् ।
 चत्वारिंशब्दं गेहानि जायन्ते पञ्चभिः सह ॥ १४२ ॥
 पञ्चभिस्तु सहस्राणि मूर्पाभिर्दशपञ्च च ।
 जायन्ते सचतुष्काणि तथा पञ्चशतानि च ॥ १४३ ॥
 अष्टात्रिंशत्सहस्राणि पद्मभिः सप्त शतानि च ।
 पष्ठचत्तराणि जायन्ते वेद्यनां परिसङ्गव्यया ॥ १४४ ॥
 गृहाणां स्युः सहस्राणि सप्तभिः सप्तसप्ततिः ।
 शतपञ्चकमन्यच्च भवेद् विशतिसंयुतम् ॥ १४५ ॥
 लक्ष्मेकं सहस्राणि पञ्चविंशतिरष्टभिः ।
 शतानि नव जायन्ते सप्तत्यभ्यधिकानि च ॥ १४६ ॥
 लक्ष्मेकं सहस्राणि सप्तपष्टिः शतानि च ।
 नव स्युः पष्टियुक्तानि नवमूर्पाप्रचारतः ॥ १४७ ॥
 लक्ष्मेकं चतुरशीतिश्च सहस्राणि शतानि च ।
 सप्त स्युर्दशभिस्तद्वत् पञ्चाशच्च पदुत्तरा ॥ १४८ ॥
 लक्ष्मेकं सहस्राणि सप्तपष्टिश्च वेद्यनाम् ।
 निति शतानि चैकादशभिः पष्ठानि नव निर्दिशेत् ॥ १४९ ॥

लक्षं तथा सहस्राणि जायन्ते पञ्चविंशतिः ।
 शतानि च द्वादशभिर्नव तद्वच्च सप्ततिः ॥ १५० ॥

सहस्राणि निकेतानां सङ्ख्यया सप्तसप्ततिः ।
 सविंशतिः पञ्चशती ब्रयोदशभिरीरिता ॥ १५१ ॥

अष्टाविंशत्सहस्राणि तथा सप्तशतानि च ।
 स्युथतुर्दशभिः पष्ठ्या वेश्मनामन्वितानि च ॥ १५२ ॥

स्यात् पञ्चदशसाहस्री शतैः पञ्चभिरन्विता
 मूषाभिः पञ्चदशभिश्चत्वारि भवनानि च ॥ १५३ ॥

स्युः सहस्राणि चत्वारि तद्वदैश्च शतानि च ।
 तथा पोडगमूषाणां चत्वारिंशत्पञ्च च ॥ १५४ ॥

सहस्रं सप्तदशभिः शतमेकं च वेश्मनाम् ।
 चत्वारिंशत्च वेश्मानि भवन्ति परिसङ्ख्यया ॥ १५५ ॥

शतं नवत्यभ्यधिकपटादशभिरुच्यते ।
 भवत्येकोनविंशत्या मूषाणां वेश्मविंशतिः ॥ १५६ ॥

एकमेव गृहं मूषाविंशतेर्वहनाद् भवेत् ।
 सङ्ख्येयं दशशालानां मूषाभेदप्रचारतः ॥ १५७ ॥

प्रयुतं चत्वार्ययुतान्यष्टसहस्राणि पञ्च च शतानि ।
 पट्सप्ततिर्गृहाणि च दशशालेष्वेकसङ्ख्येयम् ॥ १५८ ॥

चतुःशालादिगेहानि यावन्त्यादशशालतः ।
 चतुर्गुणानि प्रत्याशं तान्यलिन्देन निर्दिशेत् ॥ १५९ ॥

एकद्वित्रिचतुःशालवेश्मनां सङ्ख्मानिथः ।
 गृहाणि दशशालान्तान्येवमुक्तानि विस्तरात् ॥ १६० ॥

समारभ्य चतुःशा(ल?लं) दशशालान्तवेश्मनाम् ।
 सङ्ख्यामिदानीमैक्येन सर्वेषामभिदध्यहे ॥ १६१ ॥

मूषाभेदेन लक्षाणि स्युख्योदश वेश्मनाम् ।
 सहस्राण्यष्टनवतिस्तथा वेश्मानि पोडश ॥ १६२ ॥

मूषासंस्थानभेदेन भिन्नानां वेश्मनां पुनः ।
 जायन्ते कोटिशो भेदा यस्मान्नोक्तानि तान्यतः ॥ १६३ ॥

इत्थं चतुःशालमुखानि वेश्मान्युक्तानि यावदशशालमत्र ।
 शालाप्रभेदेन मिथोजभिषङ्गात् सहस्र्या च तेषामुदिता यथावत् ॥ १६४ ॥

इति महाराजाधिराजश्चीभोजेदविगचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशाले
 समस्तगृहाणां सहस्र्याकथनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥

अथ आयादिनिर्णयो नाम पद्मविंशोऽध्यायः ।

इदानीमभिधास्यामः सूत्रपातविधेः क्रमम् ।
 शस्ते मासि सिते पक्षे विद्ध्यात् तं शुभेऽहनि ॥ १ ॥

चैत्रे शोकाकुलो भर्ती वैशाखे च धनान्वितः ।
 ज्येष्ठे गृही विपद्येत नश्यन्ति पशवः शुचौ ॥ २ ॥

आवणे धनवृद्धिः स्यान्नभस्ये न वसेद् गृहे ।
 कलहश्चाभिने मासि भूत्या नश्यन्ति कार्तिके ॥ ३ ॥

मार्गशीर्ये धनप्राप्तिः सहस्रे कामसम्पदः ।
 माघे वहिभैर्यं चैव फाल्गुने श्रीरनुत्तमा ॥ ४ ॥

द्वितीया पञ्चमी मुख्या सप्तमी नवमी तथा ।
 एकादशीत्रियोद(इयस्ति?श्यौ ति)थयः स्युः शुभावहाः ॥ ५ ॥

चन्द्रतारावलं भर्तुरनुकूलं च शस्यते ।
 इयं हि सूत्रपाताख्या क्रिया प्रापादकर्मणि ॥ ६ ॥

कार्या पुरनिवेशो च प्रारम्भे भवनस्य च ।
 शिलानिवेशने द्वारस्तम्भोच्छायादिकेतु च ॥ ७ ॥

आद्रियेत सिते पक्षे ज्ञोभने लग्न एव हि ।
 रवौ कन्यातुलालिस्ये गृहं वरुणदिव्यमुखम् ॥ ८ ॥

निति । १. 'धिक', २. 'ती स्वाद् वैशाखे च', ३. 'मवं विद्यात् फा, ख. पाठः ।

न कुर्यात् तद्दि शून्यं स्याद्व च वृद्धिर्भवेत् प्रभोः ।
 नै दक्षिणमुखं कुम्भमृगधैनिविस्थिते रवौ ॥ ९ ॥

कुर्वीत निष्फलं तत् स्यान्तृपदण्डवधादिकृत् ।
 न मीनवृष्टमेषस्थे कुर्वीत प्राङ्मुखं रवौ ॥ १० ॥

तद् धनग्रं कलिक्षुद्राजचौरातिकृद् यतः ।
 रवौ मिथुनसिंहस्थे न कर्किस्थेऽप्युद्घमुखम् ॥ ११ ॥

कुर्यात् तद्दि दरिद्रत्वं दद्याच्चरणदासताम् ।
 आयव्ययांशकर्षणि प्रवक्ष्यामोऽथ वेदमनाम् ॥ १२ ॥

गृहमानवशात् सम्यक् कर्तुः स्थानवलावलम् ।
 नगरे वा पुरादौ वा दण्डर्मानं विधीयते ॥ १३ ॥

तदलाभे करैः कार्यं सम्यगायविशुद्धये ।
 यत्र हस्तैर्मितिः क्षेत्रे तत्रायो हस्तसंचितः ॥ १४ ॥

क्षेत्रालाभे तु तत्रैव ग्राद्वः स स्यादिदाङ्गुलैः(?) ।
 अङ्गुलैस्तु मिते क्षेत्रे सोऽङ्गुलस्तदलाभतः ॥ १५ ॥

पादैर्वायथ यवैर्वापि ग्राद्वः क्षेत्रानुसारतः ।
 गृहेषु कर्महस्तेन मानं स्वामिकरेण वा ॥ १६ ॥

देवतानां तु धिष्णयेषु कर्महस्तेन केवलम् ।
 दैष्यं हन्यात् पृथुत्वेन हरेद् भागं ततोऽष्टमिः ॥ १७ ॥

यच्छेषमायं तं विद्याच्छास्त्रदृष्टं ध्वजादिकम् ।
 ध्वजो धूमोऽथ सिंहश्च वृषः खरकुञ्जरौ ॥ १८ ॥

ध्वाङ्गक्षेत्रिति त उद्दिष्टाः प्राच्याद्यासु प्रदक्षिणम् ।
 अन्योन्याभिमुखास्ते च कामं स्वच्छन्दचारिणः ॥ १९ ॥

पूर्वाचार्यैः समुद्दिष्टा आयवृद्धिविद्यायकाः ।
 वृषसिंहगजाः शस्ताः प्रासादपुरवेशमसु ॥ २० ॥

ध्वजेऽर्धलाभः सन्तापो धूमे भोगो मृगाधिष्ठे ।
 कलिः शुनि धनं धान्यं हृषे स्त्रीदूषणं खरे ॥ २१ ॥

१. 'दक्षिणाभिमु', २. 'चापस्थ' ख, पाठः । ३. 'रामिकृ' क, पाठ

४. 'च' ख, पाठः ।

गजे भद्राणि दृश्यन्ते ध्वाङ्क्षे तु मरणं धुवम् ।
 वृषस्थाने गजं कुर्यात् सिंहं वृषभस्तिनोः ॥ २२ ॥
 न कुर्याद् वृषमन्यत्र शस्यते सर्वतो ध्वजः ।
 कल्याणं कुरुते सिंहो ब्राह्मणस्य विशेषतः ॥ २३ ॥
 क्षत्तिवयस्य गजः शस्तो वृषभः शस्यते विशेः ।
 शूद्रस्य ध्वज एवैकः शस्यते अर्थप्रदः सदा ॥ २४ ॥
 एवमेते गृहादीनामायाः सर्वे प्रकीर्तिताः ।
 प्रदद्यादासने सिंहमातपत्रेषु तु ध्वजम् ॥ २५ ॥
 चिह्नेष्वपि च सर्वेषु चामरव्यजनादिषु ।
 सिंहं गजं वा शस्तेषु रथेषु कवचेषु च ॥ २६ ॥
 सार्यश्वेगजपर्यणेष्विभं वृषभमेव च ।
 अर्थधारणपात्रेषु शयनेषु मतहजम् ॥ २७ ॥
 याने च वाहने चैव मतिमान् योजयेद् गजम् ।
 प्रासादप्रतिमालिङ्गपीठमण्डपवेदिषु ॥ २८ ॥
 कुण्डेषु च ध्वजं दद्याद् देवोपकरणेषु च ।
 आयो गृहवदुद्धाहवेदीमण्डपयोर्भवेत् ॥ २९ ॥
 महानसे वृषं दद्याज्जलाधारे जलाशये ।
 स्थाल्यां भोजनपात्रे च कोष्टागारेऽन्नधारणे ॥ ३० ॥
 एतद्गृहे तथा दद्याद् गृहोपकरणेषु च ।
 वृषभं गजशालायां प्रदद्याद् गजमेव वा ॥ ३१ ॥
 वृषं तु रगशालासु गोशालागोकुलेषु च ।
 गजाश्ववृषशालासु सिंहं यत्रेन वर्जयेत् ॥ ३२ ॥
 अयमानां खरध्वाङ्क्षभूमध्यानः शुभावहाः ।
 धूमोऽप्तिजीविनां शस्तो ध्वाङ्क्षः सन्न्यासिनां हितः ॥ ३३ ॥
 स्वगगानां श्वाकानां स्ववेशमानां खरः शुभः ।
 नटनर्तकवेशेषु पण्यस्त्रीणां खरः शुभः ॥ ३४ ॥
 कुलालरजकादीनां तथा गर्दभजीविनाम् ।
 गृहादिषु क्षेत्रफलं गैणयेदष्टभिर्भजेत् ॥ ३५ ॥

निति । १. 'शाम्', २. 'स्व' क. पाठः । ३. 'गु' ख. पाठः ।

त्रिवनेन भजेच्छेषं नक्षत्रेऽष्टहते व्ययः ।
 पिशाचो राक्षसो यक्ष इति व्रेषा व्ययो मतः ॥ ३६ ॥

साम्याधिक्यन्यूनताभिरायतः स्याद् यथाक्रमम् ।
 व्ययं क्षेत्रफले क्षिप्त्वा गृहनामाक्षराणि च ॥ ३७ ॥

भागं त्रिभिर्हरेत् तत्र यच्छेषं सौऽशको भवेत् ।
 चतुरज्ञो यथा मन्त्रो मुख्यो लभ्ये नवांशकः ॥ ३८ ॥

तथा गृहादिषु प्रोक्तं मुख्यत्वेनाशकत्रयम् ।
 इन्द्रो यमश्च राजा च त्रयो नामभिरंशकाः ॥ ३९ ॥

स्वनामतुल्यफलदा विज्ञातव्याख्योऽपि च ।
 गणयेत् स्वामिनक्षत्राद् यावत् स्याद् भवनस्य भम् ॥ ४० ॥

नवभिर्भाजिते तस्मिन् शेषं तारा प्रकीर्तिता ।
 जन्मसम्पद्विपत्क्षेमपापसाधकनैधनीः ॥ ४१ ॥

मैत्रीपरमैत्र्यौ च प्राहुः संज्ञाः समाः फले ।
 त्रिसप्तपञ्चमीर्भुर्गृहतारा विवर्जयेत् ॥ ४२ ॥

आद्याद्वितीयाष्टम्यस्तु ताराः स्युरिह मध्यमाः ।
 तेथा क्रक्षेऽपि चानिष्टे चन्द्रेऽप्यगतेऽपि च ॥ ४३ ॥

नयते दुरितं तारा चतुःपणवती(?)नुणाम् ।
 सुरराक्षसमत्याख्या क्रक्षाणां स्युर्गणाख्यः ॥ ४४ ॥

यद्वणक्षो भवेद् भर्ता तद्वणक्षं गृहं शुभम् ।
 मृगाभिरेवतीस्वात्यो मैत्रं पुष्पपुनर्वसु ॥ ४५ ॥

हस्तः श्रवण इत्येष देवाख्यो नवको गणः ।
 विशाखा कृत्तिकाश्लेषा नैऋतं वारुणं मघा ॥ ४६ ॥

चित्रा ज्येष्ठा धनिष्ठेति नवको राक्षसो गणः ।
 आद्रीभरण्यौ रोहिण्यौ तिसः पूर्वास्तथोत्तराः ॥ ४७ ॥

इति नक्षत्रनवकं विज्ञेयं मानुषे गणे ।
 गणसाम्यं शुभा तारा यस्यायात् व्ययोऽन्यकः ॥ ४८ ॥

१. 'स्माच्छेषं', २. 'तत्वानुषेऽपि', ३. 'प्यस्तिसः' ख, पाठः ।

हितोऽशकथ तदेशम् भर्तुः शुभफलप्रदम् ।
 आयो व्ययथ योनित्वं ताराथ भवनांशकाः ॥ ४९ ॥

गृहनामेति चिन्त्यानि करणानि गृहस्य पद् ।
 त्रिभिः शुभैः शुभे वेशम् द्वाभ्यामेकेन चाशुभम् ॥ ५० ॥

करणैश्चतुरादैस्तु शुभैरतिशुभं भवेत् ।
 न समायव्ययं वेशम् नाव्ययं नाधिकव्ययम् ॥ ५१ ॥

न द्वितीयांशुमसहग्योनिमं च न कारयेत् ।
 भर्तुतुल्याभिधानं च गृहं दूरात् परित्यजेत् ॥ ५२ ॥

समसप्तकमेकक्षं तृतीयैकादैशं तथा ।
 चतुर्थदशकं चेति कर्तव्यं मन्दिरं सदा ॥ ५३ ॥

पद्मोषुकं त्रिकोणं च वृद्धैः द्विद्वादशं तथा ।
 पद्मोषुके मृतिदैन्यं वियोगथ भवेद् गृहे ॥ ५४ ॥

त्रिकोणे वसतां दुःखं वैधव्यं च प्रजायते ।
 द्विद्वादशे पुत्रपौत्रगुरुवन्धुभनक्षयः ॥ ५५ ॥

हतेऽष्टभिः क्षेत्रफले खनेत्रशशिभाजिते ।
 शेषं जीवितमेतस्मिन् पञ्चमके भवेन्मृतिः ॥ ५६ ॥

समुंजं सहपददारु मुखयण्डपसंयुतम् ।
 आयामतः पृथुत्वाच मानं कृत्वा विभाजयेत् ॥ ५७ ॥

सर्वतः शोधितं वास्तु यच्च सम्यङ्गमितं भवेत् ।
 स्वामिनस्तद् भवेद् धन्यं स्थपतेश्च यशस्करम् ॥ ५८ ॥

अर्चितं वर्धते वास्तु नारीभिः पशुभिर्नैः ।
 कीर्त्यायुर्धनधान्यैश्च प्रमोदैस्तु महोत्सवैः ॥ ५९ ॥

मेरुश्च खण्डमेरुश्च पताका सूचिका तथा ।
 उद्दिष्टं नष्टमिति पद् छन्दांसीह प्रचक्षते ॥ ६० ॥

एकाद्येकोत्तरान् कोष्ठान् विन्यसेदिच्छयात्मनः ।
 आद्यादारभ्य तदवृद्धिर्यथा स्पात् पार्श्वयोः समम् ॥ ६१ ॥

मेरोरेकाधिका सङ्ख्या शरावस्येव चाकृतिः ।
पथमे कोषुके रूपमन्तं यावच पार्थियोः ॥ ६२ ॥

आसनोऽर्धस्थयोन्न्यस्येन्मध्ये सङ्कलितं पृथक् ।
तस्मिन्निष्टविकल्पानां सङ्ख्या स्यादन्त्यपद्किंगा ॥ ६३ ॥

खण्डमेरुं तु विन्यस्येत् तद्वैकपार्थितः ।
प्रवृद्धैः कोषुकस्तत्राण्यङ्काः प्राग्यत् फलं तथा ॥ ६४ ॥

अथापरः खण्डमेरुः कोषुकस्तत्रेष्टसङ्ख्यया ।
कृत्वैकापचितान् वामविभगापचितानधः ॥ ६५ ॥

एकाद्येकोत्तरानङ्कानाद्यपहक्ती निवेशयेत् ।
अन्यासु पहक्तिष्वाप्रान्तं शून्या(न्याद्या)येषु कल्पयेत् ॥ ६६ ॥

द्वितीयेषु च कोषुषु तासामेककमाद्ययेत् (?) ।
द्वितीयायां तृतीयादिकोषुषु यथाक्रमम् ॥ ६७ ॥

विकर्णयोगजानन्यानूर्ध्वायोयोगसंभवान् ।
फलं विकर्णयोगोत्थमेकस्मिन् परिकल्पयेत् ॥ ६८ ॥

एकाधिकानभीष्टायाः सङ्ख्यायायास्तिर्यगालिखेत् ।
कोषुने(कांच?तांच) रूपादीस्तन्मध्ये द्विगुणोत्तरान् ॥ ६९ ॥

एकोनं पृष्ठतस्तेषामेकं द्विगुणमग्रतः ।
नातिक्रामेत् परां सङ्ख्यां पताकाळन्द उच्यते ॥ ७० ॥

तद्विनेष्टाद्यगा सङ्ख्येत्येकाद्यस्तैस्ततो युहे ।
न्यस्ताङ्कसङ्ख्याः सङ्ख्याः स्युरलिन्दाद्यैः प्रकलिपताः ॥ ७१ ॥

एकैकमिष्टस्थानेषु लिखेत् सैकेष्वतः परम् ।
अन्त्या(दै?द)ते पूर्वपूर्वयुक्तेनायोजयेत् परम् ॥ ७२ ॥

अन्त्यादारभ्य तद्वनावेकाद्येषु(?) च पर्यात् ।
अलिन्दादिषु यत्र स्यात् सङ्ख्या मूर्चीं तु तां विदुः ॥

उद्दिष्टे स्थापयेत् सङ्ख्यामुदिष्टां सम्भ(वे?जे)च ताम् ।
दलयेद् रूपयुक्तां तु दलयेन्नाम सम्भवेत्(?) ॥ ७४ ॥

लघुस्वरूपदलने सैकार्थं करणे गुरुः ।
 यावदिष्टपदासिः स्याल्घवोऽलिन्दकोदयः ॥ ७५ ॥

कृत्वा छन्दःसमुद्दिष्टं तदन्ते लघुनि द्विकम् ।
 न्यसेदेकं गुरुणां च द्विगुणं द्विगुणं ततः ॥ ७६ ॥

व्यत्ययाल्घुनः स्थाने द्विगुणादेकं गुरोः ।
 कुर्यात् तमाद्यस्थानाङ्कसङ्ख्यां नष्टे गृहं भवेत् ॥ ७७ ॥

प्राप्तस्यैकं कोष्ठमेकैकवृद्धचा न्यस्येदूर्ध्वं पद्क्तयो यावदिष्टाः ।
 इष्टानेकादीँलिखेदानुपूर्व्या कर्णेनाथः शून्यरूपे च दद्यात् ॥ ७८ ॥

कर्णस्थाङ्कश्लेषतोऽङ्के भवेद् यस्तं विन्यस्येत् कोष्ठकेषु क्रमेण ।
 उदिष्टाङ्को भद्रसङ्ख्यानि मध्ये याभ्यः कर्णश्लेषतो मूषिकास्ताः ॥ ७९ ॥

एकादिषु द्विगुणितेष्विह यावदिष्टमूषाकमव्युपहितेष्वय तेषु विद्यात् ।
 उदिष्टवेशमकृतनिर्गममार्गमूषासत्काङ्कसैकयुतिनिर्धितसङ्ख्यमोकः ॥ ८० ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवनिरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
 आयव्ययनक्षत्रराशिफलतद्योगताराङ्कयोनितच्छन्दोगनिर्णयो नाम
 पद्विंशोऽध्यायः ॥

अथ सभाष्टकं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ।

नन्दा भद्रा जया पूर्णा सभा स्याद् भाविता तथा ।
 दक्षा च प्रवरा तद्वद् विदुरा चाष्टमी मता ॥ १ ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे ततः पोदा विभाजिते ।
 मध्ये पदचतुर्ष्कं स्यात् सीमालिन्दस्तु भागिकः ॥ २ ॥

तद्वाद्योऽलिन्दकस्तद्वद् भवेत् प्रतिसराभिधः ।
 प्राम्नीवास्यस्तुतीयश्च वहिः क्षेत्राच्चतुर्दिशम् ॥ ३ ॥

निसृष्टसीर्धयैर्वा(?) स्यादेकस्यां वा यदा दिशि ।
 नन्दा भद्रा जया पूर्णा क्रमेण स्युः सभास्तदा ॥ ४ ॥

पदभागभाजिते क्षेत्रे कर्णभिन्नं निवेशयेत् ।
 सभा स्याद् भाविता नाम सप्राग्नीवात्र पञ्चमी ॥ ५ ॥

स्तम्भान् पदत्रिंशदेतासु पञ्चस्वयि निवेशयेत् ।
 स्तम्भान् प्राग्नीवसंबद्धान् पृथगेभ्यो विनिर्दिशेत् ॥ ६ ॥

दक्षेति षष्ठी परितस्तुतीयालिन्दवेष्टिता ।
 प्रवरा सप्तमी द्वार्युक्तैपा परिकीर्तिता ॥ ७ ॥

प्राग्नीवद्वारसंयुक्ता विदुरेत्यष्टमी सभा ।
 सभानामिदमष्टानां लक्षणं समुदाहृतम् ॥ ८ ॥

इत्यष्टानां लक्ष्म सम्यक् सभाना-
 मेतत् प्रोक्तं दिग्भवालिन्दभेदात् ।
 तद्वद् द्वारालिन्दसंयोगतश्च
 ज्ञातेऽत्र स्याद् भूमृतां स्थानयोगः ॥ ९ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गसूत्रधारापरनाभिन वास्तुशास्त्रे

सभाष्टकं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥

अथ गृहद्व्यप्रमाणानि नामाष्टाविंशोऽध्यायः ।

उपादेयानि यान्यत्र परित्याज्यानि यानि च ।
 गृहद्व्यप्रमाणानि तानीदार्नीं प्रचक्ष्यहे ॥ १ ॥

द्वारस्य गृहविस्तारैर्हस्ततुल्याङ्गुलैर्भवेत् ।
 उच्चायः सप्तमिर्युक्तैर्विस्तुतिस्तु तर्दर्थतः ॥ २ ॥

प्रकल्पयेद् गृहद्वारं क्रमेणैव कनीयसा(म्) ।
 त्रैराशिकेन मध्यानां द्वादशांशं परित्यजेत् ॥ ३ ॥

इत्युच्छ्रितिस्तदर्थेन सर्वेषामपि विस्तरः ।
 उच्छ्रायमुत्तमानां तु कुर्यादशांशवर्जितम् ॥ ४ ॥
 विस्ताराहगुलसंयुक्तांकुर्यादतिकनीयसाम् ।
 चतुःपटिगृहद्वारमुदयेनार्थविस्तृतम् ॥ ५ ॥
 विस्तारहस्ततुल्यानि पष्टया पञ्चाशताथवा ।
 संयुतान्यहगुलानि स्यादुच्छ्रायोऽर्थेन विस्तृतिः ॥ ६ ॥
 गृहोत्सेषेन वा अंशहीनेन स्यात् सगुच्छ्रितिः ।
 तदर्थेन तु विस्तारो द्वारस्येत्यपरो विधिः ॥ ७ ॥
 द्वारोच्छ्रायकरस्तुल्येष्वल्लगुलेषु विनिक्षिपेत् ।
 चत्वारि पेद्यापिण्डः स्यात् सपादं विदधीत तम् ॥ ८ ॥
 सार्थं वा सत्रिभागं वा द्विगुणं चाधिकं न तु ।
 एवं कुते भवेद् द्वारपेद्याया विस्तृतिः स्फुद्य ॥ ९ ॥
 सार्थेन पेद्यापिण्डेन पि(ण्डं स्यापिण्डस्यो)दम्बरो भवेत् ।
 सार्थस्तु पेद्याविस्तारः स्यादुदुम्बरविस्तृतिः ॥ १० ॥
 पेद्यापिण्डेन तुल्या स्याच्छाखाया विस्तृतिः शुभा ।
 सार्थया वैतया रूपशाखाया अपि विस्तृतिः ॥ ११ ॥
 विस्तारार्थेन पेद्यायाः खल्वशाखा विधीयते ।
 रूपशाखासमा वा स्यात् सार्था वा वाहमण्डला ॥ १२ ॥
 पादोना अंशहीना वा विस्तारादर्थमेव वा ।
 प्रासादेषु च तुल्यः स्याद् भारशाखाविनिर्गमः ॥ १३ ॥
 आद्या शाखा भवेद् देवी द्वितीया नन्दिनीति च ।
 तृतीया सुन्दरी नाम चतुर्थी स्यात् प्रियानना ॥ १४ ॥
 भद्रेति पञ्चमी शाखा प्रशस्ताः पञ्च वेशमनि ।
 अतोऽधिकास्तु याः शाखा गृहद्वारि न ताः शुभाः ॥ १५ ॥
 विस्तारात् पोडशो भागश्चतुर्हस्तसमन्वितः ।
 तलोच्छ्रयः प्रशस्तोऽयं भवेद् विदितवेशमनाम् ॥ १६ ॥

१. 'ततः', २. 'इ', ३. 'तेषां कनिष्ठवेशमना।' ४. पाठः।

सप्तहस्तो भवेज्ज्येष्ठे मध्यमे पद्मकरोन्मितः ।
पञ्चहस्तः कनिष्ठे तु विधातव्यस्तथोदयः ॥ १७ ॥

ज्येष्ठे भवेत् सप्तदशहस्ताच्छाला प्रविस्तृता ।
मध्यमे दशहस्तात् तु पञ्चहस्तात् कनीयसि ॥ १८ ॥

उदुम्ब(रारस्य) वाहु(त्यैत्यात्) तलन्यासं तु कारयेत् ।
तलन्याससमं पद्मलिन्दस्य परिग्रहे ॥ १९ ॥

द्वारविस्तारपादेन स्तम्भकोटिर्विधीयते ।
साष्टांशेनाधिकेनाथ सत्रिभागेन वा पुनः ॥ २० ॥

कुर्यादेकादशांशेन तथास्यैव प्र(या?णा)लिनीम् ।
स्तम्भान् कुर्यादतेऽष्टांशान्नव द्वादशधाथवा ॥ २१ ॥

भागैस्ततः स्वार्थसमैर्धभागसमन्वितैः ।
अधस्तादृष्टभागा स्यात् स्तम्भस्य प्रतिपालना ॥ २२ ॥

स्तम्भमूलस्य विस्तारादर्थेन स्थलनिर्गमः ।
तदर्थेन विधातव्यो ममूरकविनिर्गमः ॥ २३ ॥

उत्कालकसमुच्छ्रायः स्तम्भपिण्डसमः शुभः ।
कुम्भिकोत्कालवत् पिण्डे विस्तारेऽष्टांशसम्मिता ॥ २४ ॥

प्रागुक्तस्तम्भभागेन सपादेन विधीयते ।
दीर्घत्वमाद्यपत्राणां शेषाणां पादहानितः ॥ २५ ॥

पादः पादो भवेन्नयूनः पत्राणां रसनोच्छ्रायात् ।
सार्धभागोच्छ्रिता कार्या रसना कण्टकोपमा ॥ २६ ॥

सार्धपादोच्छ्रिता यद्वा जडा शेषं यथोदितम् ।
इत्थं स्यात् पञ्चकस्तम्भो युक्त्या युक्तस्वरूपकैः ॥ २७ ॥

अष्टाश्रो वा विधातव्यः स्तम्भसूत्रपरिक्रमात् ।
तद्विस्तारसमं त्यक्तोत्सेवं भागान् विभाजयेत् ॥ २८ ॥

अष्टाश्रुच्छेदमानेन वाष्टमूत्रानुपल्लवान् ।
विद्यान्मध्यभागे तु कोणांश्च पल्लिकाकुलान् (?) ॥ २९ ॥

१. 'न्व + + वाहम्य त' (?), २. 'नप' ख. पाठः ।

घटिका पुष्पमालाभिः पल्लवैशोपशोभिता ।
 छेदभागः समः कार्यो बहिर्भागविवर्जितः ॥ ३० ॥
 घटपल्लवको नाम स्तम्भोऽयं परिकीर्तिः ।
 विहितो वेशमनामेष स्वामिनः श्रेयसे भवेत् ॥ ३१ ॥
 कुवेरो वा विधातव्यः पोडशाश्रक्रियान्वितः ।
 उर्ध्वतः पल्लवाकीर्णो जङ्घास्य चतुरश्रिका ॥ ३२ ॥
 श्रीधरश्च भवेद् वृत्तः कल्पनास्य कुवेरवत् ।
 एवं गृहाणां चत्वारः स्तम्भा लक्ष्मभिरीरिताः ॥ ३३ ॥
 स्तम्भमूलस्य विस्तृत्या तलप(दैृ)स्य विस्तृतिः ।
 सपादया विधातव्या वाहुल्यं पादहीनया ॥ ३४ ॥
 स्तम्भेन तुल्यं विस्तारे वाहुल्ये पदसम्मितम् ।
 हीरग्रहणमायामे स्तम्भाग्रात् त्रिगुणं भवेत् ॥ ३५ ॥
 हीरग्रहणविस्तारं भागात् सप्त प्रकल्पयेत्(?) ।
 तत् स्यात् सृष्टोत्तरं भागं भागेनेष्टं प्रवेशनम् ॥ ३६ ॥
 तस्याधस्तात् त्रिकण्ठेन त्रिभागं लम्बितेन च ।
 लिखेदुभावर्धचन्द्रो पार्वयोरुभयोरपि ॥ ३७ ॥
 खल्वं कृत्वा ततो मध्यं भागद्वयमधोगतम् ।
 कुर्यात् त्रिकण्ठकं कान्तं तुम्बिकामथ लम्बिकाम् ॥ ३८ ॥
 द्वयोर्मध्येऽपरं भूयो द्विभागस्थं च कण्ठकम् ।
 तुम्बिकां लम्बमानां वा पत्रजातिविभूषिताम् ॥ ३९ ॥
 तस्याश्वापरतीरं स्यात् पद्मपत्र्या विभूषितम् ।
 तलपद्मसमः पेद्रो विस्तारात् पिण्डतोऽपि च ॥ ४० ॥
 पद्मश्चेन तीरे स्यात् पद्मपिण्डार्थनिर्गमः ।
 स्तम्भग्रेण सप्ता कार्या विस्तारस्थौल्यतस्तुला ॥ ४१ ॥
 तदर्थेन जयन्तीनां कर्तव्ये पिण्डविस्तृती ।
 ताभ्यो विधेयाः पादोनाः सन्धिपाला यद्वच्छया ॥ ४२ ॥
 निर्यूहेषु च ये पद्माः पादोनांस्तांस्तु कारयेत् ।
 तुलापद्माश्च पादोनास्तदर्थेन जयन्तिकाः ॥ ४३ ॥

तुलार्थेन विधातव्या प्रतिमोक्षस्य विस्तुतिः ।
 पट्टस्योपरि कण्ठः स्याद् भूषितो रूपकर्मणा ॥ ४४ ॥

वेदिका(जैजा)लरूपाद्या निर्योहे संप्रशस्यते ।
 विधातव्या च सच्छत्रा निवद्वाङ्गणवापिका ॥ ४५ ॥

स्तम्भपट्टां(शु?स्तु) विस्तीर्णान् सपादांस्तत्र कल्पयेत् ।
 तुलापिण्डाः समाः कार्याः सहृदैः सुहृदैर्युताः ॥ ४६ ॥

वेदिकाजालसम्पन्नं तलं कार्यं मनोरमम् ।
 भूमौभूमौ भवेत् तच द्वादशांशविवर्जितम् ॥ ४७ ॥

प्रणालयः सर्वतः कार्या मूलंग्राहाश्चनिर्गमाः ।
 दण्डच्छाद्याद्य गृहेषु स्याज्ञेयं तच चतुर्विधम् ॥ ४८ ॥

भूताख्यं तिलकं तद्वन्मण्डलं कुमुदं तथा ।
 गृहच्छाद्येषु तेषु स्यादुच्छायोऽपि चतुर्विधः ॥ ४९ ॥

क्षेत्रतुर्याशतः कार्यो देव्येणच्छाद्यदण्डकः ।
 तदर्थं मुष्टिकायामो दण्डव्यंशेन लम्बना ॥ ५० ॥

चतुरथं समं कान्तं मधुरं सुहृदं घनम् ।
 वेईमनां छाद्यकं कार्यं भूतं नाम्ना सुपूजितम् ॥ ५१ ॥

तस्यैवाष्टादशो भागो यदा स्यादुच्छयेऽधिकः ।
 उदयस्तिलको नाम शस्तः स गृहकर्मणि ॥ ५२ ॥

द्वाभ्यामुच्चतैरः पूर्वो मण्डलः कुमुदस्त्रिभिः ।
 अभित्ति(स्थे?स्थं) भवेच्छाद्येऽद्य चन्द्रेरेखाविभूषितम् ॥ ५३ ॥

गुणरागान्विता भित्तिर्यद्वा घनचयात्मिका ।
 तत्रच्छाद्य भवेच्छान्यदवधारणसंज्ञितम् ॥ ५४ ॥

सिंहकर्णकपोतालीघण्टाकर्णार्धपक्षगाः ।
 ध्वजच्छत्रकुमारांश्च गृहेषु परिवर्जयेत् ॥ ५५ ॥

१. 'का' ख. ग. पाठः । २. 'णकवा' ग. पाठः । ३. 'ला' ख. ग. पाठः ।
 ४. 'च्छाद्यर' ग. पाठः । ५. 'एं', ६. 'इमसुच्छा', ७. 'रतः', ८. 'न्द्रे',
 ९. 'अ' ख. ग. पाठः ।

न पश्चराजिध्वजसिंहकर्णकुमारधयः ।
 न प्रस्तवलोर्धानि नैचैव पत्राण्यायोजयेद् वेश्यसु महलार्थी ॥ ५६ ॥
 इति महाराजाधिराजभीमोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनामिन वास्तुशास्त्रे
 गृहद्रव्यप्रमाणानि नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥

अथ शयनासनलक्षणं नाम एकोनत्रिंशोऽध्यायः ।

इदानीमभिधास्यामः शयनासनलक्षणम् ।
 शुभाशुभपरिज्ञानं येन सम्यक् प्रजायते ॥ १ ॥
 मैत्रे मुहूर्ते पुष्पस्थे शीतरश्मी शुभेऽहनि ।
 सम्पूज्य देवताः सम्यक् कर्मारम्भं समाचरेत् ॥ २ ॥
 वृक्षास्तत्र प्रशस्यन्ते चन्दनस्तिनिशोऽर्जुनः ।
 तिन्दुकः सौलशाकौ च शिरीषासनधन्वनाः ॥ ३ ॥
 हरिद्रुदेवदारुच स्यन्दनोकौ सपदकौ ।
 श्रीपर्णी दधिपर्णश्च शिंशपान्येऽपि ये शुभाः ॥ ४ ॥
 गृहकर्मणि ये नेष्टा वृक्षास्तेऽत्रापि निनिदताः ।
 हेम्मा रुप्येण चानदा गजदन्तेन वा शुभा ॥ ५ ॥
 आरक्षटेन वा नद्दा शव्या कार्या विचक्षणैः ।
 पूर्वचिछब्दं यदा दारु शयनासनहेतवे ॥ ६ ॥
 आर्द्धायते तदारम्भे निवित्तान्युपलक्षयेत् ।
 दध्यक्षतान् पूर्णकुम्भं रत्नानि कुसुमानि वा ॥ ७ ॥
 सुगन्धद्रव्यवस्त्राद्यान् मत्स्याश्चयुगलं तथा ।
 मत्तवारणमन्यांश्च शुभान् वीक्ष्यादिशेच्छुभम् ॥ ८ ॥

१. 'रा', २. 'नैचैव' ल. ग. पाठः । ३. 'शा' क. पाठः । ४. 'भाः' ।
 सर्वेदन्तमयी शव्या हेमरत्नान्विता शुभा । गृ' क. ल. ग. पाठः ।

कर्माङ्गुलं समुदिष्टं वितुपैरष्टभिर्यवैः ।
 अष्टोत्तरशतं तेषां शश्या ज्येष्ठा महीभुजाम् ॥ ९ ॥

मध्या महीभुजां शश्या शतं स्याच्चतुरुत्तरम् ।
 शतं कनीयसी प्रोक्ता नुपाणी विजयावहा ॥ १० ॥

नवतिर्णपुत्रस्य मन्त्रिणः सा पद्मजिञ्जिता ।
 द्वादशोना बलपतेत्त्विपटकोना पुरोधसः ॥ ११ ॥

आयामार्थेन विस्तारं सर्वं शश्यासु कल्पयेत् ।
 यद्वा निजाष्टभागेन पद्मभागेनाथवाधिकम् ॥ १२ ॥

विप्राणां शस्यते शश्या देव्येणाङ्गुलसम्पतिः ।
 द्वाभ्यां द्वाभ्यामङ्गुलाभ्यां हीना स्याच्छेषवर्णिनाम् ॥ १३ ॥

वाहल्यमुत्पलस्य स्यादुत्तमस्याङ्गुलत्रयम् ।
 अङ्गुलद्वितयं सार्वं मध्यस्य द्वे कनीयसः ॥ १४ ॥

वाहल्यमीशादण्डस्य कुर्यादुत्पलसम्मितम् ।
 सार्वं सपादं सञ्चयेत् तस्य विस्तारमुत्पलात् ॥ १५ ॥

विस्तारार्थेन शश्यायाः स कुर्यस्य विशीयते ।
 तत्पादस्योद(यो?यौ) मध्यहीनौ द्विचतुरुज्जितौ ॥ १६ ॥

अर्थेन मध्यविस्तारान्मध्ये वाहल्यमिष्यते ।
 त्रिभागहीनैमिच्छन्ति पादोर्नमपि केचन ॥ १७ ॥

स्थौल्येन पादोऽधः शीर्षादुत्पलेन समो भवेत् ।
 मध्ये सपादः सार्वश्च तले द्वुद्धिः क्रमेण सां ॥ १८ ॥

पद्मभागोऽस्याधिको यद्वा मध्ये चंशाधिकस्तले ।
 तत्कुर्यमुत्पलचंशो भूले तस्यार्थमग्रतः ॥ १९ ॥

उत्सेधतुल्यो विस्तारः कार्यो वा ज्ञाङ्गुलाधिकः ।
 सपत्रकलिकापत्रपुट्यासविभूषितः ॥ २० ॥

कुर्यात् प्रदक्षिणाग्राणि शश्याङ्गानि समन्ततः ।
 ऊर्ध्वाग्रा निखिलाः पादाः स्वामिनो द्वुद्धिहेतवे ॥ २१ ॥

१. 'व्यमा' नृपतेः वा 'ख. ग. पाठः । २. 'वृ' ल. पाठः । ३., ४. 'ना' क, पाठः । ५. 'लः' ख. पाठः ।

श्रेष्ठैकद्रव्यजा शश्या मिश्रद्रव्या न शस्यते ।
 एकदारुं प्रशंसन्ति द्विदारुभयमावहेत् ॥ २२ ॥

त्रिदारुधटितायां तु स्वामिनो नियतो वथः ।
 शश्यायां जायते यस्मात् तस्मात् तां परिवर्जयेत् ॥ २३ ॥

मूलमध्रेण संयुक्तमपसव्यं विगर्हितम् ।
 मूलं मूलेन वा विद्मेकाग्रे द्वे च दारुणी ॥ २४ ॥

मध्ये व्रणो मृत्युकरस्त्रिभागे व्याधिकारकः ।
 क्लेशावहथतुभागे शिरस्थो द्रव्यहानिकृत् ॥ २५ ॥

निर्दोषगांत्रे पर्यङ्के पापस्वग्नो न दृश्यते ।
 ग्रन्थिकोटरवत् कुर्यात् तस्मात् शयनासनम् ॥ २६ ॥

आसनं शयनीयं च ग्रन्थिकोटरवजितम् ।
 वहुपुत्रकरं प्राहृष्टमकामार्थसाधनम् ॥ २७ ॥

आरोहणे प्रचलति शयने कम्पते तथा ।
 विदेशयानकलहौ ते क्रमेण प्रयच्छतः ॥ २८ ॥

सुश्लिष्टां तापतः कुर्यान्निर्दोषां वर्णशालिनीम् ।
 द्वां स्थिरां च स्थपतिः पत्युः कामविद्वद्ये ॥ २९ ॥

निष्कुटं कोलटक क्रोडनयनं वत्सनाभकम् ।
 कालकं वन्धकं चेति छिद्रसंक्षेप ईरितः ॥ ३० ॥

घटवत् सुपिरं मध्ये सङ्कटास्यं च निष्कुटम् ।
 कोलाक्षं नीडमिच्छन्ति माषनिष्पावमात्रकम् ॥ ३१ ॥

अध्यर्थपर्वदीर्घं च विवर्ण विषमं तथा ।
 तदिह क्रोडनयनं छिद्रमाहुर्महर्षयः ॥ ३२ ॥

भिन्नं पर्वमितं वामावर्तं स्याद् वत्सनाभकम् ।
 कालकं कृष्णकान्ति स्याद् विनिर्भिन्नं तु वन्धकम् ॥ ३३ ॥

छिद्रं दारुसवर्णं यत् तत्रो शुभकरं तथा ।
 निष्कुटेऽर्थक्षयः कोललोचने कुलविद्रवः ॥ ३४ ॥

१. 'मा' क. पाठः । २. 'क', ३. 'श्यायां कम्पते इथवा ।', ४. 'न्तु' ख. पाठः ।

शखाद् भीः कोडनयने वत्सनामे रुजो भयम् ।
 कालके बन्धकारुये च कीटविद्धे च नो शुभम् ॥ ३५ ॥

सर्वत्र प्रचुरग्रन्थि दारु सर्वमनिष्टदम् ।
 शश्यार्थं कथितैः बलूसं दारुभिः शस्तमासनम् ॥ ३६ ॥

उपवेशसुखं मानं प्रशस्ताय प्रकल्पितम् ।
 पुष्करः सूदहस्तश्च वृत्तोऽङ्गुलचतुष्टयात् ॥ ३७ ॥

आरभ्य विस्तरात् कार्यस्तावद् यावन्नवाङ्गुलम् ।
 पुष्करव्यासतो दण्डस्तस्य कार्यश्चतुर्गुणः ॥ ३८ ॥

फलकः पुष्करार्थेन ततुल्यश्चास्य भूलकः ।
 स्थूलः स्याच्चतुर्शेन दण्डपुष्करविस्तरात् ॥ ३९ ॥

खातं च पुष्करस्यान्तस्तोवद् गाम्भीर्यमिष्यते ।
 प्रशस्तसारदारुत्थः कर्तव्योऽस्य प्रयोजनम् (?) ॥ ४० ॥

परिवेषणमन्यच्च पच्यमानानेष्टकम् (?) ।
 कार्यः कङ्कतकः शूक्ष्मः प्रशस्तमृदुदारुजः ॥ ४१ ॥

आरभ्य दैर्घ्येणाष्टभ्यः स्याद् यावद् द्वादशाङ्गुलम् ।
 सार्धाङ्गुलं चतुर्भागं विस्तारेण च दैर्घ्यतः ॥ ४२ ॥

मध्ये च तस्य वाहल्यं विस्ताराष्टांशतो भवेत् ।
 एकतः स्थूलविस्तारा भवेयुस्तस्य दन्तकाः ॥ ४३ ॥

अन्यतस्तु घनाः शूक्ष्मास्तीक्ष्णाः कार्यास्तथाग्रतः ।
 मध्ये त्रिभागमुत्सृज्य दन्तका भागयोर्द्वयोः ॥ ४४ ॥

त्रिभिर्भागे ह्रुते तेषां न शेषस्तान् विवर्जयेत् (?) ।
 गजदन्तमयः श्रेष्ठस्तथा शाखोदवृक्षजः ॥ ४५ ॥

मध्यमो दारुभिः शैर्पर्जयन्योऽसारदारुजः ।
 रूपकैः स्वस्तिकार्यवां स मध्ये स्यादलङ्कृतः ॥ ४६ ॥

यूकाच्यपनये केशविवेके चोपयुज्यते ।
 अङ्गुलेनाधिके पादात् कार्ये दैर्घ्येण पादुके ॥ ४७ ॥

१. 'रः' ख. पाठः । २. 'स्य यावद् गा', ३. 'चषण्ट' क. पाठः
 ४. 'कै', ५. 'सद्यङ्गुलं', ६. 'ताम्' ख. पाठः ।

कुतायां पश्चात् तस्यां कुर्याद् भागवत्यं पुरः ।
 पश्चाद् भागद्वयं तत्र सह्योऽस्या विधीयते ॥ ४८ ॥

अङ्गुलत्रयमुत्सेधो विस्तारोऽङ्गुलयनुसारतः ।
 अङ्गुलयङ्गुष्टोर्मध्यभागे पत्स्याद्यलङ्कुतौ ॥ ४९ ॥

कर्तव्यौ कीलकौ काष्ठदन्तशृङ्गादिसम्भवौ ।
 गजेन्द्रदन्तः श्रीगण्डश्रीपण्डीं मेषशृङ्गिका ॥ ५० ॥

शस्ताः पादुकयोः शाकक्षीरिणीचिरविलिवकाः ।
 इदमिह शयनानामासनानां च लक्ष्म
 प्रकटितमनु दर्याः कङ्कतस्यापि सम्यक् ।
 शुभमथ विपरीतं पादुकानां च विद्रान्
 सकलमिति विदित्वा पूज्यतामेति लोके ॥ ५१^१_२ ॥

इति महाराजाभिराजश्रीमोजदेवविरचिते समराज्ञसूत्रवारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
 शयनासनलक्षणं नाम एकोनत्रिशोऽध्यायः ॥

अथ राजगृहं नाम त्रिंशोऽध्यायः ।

अष्टोत्तरशतं ज्येष्ठं मध्यं स्याच्चवर्ति करान् ।
 जघन्यं सप्ततिकरान् राजवेद्यम् प्रशस्यते ॥ १ ॥

अतो हीनं न कर्तव्यं महतीं श्रियमिच्छता ।
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे दशधा प्रविभाजिते ॥ २ ॥

भागार्थं शस्यते भित्तिरादिकोणसमाश्रिता ।
 चतुष्को^१ भागिको मध्ये चतुःस्तम्भसमन्वितः ॥ ३ ॥

अलिन्दस्तद्विः कार्यः स्तम्भैर्द्वादशभिर्वितः ।
 विशत्या स्याद् वर्युक्तो द्वितीयोऽलिन्दकस्ततः ॥ ४ ॥

1. 'व्य' क. पाठः । २. 'व्ये', ३. 'णी' ख. पाठः । ४. 'के' क. पाठः ।

स्यादृष्टा विंशतिस्तम्भस्तुतीयश्चाप्यलिन्दकः ।
 पद्मिंशता चतुर्थश्च स्तम्भानां परिकीर्तिः ॥ ५ ॥

एवं स्तम्भशतं मध्ये प्रोक्तं पृथ्वीजये बुधैः ।
 द्वाराणि चास्य चत्वारि पञ्चशास्त्रानि जायते(?) ॥ ६ ॥

चत्वारो निर्गमास्तस्य प्रोक्ताः सर्वे विभागिकाः ।
 दिश्मु सर्वासु कर्तव्यमेवं भद्रनिवेशनम् ॥ ७ ॥

अर्थेन मध्यभित्तेस्तु मित्तिर्मद्र(खैत्र)ये भवेत् ।
 भद्रेभद्रे धराणां स्याद् विंशतिश्चाष्टभिर्युता ॥ ८ ॥

मुखभद्रं भवेद् युक्तं वेदिकामत्तवारणः ।
 खेत्रभागोदयाद्या भूराभूमिफलकान्तरम् ॥ ९ ॥

आदिभूम्युदयार्थेन पीठं चास्य प्रकल्पयेत् ।
 भागान् नवोदयं कृत्वा भागेनेकेन कुम्भिका ॥ १० ॥

कर्तव्याष्टांशयुक्तेन स्तम्भो भागचतुष्टयै ।
 पादयुक्तं विधातव्यो भागेनोत्कलकं तथा ॥ ११ ॥

हीरग्रहणकं कार्यं भागं पादविवर्जितः?तम् ।
 सपादभागिकः पटः स्तम्भेन समन्वितः ॥ १२ ॥

पटार्थेन जयन्त्यः स्युर्भूमौभूमावयं क्रमः ।
 क्लृप्तभागोदयादर्थं भूमिष्वन्यासु हीयते ॥ १३ ॥

पञ्चभागप्रमाणं तु सच्छायं नवमं तलम् ।
 वेदिकाया अधश्छायं सार्धभागत्रयोन्मितम् ॥ १४ ॥

कण्ठेन युक्तं कर्तव्यं वेदिका पिहिता यथां ।
 तस्याः क(ण्ठे?ण्ठो) विधातव्यस्तन्मध्ये सार्धभागिकः ॥ १५ ॥

वेदिकाविस्तरः कार्यो भागांस्तत्रार्थसप्तमान् ।
 वेदिकोपरि घण्टा च सार्धभागीश्चतुर्दश ॥ १६ ॥

१. 'त्ति', २. 'म', ३. 'यो', ४. 'गो' क. पाठः । ६. 'यः' ख. पाठः ।
 ७. 'ग' क. 'मः' ख. पाठः । ८. 'स्याप्यं या', ९. 'र्थः' क. पाठः । १०. 'या'
 शोभम्युदयार्थवती(?) तस्याः, ११. 'ग' ख. पाठः ।

भागद्वयं सपादं तु कण्ठः पट्टु तु पञ्चभिः ।
 चतुर्भिंश्च द्वितीयं च तृतीयं च त्रिभिस्ततः ॥ १७ ॥
 सज्जेशीर्षश्च दातव्यो यथाशोभं यथारूचि ।
 क्षेत्रभागसमः कार्यः कलशशूलिकावधेः ॥ १८ ॥
 उदयार्थेन भूमेः स्युरन्तराणि तलानि च ।
 यथाशोभं तु कर्तव्यं पीडं तस्य सुशोभितम् ॥ १९ ॥
 सार्धभागद्वयं चास्य कार्या खुरवैरण्डिका ।
 जङ्घा भागचतुष्कं च ततश्छायं प्रयोजयेत् ॥ २० ॥
 भागद्वयं च पादोनं छाद्यपिण्डः प्रकीर्तिः ।
 निर्गमोऽस्य चतुर्भागो हंसारूपस्तस्य चोपरि ॥ २१ ॥
 पादोनभागं कर्तव्यं ततश्छायं द्वितीयकम् ।
 जङ्घा भूमिचतुष्केण प्रासादस्य प्रकल्पयेत् ॥ २२ ॥
 चतुर्थभूमिकामूर्धिं ततो मुण्डा(न) निवेशयेत् ।
 क्षर्णक्षणप्रवेशेन कार्याः शेषास्तु भूमिकाः ॥ २३ ॥
 वेदिका च यथोक्ता स्यात् सघण्टा कलशान्विता ।
 रेखाशुद्ध्या च कर्तव्या मुण्डाः सर्वे यथायथम् ॥ २४ ॥
 अर्थोदयं त्रिधा कुत्वा तृतीयं दशवा भजेत् ।
 वामनश्चातपत्रश्च कुवेरो भ्रमरावली ॥ २५ ॥
 हंसपृष्ठो महाभोगी नारदः शम्बुको जयः ।
 अनन्तो दशमस्तेषां विधायकवशादमी ॥ २६ ॥
 विधातव्याः स्थपतिभिर्मुण्डरेखाप्रसिद्धये ।
 तमङ्गवेदिकाजालमत्तवारणशोभितम् ॥ २७ ॥
 वितर्दिनिर्यूहयुतं चन्द्रशालाविभूषितम् ।
 कर्माङ्गं वहुचित्रं च कुर्वीत पृथिवीजयम् ॥ २८ ॥
 प्रासादाश्च महान्तो ये विधेयास्ते समोदयाः ।
 अर्थोदयेन लयवो द्विवा(को?को)णादयं क्रमः ॥ २९ ॥

१. 'स' क. पाठः । २. 'ख', ३. 'म' ख. पाठः । ४. 'ण' क. पाठः ।
 ५. 'न' ख. पाठः ।

भूम्यष्टकादभ्युदयः क्षेत्रविस्तारसम्मितः ।
 यतस्तव वधे प्रोक्तः प्रासादोऽन्यद् विभूषणम् (?) ॥ ३० ॥
 वहवो निकरा येषु प्राङ्गणं तेषु दीयते ।
 रेखायां प्रथमायां वा द्वितीयायामथापि वा ॥ ३१ ॥
 तृतीयायां वा रेखायां तत्र संवरणाः स्पृताः ।
 अयं भूम्युदयः कार्यः क्षेत्रे दशविभागिके ॥ ३२ ॥
 न्यूनाधिकविभक्ते तु कार्यः स्यादनुसारतः ।
 मुक्तकोणस्य लक्ष्माय प्रकमागतमुच्यते ॥ ३३ ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे भागद्वादशकाङ्क्षिते ।
 भागश्चतु(ष्टो?क्षो) मध्येऽस्य चतु(द्वी?र्धे)रविभूषितः ॥ ३४ ॥
 भागेन च ततोऽलिन्दो धरद्वादशकान्वितः ।
 तद्वद् द्वितीयालिन्दोऽपि विशत्या धारितो धरैः ॥ ३५ ॥
 तृतीयश्च धरैरस्ताविंशत्यालिन्दको भवेत् ।
 पद्मत्रिंशता धरैर्युक्तः कार्योऽलिन्दश्चतुर्थकः ॥ ३६ ॥
 चतुशत्वारिंशता स्याद् धरैर्युक्तश्च पञ्चमः ।
 भागार्धं कारयेद् भिन्ने साधैः भागं विमुच्य तु ॥ ३७ ॥
 भागत्रयं ततः कुर्यात् प्राग्नीवं दैर्घ्यविस्तृतौ ।
 विस्तृतौ निर्गमे चैषां भद्रं भागेन कल्पयेत् ॥ ३८ ॥
 भागिकं निर्गतं तस्मान्मध्येऽन्यद् भद्रमस्य हि ।
 भागनिर्गमविस्तारं दिक्षु सर्वास्यं विधिः ॥ ३९ ॥
 चतुःपञ्चाशता स्तम्भैरकैकं भद्रमन्वितम् ।
 मध्ये वास्य चतुशत्वारिंशं स्तम्भशतं भवेत् ॥ ४० ॥
 षोडशाभ्यधिका च स्याद् भद्रस्तम्भशतद्वयी ।
 एवं धराणां सर्वेषां भवेत् पष्ठं शतत्रयम् ॥ ४१ ॥
 पृथ्वीजयवदत्रापि शेषनिर्माणविष्यते ।
 तृतीयभूमिकामूर्धि निर्गमेष्वखिलेष्वपि ॥ ४२ ॥
 प्राङ्गणानि विधेयानि विशेषोऽर्जैष कीर्तिः ।
 सर्वतोभद्रसंज्ञेऽथ शत्रुमर्दननाम(पि?नि) ॥ ४३ ॥

अयमेव विधिः कार्यो मुण्डोरेखाप्रासिद्धये ।
 श्रीवत्सस्यापि मध्ये स्याद् स्तम्भाद्यं मुक्तकोणवत् ॥ ४४ ॥

सार्थं भागं परित्यज्य भागत्रितयविस्तृतम् ।
 कर्णप्राण्डीवमेतस्य भागेन च विनिर्गतम् ॥ ४५ ॥

भद्रं तस्यापि कर्तव्यं भागविस्तारनिर्गमम् ।
 मुक्तकोणवदस्यापि मध्यभद्रं विधीयते ॥ ४६ ॥

अयं विधिः समग्रासु दिक्षु शेषं तु पूर्ववत् ।
 प्रतिभद्रं धराञ्जिशद् भवन्त्यस्य ददाः शुभाः ॥ ४७ ॥

शतं विंशमिदं (सर्व)धराणामिह कीर्तितम् ।
 एवं समस्तस्तम्भानां चतुःषष्ठं शतद्वयम् ॥ ४८ ॥

सर्वतोभद्रसंज्ञस्य लक्ष्मेदानीं प्रचक्षमहे ।
 चतुरश्चीकृते क्षेत्रे चतुर्दशविभाजिते ॥ ४९ ॥

भागिकः स्याच्चतुष्कोऽस्य चतुःस्तम्भविभूषितः ।
 स्तम्भमैर्द्वादशभिर्युक्तः प्रथमः स्यादलिन्दकः ॥ ५० ॥

स्तम्भविंशतिसंयुक्तो द्वितीयः स्यादलिन्दकः ।
 स्यादष्टाविंशतिस्तम्भस्तृतीयः स्या(प्यदि)लिन्दकः ॥ ५१ ॥

पद्मिंशता चतुर्थः स्यादलिन्दो भूषितो धरैः ।
 पञ्चमः स्याच्चतुश्चत्वारिंशता भूषितो धरैः ॥ ५२ ॥

द्वाष्टाशद्वरः षष्ठः सर्वेऽप्येतेऽस्य भागिकाः ।
 भागार्थं शस्यते भित्तिः सर्वतः सुष्टुपा घना ॥ ५३ ॥

सार्थभागं परित्यज्य भागत्रितयविस्तृतः ।
 कर्णप्राण्डीवकथं स्याद् भागमेकं च निर्गमः ॥ ५४ ॥

भद्रप्रस्यापि कर्तव्यं भागनिर्गमविस्तृतम् ।
 मध्ये भद्रं विधातव्यं भागद्वयविनिर्गतम् ॥ ५५ ॥

अस्यापि भद्रं^१ मध्ये स्याद् भागत्रितयविस्तृतम् ।
 भागिको निर्गमशास्य तदन्तर्भागनिर्गतम् ॥ ५६ ॥

१. 'यस्या', २. 'त', ख. पाठः । ३. 'द्र' क. ख. पाठः ।

भागविस्तारसंयुक्तं भद्रमन्यत् प्रकल्पयेत् ।
दिक्षु सर्वास्वयं ग्रोक्तो विधिर्भद्रप्रकल्पने ॥ ५७ ॥

स्तम्भानामस्य कर्तव्यं मध्ये पण्णवतं शतम् ।
भद्रेष्वेषु च सर्वेषु भवेत् पञ्चविंशतिं शतम् ॥ ५८ ॥

समेन प्रविभागेन स्तम्भानामेकसङ्ख्यया ।
इत्थं समस्तस्तम्भानां पट्पञ्चाशं शतत्रयम् ॥ ५९ ॥

किन्तु जड्हा भवेदस्य भूमिकात्रितयोन्मिता ।
शत्रुमर्दनसंज्ञस्य धान्नो लक्ष्माथ कथ्यते ॥ ६० ॥

पृथ्वीजयसमं मध्ये भित्तिश्चापि तथाविधा ।
सार्थं भागं परित्यज्य भागेनायतविस्तृतम् ॥ ६१ ॥

भद्रं विदध्यात् तन्मध्ये भागत्रितयविस्तृतम् ।
भद्रमेवं विधातव्यं भागत्रितयनिर्गतम् ॥ ६२ ॥

पार्व्योर्भागिकं भद्रमाय(त्याः?त्या) विस्तरेण च ।
भागत्रितयविस्तारं भागेनैकेन निर्गमम् ॥ ६३ ॥

मध्यभद्रं ततोऽपि स्याद् भागेनायतविस्तृतम् ।
क्रमोऽयं दिक्षु सर्वासु विधातव्योऽस्य सिद्धये ॥ ६४ ॥

उर्ध्वं पृथ्वीजयस्येव कार्यमस्यापरं पुनः ।
प्रतिभद्रं चतुश्चत्वारिंशत्सतम्भसमन्वितम् ॥ ६५ ॥

मध्ये स्तम्भशतं चास्य विधेयं सुदृढं शुभम् ।
पट्सप्तिस्तम्भशतद्वयमस्य भवेदिति ॥ ६६ ॥

पञ्चानामपि चैतेषां हस्ताष्टशतमुत्तमम् ।
मानमुत्सेधविस्तारात् कर्तव्यं त्रियमिन्छता ॥ ६७ ॥

मध्यमाधमयोर्मानं कीर्तिं पृथिवीजये ।
राज्ञः क्रीडार्थमन्यच कथ्यते गृहपञ्चकम् ॥ ६८ ॥

क्षोणीविभूषणं त्वाव्यं पृथिवीतिलकं परम् ।
प्रतापवर्धनं चान्यच्छ्रीनिवासं ततोऽपि च ॥ ६९ ॥

१. 'वं' क. पाठः । २. 'भद्रंम्' ख. पाठः ।

लक्ष्मीविलाससंज्ञं च पञ्चमं परिकीर्तिम् ।
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे दशभागैविभाजिते ॥ ७० ॥
 चतुष्को भागविस्तीर्णो मध्ये कार्यश्चतुर्धरः ।
 वहिश्च भागिकोऽलिन्दस्तदन्तेऽशब्दयायताः ॥ ७१ ॥
 कर्णप्रासादैकाः कार्या भागत्रितयविस्तृताः ।
 तेषां पद्मारुकं मध्ये भिन्निर्भागार्थसम्मिताँ ॥ ७२ ॥
 तद्विर्भागनिष्क्रान्तो भद्रे भागं च विस्तृतः ।
 प्राग्नीवत्रयसंयुक्तो भागिकालिन्दवेष्टिः ॥ ७३ ॥
 अर्धभागिकभित्त्या च चतुष्को वेष्टितो भवेत् ।
 प्रासादोऽयं मनोहारी भवेद्वनिशेखरः ॥ ७४ ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे भागद्वादशभाजिते ।
 चतुष्को भागिको मध्ये वाहालिन्दौ च भागिकौ ॥ ७५ ॥
 नवकोष्ठांश्च कर्णेषु प्रासादान् विनिवेशयेत् ।
 पद्मारुकं च कर्तव्यं तेषामन्तरसंश्रयम् ॥ ७६ ॥
 ततोऽर्धभागिकी भित्तिः कर्तव्या सर्वतो वहिः ।
 भद्रे भागायतो भागविनिष्क्रान्तश्चतुर्दिशम् ॥ ७७ ॥
 चतुष्को भागिकोऽलिन्दवेष्टितश्च विधीयते ।
 अस्य भद्रत्रयं कार्यं भागविस्तारनिर्गमम् ॥ ७८ ॥
 अर्धभागिकभित्त्या च वेष्टितं तद् विधीयते ।
 कर्णेकर्णे (स?स्य)विस्तीर्णे द्वे भद्रे भागनिर्गते ॥ ७९ ॥
 प्रासादमेवं भुवनतिलकं परिचक्षते ।
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे भागद्वादशभाजिते ॥ ८० ॥
 चतुष्को भागिको मध्ये चतुःस्तम्भो विधीयते ।
 तद्विर्भागिकोऽलिन्दो द्वितीयोऽपिच भागिकः ॥ ८१ ॥
 नवकोष्ठांश्च कर्णेषु प्रासादान् विनिवेशयेत् ।
 पद्मारुकं च कर्तव्यं तेषामन्तरसंश्रयम् ॥ ८२ ॥

१. 'द्व' क. पाठः । २. 'दि', ३. 'ताः' ख. ४. 'को' क. पाठः ।

ततोऽर्थभागिकी भित्तिः कर्तव्या सर्वतो वहिः ।
भद्रे भागायतो भद्रविनिष्कान्तश्चतुर्थरः ॥ ८३ ॥

चतुष्को भागिकालिन्दद्वयेन परिवेष्टिः ।
त्रिभागविस्तृतं भद्रं तद्विभागनिर्गतम् ॥ ८४ ॥

भागिकं प्रतिभद्रं च कुर्यादुभयतः समम् ।
भागार्थं वाशतो भित्तिर्भद्रस्य परितो भवेत् ॥ ८५ ॥

विधिरेष विधातव्यो दिक्षेवं चतसृष्ट्वपि ।
विलासस्तवको नाम प्रासादोऽयं प्रकीर्तिः ॥ ८६ ॥

कर्णप्राग्नीवकौ द्वौ द्वौ शालप्राग्नीवकौ यदा ।
स्यातामस्य तदा कीर्तिपताकः परिकीर्तिः ॥ ८७ ॥

अस्यैव पीठे निर्गुक्तशालाभिः परितोऽर्थभिः ।
अन्योन्यशालासंबद्धे यदासावेव दीयते ॥ ८८ ॥

कर्णप्रासादकोपेतः कोणः शालोज्जितैर्युतः ।
प्रासादसुन्दरो हेयस्तदा भुवनमण्डनः ॥ ८९ ॥

एते प्रोक्तास्तलच्छन्दा जह्नासंवरणादिकम् ।
भूमिमानादिकं यच्च तत् पृथ्वीजयवद् भवेत् ॥ ९० ॥

इदानीं काथयते लक्ष्म क्षोणीभूषणवेश्मनः ।
पञ्चपञ्चाशता हस्तैः कलिपते चतुरश्चके ॥ ९१ ॥

विभक्ते चाष्टभिर्भागैश्चतुष्को भागिकः स्मृतः ।
चतुर्भिरन्वितः स्तम्भैरलिन्दशास्य भागिकः ॥ ९२ ॥

युक्तो द्वादशभिः स्तम्भैर्विशत्या च द्वितीयकः ।
स्यादष्टाविंशतिधरस्तृतीयश्चाप्यलिन्दकः ॥ ९३ ॥

भित्तेरप्यर्थभागेन सार्थं भागं विमुच्यते ।
भागपञ्चकविस्तीर्णं भद्रं भागेन निर्गतम् ॥ ९४ ॥

तन्मध्यभद्रमन्यच्च भागत्रितयविस्तृतम् ।
भागेन निर्गतं कार्यं भद्रमन्यत् ततोऽपिच ॥ ९५ ॥

१. 'ष्के', २. 'कृते', ३. 'कावल' ख. पाठः । ४. 'स्तम्भे ज' क. पाठः

भागेन विस्तुतं कार्यं भागेनापि च निर्गतम् ।
 दिक्षुं सर्वासु कर्तव्यो विधिरेषोऽस्य सिद्धये ॥ ९६ ॥
 मध्यस्तम्भैश्चतुःपष्ठचा संयुक्तं सारदारूजैः ।
 प्रतिभ्रदं धरैः कार्यमष्टादशभिरन्वितम् ॥ ९७ ॥
 पद्मिंशं शतमेवं स्यात् स्तम्भानामिह सर्वतः ।
 चतुर्द्वारमिदं कार्यं यशःश्रीकीर्तिवर्धनम् ॥ ९८ ॥
 पृथिवीतिलकस्याथ लक्षणं परिकीर्त्यते ।
 चत्वारिंशत्करे क्षेत्रे भागैर्भक्तेऽर्थपष्ठकैः ॥ ९९ ॥
 भागिकः स्याच्चतुष्कोऽन्तश्चतुःस्तम्भविभूषितः ।
 अलिन्दोऽपिच भागेन स्तम्भैर्द्वादशभिर्युतः ॥ १०० ॥
 विंशत्या चै द्वितीयोऽपि भित्तिः स्यादस्य पादिका ।
 कर्णे प्रासादको भागैस्त्रिभिः स्यान्निर्गतायतः ॥ १०१ ॥
 अस्य भद्रद्वयं कार्यं भागनिर्गतविस्तुतम् ।
 कर्णप्रासादयोर्मध्ये भागपञ्चकविस्तुतम् ॥ १०२ ॥
 भागेन निर्गतं कार्यं भद्रं तस्यापि मध्यतः ।
 भागत्रितयविस्तीर्णं भागेनकेन निर्गतम् ॥ १०३ ॥
 भद्रमस्यापि मध्येऽन्यद् भागेनायतनिर्गतम् ।
 स्तम्भाः पद्मिंशदन्तः स्युर्भद्रेष्वष्टौ शतद्वयम् ॥ १०४ ॥
 अथातः श्रीनिवासस्य लक्षणं सम्प्रचक्ष्महे ।
 पृथिवीतिलकवन्मध्यमेतस्य परिकीर्त्यते ॥ १०५ ॥
 सपादं भागमुत्सृज्यै भागत्रितयविस्तुतम् ।
 भागेन निर्गतं चास्य भद्रमाद्यं प्रकल्पयेत् ॥ १०६ ॥
 तस्यापि मध्यवर्तन्यद् भागनिर्गतविस्तुतम् ।
 अन्वितं दशभिः स्तम्भैः सुदृढैस्तद् विधीयते ॥ १०७ ॥
 सर्वास्वपि च दिक्षेवं विधेया भद्रकल्पना ।
 अस्य पद्मसप्तिः स्तम्भाः भवन्त्येकत्र सङ्ख्यया ॥ १०८ ॥

१. 'शःकीर्तिविव', २. 'द्विं' क. पाठः । ३. 'थ', ४. 'द्रुंच यत्का'
 ख. पाठः । ५. 'कल्पते', ६. 'इ' क. पाठः ।

प्रतापवर्धनस्याथ लक्ष्म साम्रतमुच्यते ।
पश्चिंशतिहस्ताङ्के सार्थभागत्रयाद्विते ॥ १०९ ॥

मध्ये चतुष्को भागेन चतुर्भिः सम्भृतो धरैः ।
अलिन्दो भागिकश्चास्य स्तम्भद्वादशकान्वितः ॥ ११० ॥

पादिका भित्तिरेतस्य भद्रं चास्य प्रकल्पयेत् ।
भागनिर्गमविस्तारं चतुःस्तम्भविभूषितम् ॥ १११ ॥

विधिरेप समग्रासु दिक्षु कार्योऽस्य सिद्धये ।
स्तम्भैर्द्वात्रिंशता युक्तो वहिरन्तर्यं भवेत् ॥ ११२ ॥

धराणां चैव सर्वेषां चतुःप्रणिः प्रकल्पना ।
अथ लक्ष्मीविलासस्य सम्यग् लक्ष्माधुनोच्यते ॥ ११३ ॥

प्रतापवर्धनस्येव मध्यमस्य प्रकल्पयेत् ।
प्रतापवर्धनसमं सर्वतोऽप्येतदीरितम् ॥ ११४ ॥

किन्त्वस्य पार्वभद्राणि भद्राणामेव कारयेत् ।
कोणेष्वपिच भद्राणि पार्वयोरुभयोस्तथा ॥ ११५ ॥

भागेऽस्यैश्च निर्गमोऽप्येषां विशेषोऽस्मादयं मतः ।
भद्रमस्य दशस्तम्भैर्मध्यं पोदशभिर्भैरः ॥ ११६ ॥

चतुर्द्वारां भवेदेतदिच्छया क्षणमध्यगम् ।
द्वारमन्यद् विधातव्यं स्वपदे स्यात् सुशोभितम् ॥ ११७ ॥

भूमिभिः सार्थपृष्ठीभिविधेयः क्षोणिभूषणः ।
अर्थाष्टमीभिश्च भवेत् पृथ्वीतिलक्षणकः ॥ ११८ ॥

स्यात् सार्थपञ्चमीभिस्तु श्रीनिवासोऽत्र भूमिभिः ।
लक्ष्मीविलाससंज्ञोऽर्थपञ्चमीभिविधीयते ॥ ११९ ॥

प्रतापवर्धनाख्योऽर्थचतुर्थाभिविधीयते ।
राजां पृथ्वीजयादीनि निवासभवनानि च ॥ १२० ॥

क्षोणीविभूषणादीनि विलासभवनानि च ।
यान्युक्तानि निवासाय विलासाय च भूमृताम् ॥ १२१ ॥

१. 'तो' क. पाठः । २. 'गास्या नि', ३. 'मं म', ४. 'म' ख. पाठः ।

तेषां पृथ्वीजयादीनां द्वारमानमथोच्यते ।
 चतुःपञ्चाशदंशो यो विस्तुतः सकरत्रयः ॥ १२२ ॥
 स द्वारस्योदयः प्रोक्तस्तदर्थेनास्य विस्तृतिः ।
 स्वोदयस्य त्रिभागेन पिण्डः स्तम्भेषु शस्यते ॥ १२३ ॥
 स्यात् सप्तविंशतितमः सपादः सचतुष्करः ।
 शृहभागो भवेद् भूमिः प्रथमा राजवेद्मनाम् ॥ १२४ ॥
 भूच्छ्राये नवधा भक्ते तदंशकचतुष्टयम् ।
 निर्गमश्छायकस्यांशद्रयं पादोनमुच्छ्रयः ॥ १२५ ॥
 तथान्तरावणी कार्या छायकोच्छ्रायनिर्गता ।
 हीरग्रहणपिण्डार्धवाहल्या सा प्रशस्यते ॥ १२६ ॥
 तस्याः स्वमेव वाहल्यं पादोनं विस्तृतिः स्मृता ।
 अन्तरावणिकातुल्यो मदलाया विनिर्गमः ॥ १२७ ॥
 स्वनिर्गमात् तथा चास्याः सपादः स्यात् समुच्छ्रयः ।
 भूम्युच्छ्रयनवांशस्य पादोऽस्याः पिण्डमिष्यते ॥ १२८ ॥
 भूनवांशत्रिभागोनो मदलायाश विस्तृतिः ।
 * लुप्तमूलस्य स्तम्भार्धं विस्तारः परिकीर्तिः ॥ १२९ ॥
 तत्त्व्यंशादग्रविस्तीर्णा मूले साईंशयुग् भवेत् ।
 तुम्बिनी लम्बिनी हेला शान्ता कोला मनोरमा ॥ १३० ॥
 आध्माता चेत्यमूः प्रोक्ता लुप्ताः सप्त मनीषिभिः ।
 कुञ्जः सा लम्बिनी तासामाध्माता कर्णगा स्मृता ॥ १३१ ॥
 अन्तराले क्रमेण स्युः पञ्चान्याः परिकीर्तिः ।
 स्तम्भे निदध्यान्मदलां छायं धर्तुं हडां शुभाम् ॥ १३२ ॥
 स्तम्भाभावे पुनर्न्यस्येत् कुञ्जपटेऽपि तां सुधीः ।
 सप्त पञ्चाथवा तिस्रो मल्लच्छाये लुप्ताः स्मृताः ॥ १३३ ॥
 कोणेष्वेता इमाभ्योऽन्याः कर्तव्याः प्राञ्जलाः सपाः ।
 छायैः कर्णात् कचित् कार्या मकराननभूषिताः ॥ १३४ ॥

१. 'मतःस' ख. पाठः । २. 'स्यां', ३. 'व' ख. पाठः ।

* 'लुप्ता' इति शिल्पशास्त्रे प्रसिद्धिः ।

तेऽपि विद्याधरोपेताः कचित् सगजतुण्डिकाः ।
सकुम्भिकस्य स्तम्भस्य प्रविभज्योदयं त्रिधा ॥ १३५ ॥

तत्र भागद्वयं कुर्याद् भागानर्थचतुर्थकान् ।
तत्र पादोनभागेन राजितासनकं भवेत् ॥ १३६ ॥

ततः सोल्कलका वेदी साङ्घिभागा विधीयते ।
कृदागारसमांशार्थं कार्योऽत्रासनपट्टकः ॥ १३७ ॥

स स्यादभी(ष्टोऽष्टु)विस्तारो भागोच्च मत्तवारणम् ।
स्वोदयस्य त्रिभागेन तिर्यक् कार्योऽस्य निर्गमः ॥ १३८ ॥

रूपकैः करणायाभिः(?)सुपत्रैरपि शोभितम् ।
वेदिकादिकमप्यस्य रूपपत्राचितं शुभम् ॥ १३९ ॥

आयसीभिः शलाकाभिः कीलकैश्च हृषीकृतम् ।

एतानि पञ्चदशराजनिवेशनानि
पृथ्वीजयप्रभृति यानि निरूपितानि ।
यो लक्षणेन सहितं परिमाणमेषां
जानाति तस्य नृपतिः परितोपमेति ॥ १४०^१_२ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते खमराङ्गसूतधारापरनामि वास्तुशास्त्रे
राजगृहं नाम त्रिंशोऽध्यायः ।

अथ यन्त्रविधानं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ।

भ्राम्यहिनेशशशिमण्डलचक्रश(त्सैऽस्त)-
मेतज्जगत्वितययन्त्रमलक्ष्यमध्यम् ।
भूतानि वीजमखिलान्यपि सम्प्रकल्प्य
यः सन्ततं भ्रमयति स्परजित् स वोऽव्यात् ॥ १ ॥

यन्त्राध्यायमय वूमो यथावत् प्रक्रमागतम् ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां यदेकमिह कारणम् ॥ २ ॥

१. 'ग्रा' ख. पाठः । २. 'क्र' क. पाठः ।

यदृच्छया प्रवृत्तानि भूतानि स्वेन वर्त्मना ।
 नियम्यास्मिन् नयति यत् तद् यन्त्रमिति कीर्तितम् ॥ ३ ॥
 स्वरसेन प्रवृत्तानि भूतानि स्वमनीषया ।
 कुतं यस्माद् यमयति तदा यन्त्रमिति स्मृतम् ॥ ४ ॥
 तस्य वीजं चतुर्था स्यात् शितिरापोऽनलोऽनिलः ।
 आश्रयत्वेन चेतेषां वियदप्युपयुज्यते ॥ ५ ॥
 भिन्नः सूर्तश्च (कै?यै) रुक्षस्ते च सम्बद्ध न जानन्ते ।
 ६ प्रकृत्या पार्थिवैः सूर्त(स्त्रा?ख)यात् + तत्र क्रिया भवेत् ॥ ६ ॥
 पार्थिवत्वादयमतो न कदाचिद् विभिन्नते ।
 द्रव्यत्वादग्रिजत्वं हि यद्यस्य परिकल्प्यते ॥ ७ ॥
 तदा विरोधो नैवास्य पात्रकेनोपपत्तते ।
 गन्धाद् वह्निरिंशाच्च स्थिता पार्थिवता वलात् ॥ ८ ॥
 आत्मैव वीजं सर्वेषां प्रत्येकमपराण्यपि ।
 एवं भेदा भवन्त्येषां भूयांसः सङ्करान्मिथः ॥ ९ ॥
 स्वयंवाहकमेकं स्यात् सङ्कुत्येयं तथापरम् ।
 अन्यदन्तरितं वाहं वाहमन्यत् त्वदूरतः ॥ १० ॥
 स्वयंवाहमिहोल्कृष्टं हीनं स्यादितरत् त्रयम् ।
 तेषु शंसन्ति दूरस्थमलक्ष्यं निकटस्थितम् ॥ ११ ॥
 य(यु?दु)त्पन्नमलक्ष्यं यदेकं वह्नुषु साधकम् ।
 तदन्यदपि शंसन्ति यस्माद् विस्मयकृचृणाम् ॥ १२ ॥
 एका स्वीया गतिश्चित्रे वाहोऽन्या वाहकाश्रिता ।
 अरघद्वाश्रिते कीटे दृश्यते द्रव्यमप्यदः ॥ १३ ॥
 इत्थं गतिद्रव्यवशाद् चिचित्र्यं कल्पयेत् स्वयम् ।
 अलक्षता चिचित्रत्वं यस्माद् यन्त्रेषु शस्यते ॥ १४ ॥

१. 'तै' क. पाठः । २. 'श' क. ग. पाठः । ३. 'य' ख. पाठः । ४. 'वस्त्र-
 आपां च तत्र', ५. 'भवेत्' क. पाठः । ६. , ७. 'वा', ८. त्रौ ख. ग. पाठः ।
 ९. 'क्षं' क. पाठः ।

६ 'प्रकृत्या स्वभावेन पार्थिवो भागः बहुलः' इति, † 'तत्र उदकतेजोवायूना किया
 कार्यं भवेत्' इति च टिप्पणमस्ति ।

अन्यत् स्यादन्तरा(त्रे?पे)र्य द्वितीयं पद्यम् त्विदम् ।
द्वयत्रयादियोगेन चतुर्णामपि योगतः ॥ १५ ॥

अंशांशिभावाद् भूतानां सङ्कृत्यपामतिरित्यते ।
यः सम्यगेतज्जानाति स पुमान् भवति प्रियः ॥ १६ ॥

प्रमदानां नृपाणां च प्रज्ञानां च मतस्य च ।
लाभं ख्यातिं च पूजां च यशो मानं धनानि च ॥ १७ ॥

प्राप्नोति किं किं न पुमान् य इदं वेत्ति तत्त्वतः ।
गृहमेकं विलासानामाश्र्यस्य परं पदम् ॥ १८ ॥

रतेरावासभवनं विस्मयस्यैकमास्पदम् ।
यथावद् देवतादीनां रूपचेष्टादिदर्शनात् ॥ १९ ॥

तास्तुष्यन्त्यथ तत्तुष्टिःपूर्वधर्मः प्रकीर्तिः ।
नृपादितोपादर्थः स्यादर्थं कामः प्रतिष्ठितः ॥ २० ॥

विचैक्यादस्य निष्पत्तिमात्रश्वासमात्रं दुर्लभः ।
पार्थिवं पार्थिवैर्वाजैः पार्थिवं जलजन्मभिः ॥ २१ ॥

तदेव तेजोजनितस्तदेव मैरुदुदृचैः ।
आप्यमाप्यस्तथा वीजरानलैरानिलैरपि ॥ २२ ॥

वहिजैश्च मरुज्जातैः पार्थिवैर्वारुणरपि ।
मारुतं मारुतैराप्यैः पार्थिवैरानलैस्तथा ॥ २३ ॥

वहिजातेऽपि वीजं स्यात् सूतः सोऽपिच वा(न?नि)ले ।
पार्थिवानां भवेद् वीजमाप्यानाप्यपि वाँ(रणो?रुणम्) ॥ २४ ॥

इति वीजानि सर्वेषां कीर्तितान्यविलान्यपि ।
कुड्यंकरणमूत्राणि भारतोलक्षणीदनय् ॥ २५ ॥

लम्बनं लम्बकारे च चक्राणि विविधान्यपि ।
अयस्ताम्रं च तारं च त्रिषु संवित्प्रमद्दने ॥ २६ ॥

काष्टं च चर्मं वस्त्रं च स्फुरीजेषु प्रयुज्यते ।
उर्देकः कर्तरो यष्टिशक्रं आपरकस्तथा ॥ २७ ॥

१. 'ऐः', २. 'नि', ३. 'मारुतोऽह', ४. 'नि' क. पाठः । ५. 'पु'
६. 'भा', ७. 'उर्द्यकः' ख. य. पाठः ।

शृङ्खावली च नाराचः स्ववीजान्यौवरे विदुः ।
 ताप उत्तेजनं स्तोभः क्षोभश्च जलसङ्गजः ॥ २८ ॥
 एवमाद्यग्रिवीजानि पार्थिवस्य प्रचक्षते ।
 धारा च जलभारश्च पयसो भ्रमणं तथा ॥ २९ ॥
 एवमादीनि भूजस्य जलजानि प्रचक्षते ।
 यथोच्छायो यथाधिकर्यं यथा नीरन्त्रतापि च ॥ ३० ॥
 अत्यन्तमृद्धिगामित्वं स्ववीजान्ययसस्तथा ।
 मरुत् स्वभावजो गाहैर्ग्राहकैश्च प्रतीप्सितः ॥ ३१ ॥
 हृत्याद्यैर्वीजनाद्यैश्च गजकर्णादिभिः कृतः ।
 (छाइचा)णितो गालितश्चायं वीजं भवति भूमेवे ॥ ३२ ॥
 काष्ठं (भृकु)त्तिश्च लोहं च जलजे पार्थिवं भवेत् ।
 अन्यदम्भेस्तदप्यस्तु तिर्यगृद्धिमधस्तथा ॥ ३३ ॥
 वीजं स्वकीयं भवति यन्त्रेषु जलजन्मसु ।
 तापाद्यं पूर्वकथितं बहिजं जलजे भवेत् ॥ ३४ ॥
 सङ्घृहीतश्च दत्तश्च पूरितः प्रतिनोदितः ।
 मरुद् वीजत्वमायाति यन्त्रेषु जलजन्मसु ॥ ३५ ॥
 बहिजातेषु मृत्ताम्रलोहरुकमादि तद्ग्रहे ।
 पार्थिवं कथयन्तीह वीजं वीजविचक्षणाः ॥ ३६ ॥
 बहेव्विर्भवेद् वीजमाप आपस्तथा भवेत् ।
 आद्यैर्हृत्यादिभिः प्रोक्तैमरुद् गच्छति वीजताम् ॥ ३७ ॥
 प्रत्येषकं च जनकं प्रेरकं ग्राहकं तथा ।
 सङ्घ्राहकं च भूजातं वीजं स्यादनिलोद्धवैः ॥ ३८ ॥
 प्रेरणं चाभिघातश्च विवर्तो भ्रमणं तथा
 जलजं मारुतोत्थेषु वीजं स्यादिति सम्मतम् ॥ ३९ ॥
 सङ्घृहीतस्य तापाद्यर्यानि पावकजन्मनि ।
 प्रकीर्तितानि तान्येव भवन्ति पवनोद्धवैः ॥ ४० ॥

१. 'दी', २. 'सिंहता', क. पाठः । ३. 'तले', ४. 'इ', ५. 'स्तं',
 ६. 'स्तदपाच ति', ७. 'ना' ख. पाठः । ८. 'हु' क. पाठः ।

प्रेरितः सङ्गृहीतश्च जनितश्च समीरणः ।
 आत्मनो वीजतां गच्छत्येवमन्यत् प्रकल्पयेत् ॥ ४१ ॥
 भूतपेकमिहोद्विक्तमन्यद्वीनं ततोऽधिकम् ।
 अन्यद्वीनतरं चान्यदेवं प्रायैविकलिपतैः ॥ ४२ ॥
 नाना भेदा भवन्त्येषां कस्तान् कात्स्तर्येन बक्ष्यति ।
 निष्क्रिया भूः क्रिया त्वंशे शेषेषु सहजा त्रिषु ॥ ४३ ॥
 अतः प्रायेण सा जेन्या क्षितावेवै प्रयत्नतः ।
 साध्यस्य रूपवशतः सञ्चिवेशो यतो भवेत् ॥ ४४ ॥
 यन्त्राणामाकृतिस्तेन निर्णेतुं नैव शक्यते ।
 यथावद्वीजसंयोगः सौश्चिष्ठ्यं शृङ्खणतापि च ॥ ४५ ॥
 अलक्षता निर्वहणं लघुत्वं शब्दहीनता ।
 शब्दे साध्ये तदाधिक्यमश्चिल्यमगाढता ॥ ४६ ॥
 वहनीषु समस्तासु सौश्चिष्ठ्यं चास्त्रवलद्वति ।
 यथाभीष्टार्थकारित्वं लयतालानुगमिता ॥ ४७ ॥
 इष्टकालेऽर्थदशित्वं पुनः सम्यक्त्वसंवृतिः ।
 अनुलवण्टत्वं तादूष्यं दाढर्ये ममृणता तथा ॥ ४८ ॥
 चिरकालसहत्वं च यन्त्रस्यैते गुणाः स्मृताः ।
 एकं वहनि चलयेद् वहुभिश्चालयतेऽपरम् ॥ ४९ ॥
 सुश्चिष्टत्वमलक्षत्वं यन्त्राणां परमो गुणः ।
 अथ कर्माणि यन्त्राणां विचित्राणि येथाविर्धि ॥ ५० ॥
 नविस्तरान्नसङ्क्षेपात् साम्यतं संप्रचक्षमहे ।
 कस्यचित् सा क्रिया साध्या कालः कस्यापि कस्यचित् ॥ ५१ ॥
 शब्दः कस्यापि चोच्छ्रायो रूपस्पर्शो च कस्यचित् ।
 क्रियास्तु कार्यस्य बशादनन्ताः परिकीर्तिताः ॥ ५२ ॥
 तिर्थगृह्यमधः पृष्ठे पुरतः पार्श्वयोरपि ।
 गमनं सरणं पात् इति भेदाः क्रियोद्भवाः ॥ ५३ ॥

१. 'यो विक' क. पाठः । २. 'जात्या थि' ख. ग. पाठः । ३. 'तत्त्वं'
 ४. 'न' क. पाठः । ५. 'त', ६. 'थिः' ख. ग. पाठः ।

कालो मुहूर्तकाष्टाद्यर्मिनो भेदैरनेकधा ।
 शब्दो विचित्रः सुखदो रतिकुद् भीषणस्तथा ॥ ५४ ॥
 उच्छ्रायस्तु जलस्य स्यात् कविद् भूजेऽपि शस्यते ।
 गीतं नृत्यं च वाद्यं च पद्मो वंश एव च ॥ ५५ ॥
 वीणा च कांस्यतालश्च तृमिला करटापि च ।
 यत्किञ्चिदन्यदप्यत्र वादित्रादि विभाव्यते ॥ ५६ ॥
 समस्तमपि तद् यन्त्राज्जायते कल्पनावशात् ।
 नृत्ये तु नाटकं चोक्त्वास्ताण्डवं लास्यमेव च ॥ ५७ ॥
 राजमार्गश्च देशी च यन्त्रात् सर्वं प्रसिद्ध्यति ।
 तथा जात्यनुग्राथेष्टा विरुद्धा यास्तु जातितः ॥ ५८ ॥
 ताः सर्वा अपि सिद्ध्यन्ति सम्यग्यन्त्रस्य साधनात् ।
 भूचराणां गतिव्योम्नि भूमौ व्योमचरागमः ॥ ५९ ॥
 चेष्टितान्यपि मत्यानां तथा भूमिस्पृशामिव ।
 जायन्ते यन्त्रनिर्माणाद् विविधानीप्तितानि च ॥ ६० ॥
 यथासुरा जिता देवर्यथा निर्मितोऽभ्युधिः ।
 हिरण्यकशिष्युदेत्यो नृसिंहेन हतो यथा ॥ ६१ ॥
 धावनं हस्तयुद्धं च गैजानामगडोऽपि च ।
 नानाप्रका(र?रा) या चेष्टा नानाधारागृहाणि च ॥ ६२ ॥
 दोलाकेल्यो विचित्राश्च तथा रतिगृहाणि च ।
 चित्राँ से(न?ना) च कुञ्चश्च स्वयंवाहकसेवकाः ॥ ६३ ॥
 सभाश्च विविधाकाराः सत्या मायाः प्रकल्पिताः ।
 एवंप्रायाणि चान्यानि यन्त्रात् सिद्ध्यन्ति कल्पनात् ॥ ६४ ॥
 विधाय भूमिकाः पञ्च शब्दां त्वादिभुवि स्थिराः ।
 प्रतिग्रहरमन्यासु सर्पन्ती याति पञ्चमीम् ॥ ६५ ॥
 एवंप्रायाणि चित्राणि सम्यक् सिद्ध्यन्ति यन्त्रतः ।
 कमेण त्रिशेतावत् स्थाले दन्ता भ्रमन्त्यसी ॥ ६६ ॥

१. 'व्य', क. र. 'श' ख. ग. पाठः । ३. 'राजना' ख. पाठः । ४. 'आसने च', ५. 'व्याकृत्वा', ६. 'दा एवं' क. पाठः । ७. 'त्रिशते वर्ती' ख. ग. पाठः ।

तन्मध्ये पुत्रिका क्लृप्ता प्रति नार्दि प्रबोधयेत् ।
 वहेश्च दर्शनं तोये वहिमध्याज्जलोद्दतिः ॥ ६७ ॥

अवस्तुतोऽपि वस्तुत्वं वस्तुतोऽपि तथान्यथा ।
 निःश्वासेन वियद् याति श्वासेनायाति मेदिनीम् ॥ ६८ ॥

क्षीरोदमध्यगा शश्या प्रतीष्टाधः कणाभृता ।
 गोलथ सु(तिःचि)विहितः सूर्यादीनां प्रदक्षिणम् ॥ ६९ ॥

परिभ्राम्यत्यहोरात्रं ग्रहाणां दर्शयन् गतिम् ।
 गजादिरूपे रथिकरूपतां गमितः पुमान् ॥ ७० ॥

भ्रान्त्वा नाडिकया तस्याः पर्यन्ते हन्ति (भोऽयो)जनम् ।
 दीपिकापुत्रिका क्लृप्ता क्षीणं क्षीणं प्रयच्छति ॥ ७१ ॥

दीपे तैलं प्रनृत्यन्ती तालगत्या प्रदक्षिणम् ।
 यावत् प्रदीयते वारि तावत् पिवति सन्ततम् ॥ ७२ ॥

यन्त्रेण कल्पितो इस्ती न तद् गच्छत् प्रतीयते ।
 शुकाद्याः पक्षिणः क्लृप्तास्ताक्ष्यानुगमान्मुहुः ॥ ७३ ॥

जनस्य विस्मयकुतो वृत्यन्ति च पठन्ति च ।
 पुत्रिका वा गजेन्द्रो वा तुसगो मर्कटोऽपि वा ॥ ७४ ॥

वलनैवर्तनैर्वृत्यस्तालेन हरते मनः ।
 येनैव वर्त्मना क्षेत्रं धियते तेन तत्पयः ॥ ७५ ॥

यात्यायाति पुनस्तद्व गर्तात् पुष्करिणीष्वपि ।
 फलके कानि (?) तिष्ठन्ति धावन्त्यनुमतानि च ॥ ७६ ॥

घा(ताँैतं) ददति युध्यन्ते निर्यान्त्यअमनावृतम् ।
 वृत्यन्ति गायन्ति तथा वंशादीन् वादयन्ति च ॥ ७७ ॥

निरुद्धमुक्तस्य वशान्मरुतो यन्त्रमज्जिभिः ।
 याश्रेष्टा दिव्यमानुष्यस्ता एवात्र न केवलम् ॥ ७८ ॥

दुष्करं यद्यदन्यच तत्तद् यन्त्रात् प्रसिध्यति ।
 यन्त्राणां घटना नोक्ता गुण्यर्थं नाज्ञतावशात् ॥ ७९ ॥

१. , २. 'ति' क, पाठः । ३. 'छ' ख, ग, पाठः ४. 'मुख्यन्ती'
 ५. 'नै' क, पाठः ।

तत्र हेतुरयं ज्ञेयो व्यक्ता नैते फलप्रदाः ।
कथितान्यत्र वीजानि यन्त्राणां घटना न यत् ॥ ८० ॥

तस्माद् व्यक्तीकृतेष्वेषु न स्यात् स्वार्थो न कौतुकम् ।
वस्तुतः कथितं सर्वं वीजानामिह कीर्तनात् ॥ ८१ ॥

अभ्यूहं स्वधिया प्राज्ञैर्यन्त्राणां कर्म यद् यथा ।
यन्त्राणि यानि दृष्टानि कीर्तितान्यत्र तान्यपि ॥ ८२ ॥

नन्द्यानि यस्मात् तान्यातो विज्ञेयान्युपदेशतः ।
एतत् स्वबुद्धैर्यैवास्माभिः समग्रमपि कलिपतम् ॥ ८३ ॥

अग्रतश्च पुनर्ब्रूपः कथितं यत् पुरातनैः ।
बीजं चतुर्विधमिह प्रबद्धित यन्त्रे-
ष्वम्भोग्निभूमिपवनैर्निहितैर्यथावत् ।
प्रत्येकतो वहुविधं हि विभागतः स्या-
न्मिश्रैर्गुणैः पुनरिदं गणनामपास्येत् ॥ ८४ ॥

किमेतस्मादन्यद् भवति भुवने चित्रमपरं
किमन्यद् वा तुष्ट्यं भवति किमु वा कौतुककरम् ।
किमन्यद् वा कीर्तेभवनमपरं कामसदनं
किमस्मात् पुण्यं वा किमिव च परीतापशमनम् ॥ ८५ ॥

एतेऽत्यर्थं प्रीतिदा वीजयोगाः संजायन्ते योजिताः सूत्रधारैः ।
भ्रान्त्या नान्यथित्रैकृद् दारुकलूपं चक्रं दोलाद्यं पुनः पञ्चमं तत् ॥ ८६ ॥

पारम्पर्यं कौशलं सोपदेशं शास्त्राभ्यासो वास्तुकर्मोद्यमो धीः ।
सामग्रीयं निर्वला यस्य सोऽस्मिंश्चित्राण्येवं वेत्ति यन्त्राणि कर्तुम् ॥ ८७ ॥

चित्रैर्युक्तं ये गुणैः पञ्चरूपं जानन्त्येनं यन्त्रशास्त्राधिकारम् ।
ये वा कृत्स्नं योजयन्तेऽत्र सम्यक् तेषां कीर्तिर्थां भुवं चावृणोति ॥ ८८ ॥

अद्यगुलेन मितमद्यगुलपादेनोच्छ्रितं द्विपुटकं तनुवृत्तम् ।
संविधेयमृजु मध्यगरन्त्रं श्लिष्टसन्धिं ददताम्रमयं तत् ॥ ८९ ॥

१. 'तु' क. ख. पाठः । २. 'द्वितीयस्मा' । ३. 'ह' । ४. 'क' क. पाठः ।

दारवेषु विहगेषु तदन्तः क्षिप्तमुद्रतसमीरवशेन ।
 आतनोति विचलन्मृदुशब्दं शृण्वतां भवति चित्रकरं च ॥ ९० ॥
 सुश्लिष्टखेण्डद्वितयेन कुत्वा सरन्ध्रमन्तर्मुरजानुकारम् ।
 ग्रस्तं तथा कुण्डलयोर्युगेन मध्ये पुंटं तस्य मृदु प्रदेयम् ॥ ९१ ॥
 पूर्वोक्तयन्त्रे विधिनोदरेऽस्य क्षिप्तय शश्यातलसंस्थमेतत् ।
 ध्वनिं ततः सञ्चलनादनङ्कीडारसोल्लासकरं करोति ॥ ९२ ॥

अस्मिन् शश्यातलविनिहिते मुच्छति व्यक्तरागं
 चित्राव् शब्दान् मृगशिशुदशां या(न्ति?ति) भीत्येव मानः ।

किञ्चेतासां दयितमभितो निर्भरप्रेमभाजां
 प्रौढिं गच्छन्त्यधिकमधिकं मन्मथकीडितानि ॥ ९३ ॥

पटहमुरजे वेणः शङ्खो विपञ्चयथ काहला
 ढमहटिविले वाद्यातोद्यान्यमून्यखिलान्यपि ।

मधुरपथिकं याचित्रं च ध्वनिं विदधात्यलं
 तदिह विधिना रुद्दोन्मुक्तानिलस्य विजृम्भितम् ॥ ९४ ॥

लघुदारुमयं महाविहङ्गं हृदसुश्लिष्टतनुं विधाय तस्य ।
 उदरे रसयन्त्रमादधीत ज्वलनाधारमधोऽस्य चा(ति?ग्नि)पूर्णम् ॥

तत्रारुदः पूरुषस्तस्य पक्षद्वन्द्वोचालप्रोज्ज्ञतेनानिलेन ।
 सुप्तस्यान्तः पारदस्यास्य शक्त्या चित्रं कुर्वन्नम्बरे याति दूरम् ॥

इत्थमेव सुरमन्दिरतुलयं सञ्चलत्यलघु दारुविमानम् ।
 आदधीत विधिना चतुरोऽन्तस्तस्य पारदमृतान् हृदकुम्भान् ॥ ९७ ॥

अयःकपालाहितमन्दवहिपतमत्कुम्भमुवा गुणेन ।
 व्योम्नो इगित्याभरणत्वमेति सन्तमगर्जद्रसराजशक्त्या ॥ ९८ ॥

द्वृत्तसंनिधितमथायसयन्त्रं तद् विधाय रसपूरितमन्तः ।
 उच्चदेशविनिश्चापिततम् सिंहनादमुरजं विदधाति ॥ ९९ ॥

१. 'प्र', २. 'खेडहि' ख, ग, पाठः । ३. 'स्फु', ४. 'भे' क, पाठः ।
 ५. 'विव' ख, पाठः । ६. 'म' ख, ग, पाठः ।

स कोऽप्येस्य स्फारः स्फुरति नरसिंहस्य महिमा
 पुरस्ताद् यस्यैता मदजलमुच्चोऽपि द्विपथयाः ।
 मुहुः श्रुत्वा श्रुत्वा निनदमपि गम्भीरविषयं
 पलायन्ते भीतास्त्वरितमवधूयाइकुशमपि ॥ १०० ॥
 हग्नीवातलहस्तप्रकौपुवाहृहस्तशाखादि ।
 सच्छिद्रं वपुरस्थिलं तत्सन्धिषु खण्डशोऽघटयेत् ॥ १०१ ॥
 क्षिण्ठं कीलकविधिना दारुमयं सृष्टचर्मणा गुप्तम् ।
 पुंसोऽयवा युवत्या रूपं कृत्वातिरमणीयम् ॥ १०२ ॥
 रन्ध्रगतैः प्रत्यक्षं विधिना नाराचसङ्गतैः सूत्रैः ।
 ग्रीवाचलनप्रसरणविकुञ्चनादीनि विदधाति ॥ १०३ ॥
 करग्रहणताम्बूलप्रदानजलसेचनप्र(माणा?णामा)दि४ ।
 आदर्शप्रतिलोकनवीणावाद्यादि च करोति ॥ १०४ ॥
 एवमन्यदपि चेदशमेतत् कर्म विस्मयविधायि विधत्ते ।
 जृम्भितेन विधिना निजबुद्धेः कुष्टमुक्तमुण्डकवशेन ॥ १०५ ॥
 पुंसो दारुजमूर्ध्वं रूपं कृत्वा निकेतनद्वारि ।
 तत्करयोजितदण्डं निरुणद्वि प्रविशतां वर्तम् ॥ १०६ ॥
 स्वडगहस्तमध्य मुद्ररहस्तं कुन्तहस्तमथवा यदि तत् स्पात् ।
 तच्चिहन्ति विशतो निशि चौरान् द्वारि संवृतमुखं प्रसभेन ॥ १०७ ॥
 ये चापाद्या ये५ शतध्न्यादयोऽस्मिन्नुपग्रीवाद्याथ दुर्गस्य गुप्त्यै ।
 ये कीडाद्याः क्रीडनार्थं च राङ्गां सर्वेऽपि स्युर्योगतस्ते गुणनाम् ॥
 इदानीं प्रक्रमायातं वारियन्त्रं प्रचक्षमहे ।
 क्रीडार्थं कार्यसिद्धैर्ये च चतुर्थी तद्रत्ति विदुः ॥ १०९ ॥
 निघ्नं भवति द्रोणीदेशादृच्छस्थिताजलम् ।
 यत्र तत् पार्तयन्त्रं स्पात् यौटिकादिप्रयोजनम् ॥ ११० ॥

१. 'प' क. पाठः । २. 'वाहुवा' ख. ग. पाठः । ३. 'शोऽप्य घ',
 ४. 'नि', ५. 'घ', ६. 'मूर्धे' क. पाठः । ७. 'ये च शक्त्याद',
 ८. 'रुणाम्', ९. 'व्या' ख. पाठः । १०. 'द' क. पाठः । ११. 'चा'
 ख. ग. पाठः ।

उच्छ्रायसमपाताख्यं यत्रोर्ध्वा नाडिका पथः ।
जलाधारगुणान्मुञ्चेदधस्तात् समनाडि(काकम्) ॥ १११ ॥

यत्रं पातसमुच्छ्रायं पतित्वोच्छ्रायतो जलम् ।
तिर्थं गत्वा प्रयात्यूर्ध्वं सच्छिद्रस्तम्भयोगतः ॥ ११२ ॥

पतित्वोच्छ्रायतस्तोयं तिर्थं गूर्ध्वोर्ध्वमेत्यथ ।
सच्छिद्रस्तम्भयोगेन तत् स्यात् पातसमोच्छ्रयम् ॥ ११३ ॥

वाप्यां वापि च कूपे विधानतो दीर्घिकादिका विहिता ।
यत्रोर्ध्वमम्बु गमयति तदिहोच्छ्रयसंज्ञितं कथितम् ॥ ११४ ॥

दारुजमिभस्य रूपं यत् सलिलं पात्रसंस्थितं पिवति ।
तन्माहात्म्यं निगदितमेतस्योच्छ्रायतुल्यस्य ॥ ११५ ॥

सलिलं सुरज्जदेशानीतं निष्ठेन वर्तमना दूरे ।
अद्भुतमम्भस्थानं तदिह समोच्छ्रायतः कुरुते ॥ ११६ ॥

धारागृहमेकं स्यात् प्रवर्षणाख्यं ततो द्वितीयं च ।
प्राणालं जलेमग्रं नन्द्यावर्तं तथोन्यदपि ॥ ११७ ॥

माकृतजनार्थमेतत्त्र विधेयं योग्यमेतदवनिभुजाम् ।
मङ्गल्यानां सदनं दिव्यमिदं तुष्टिषुष्टिकरम् ॥ ११८ ॥

सलिलाश्रयस्य सविधे कस्याप्याश्रित्य शोभनं देशम् ।
यन्त्रोत्सेधाद् द्विगुणा त्रिगुणा वा नाडिका कार्या ॥ ११९ ॥

जलनिर्वाहसहासावन्तर्मसुणा वहित्वा नीरन्ध्रा ।
निर्वृद्धाम्भसि तस्यां शुभे मुहूर्ते शृहं कार्यम् ॥ १२० ॥

सर्वाभिरोपधीभिर्युक्तं सहिरण्यपूर्णकुम्भैश्च ।
सुविचित्रगन्धमाल्यं विनादितं ब्रह्मघोषेण ॥ १२१ ॥

रत्नोद्भवैर्विचित्रैः स्तम्भैर्युक्तं हिरण्यघटितैर्वा ।
रजतोद्भवैः कदाचित् सुरदारुसमुद्भवैरथवा ॥ १२२ ॥

श्रीखण्डोत्थैरथवा सालकमुख्यप्रशस्तवृक्षोत्थैः ।
शतसङ्ख्यैर्द्वात्रिशत्सङ्ख्यैर्यदि वापि पोडशभिः ॥ १२३ ॥

१. 'न्त्र' ख. ग. पाठः । २. 'तं', ३. 'वं', ४. 'लनिमग्रं' क. पाठः ।
५. 'द्वात्रिश्य' ख. ग. पाठः । ६. 'गूं' क. पाठः ।

अथवा चतुस्समन्वितविश्वतिसद्भ्यैदिनेशसद्भ्यैवा ।
 भूषितमतिरमणीयैश्वतुर्भिरपि वा विधातव्यम् ॥ १२४ ॥

प्राग्नीवैरतिचित्रैः शालैर्जालैविभूषितं विविष्यैः ।
 वेदीभिः परिकरितं कंपोतपालीभिरभिरामम् ॥ १२५ ॥

रमणीयसालभज्जिकमनेकविधयन्त्रशकुनिकृतशोभम् ।
 मिथुनैश्च वानराणां जम्भकनिवैश्च नैकविष्यैः ॥ १२६ ॥

विद्याधरसिद्धभुजङ्गकिन्नरैश्चारणैश्च रमणीयम् ।
 नृत्यज्ञिः परम(गीयु)णैः शिखण्डभिर्मण्डितोदेशम् ॥ १२७ ॥

कल्पतरुभिर्विचित्रैश्चित्रलतावल्लिगुलमसंछन्नम् ।
 परपृष्ठपदालीमरालमालामनोहारि ॥ १२८ ॥

प्रवहत्सकलस्तोतः सुशिष्टनिविष्टनाडिकं मध्ये ।
 सच्छिद्रनाडिकयुतं नानाविधरूपरमणीयम् ॥ १२९ ॥

सुशिष्टनाडिकाये स्तम्भतुलाभित्तिसंश्रिते परितः ।
 सम्यक् कृत्वा हृदतरविलेपनं वज्रलेपायैः ॥ १३० ॥

लाक्षासर्जरसदृपन्मेषविषाणोत्थचूर्णसंमिश्रम् ।
 अतसीकरञ्जतैलप्रविगाहो वज्रलेपः स्पात् ॥ १३१ ॥

हृदसन्धिवन्धहेतोः स तत्र देयो द्विशः कदाचिद् वा ।
 शणवल्कश्लेष्मातकसिक्षकतैलैः प्रलेपश्च ॥ १३२ ॥

उच्छ्रूययन्वैष्णवतद् भ्रान्तजलेनाथ तदभितः कृत्वा ।
 चित्रानुपातयुक्तं प्रदर्शयेन्नृपतये स्थपतिः ॥ १३३ ॥

कार्याण्यस्मिन् करिणां मिथुनान्यभितोऽस्तुकेलियुक्तानि ।
 अन्योन्यपुष्करोऽर्ज्जितसीकरभयपिहितनयनानि ॥ १३४ ॥

वर्षानुकृतं चास्मिन् प्रीतिमति प्रतिमतङ्गजो वीक्ष्य ।
 हृक्षटमेहनहस्तैर्मदमिव मुञ्चत् जलं कार्यः ॥ १३५ ॥

१. 'मरालय' ख. ग. पाठः । २. 'धम्' क. पाठः । ३. 'गृहृदतरतस्यरसपि' ख, पाठः । ४. 'हकः' क. ग. पाठः । ५. 'यतदुच्छ्रूयसतत्रयनिष्ठ' (?) क. पाठः । ६. 'चित्रू' क. 'हि' ख. ग. पाठः ।

स्तनयोर्युगेन सृजती जलधारे तत्र कापि कार्या खी ।
 आनन्दाधुलवानिव सलिलकणान् पक्षमभिः काचित् ॥ १३६ ॥

नाभिहृदनदिकामिव विनिर्गतां कापि विभ्रती धाराम् ।
 काप्यङ्गुलीनखांशुभिरिव योषित् सिञ्चती कार्या ॥ १३७ ॥

एवम्प्रायांश्चित्रान् स्वभावचेष्टान् वहूंश्च रमणीयान् ।
 शोभान् विधाय कुर्यादाश्र्य नरपतेः स्थपतिः ॥ १३८ ॥

मध्ये तस्य विधेयं सिंहासनमपलहेममणिघटितम् ।
 तत्रासीदेन्नरपतिरवनिपतिः श्रीपतिदेवः ॥ १३९ ॥

स्त्रायात् कदाचिदस्मिन् मङ्गलगीतैर्विवर्धितानन्दः ।
 वादित्रनाव्यनिपुणैर्निषेव्यमाणः सुरेन्द्र इव ॥ १४० ॥

य एतस्मिन् गाढग्लपितघनघर्मव्यतिकरे
 शुचौ धाराधात्रि स्फुटसलिलधारे नरपतिः ।
 सुखेनास्ते पश्यन् विविधजलंशिल्पानि स भवे-
 न्न मर्त्यः किन्त्वेष क्षितिकृतनिवासः सुरपतिः ॥ १४१ ॥

जलदकुलाष्टकयुक्ते पूर्ववदन्यद् यत्तुं समारचयेत् ।
 वर्षद्वारानिकरैः प्रवर्षणारूपां तदाभोति ॥ १४२ ॥

प्रतिकुलमस्मिन् कार्या दिव्यालङ्कारथारिणः पुरुषाः ।
 विधिना त्रयः सुरूपाश्वत्वारः सप्त वा सुहृदाः ॥ १४३ ॥

यन्त्रेण समोच्छ्रायेण तांश्चतुर्थेन वा ततः पुरुषान् ।
 कृत्वा सवक्रनालानम्भोभिः पूर्येद् विमलैः ॥ १४४ ॥

सलिलप्रवेशरन्धाण्यसिलानि पिधाय तत्र पुरुषाणाम् ।
 अन्नानि वारिमोक्षाण्यसिलान्यथ मोक्षयेत् तेषाम् ॥ १४५ ॥

सलिलं सवक्रनालं द्वारप्रतिरोधमोचनैः पुरुषाः ।
 मुञ्चन्ति स्वेच्छमपी विचित्रपातेन चित्रकरम् ॥ १४६ ॥

इत्थमिमान् वारिधरान् साम(स्याद्युप्य)द् व्यन्तरेण वा सलिलम् ।
 व्यन्तरतो वा स्वेच्छं प्रवर्षयेदतिमहाचित्रम् ॥ १४७ ॥

१. 'यश्चित्रात्', २. 'ष्टा वहूंश्च', ३. 'त्', ४. 'न' ५. 'पौधा' क. पाठः ।

इदं नानाकारं कुलभवनमाद्यं रतिपते-
 निवासश्चित्राणामनुकरणमेकं जलमुचाम् ।
 पयःपातैर्ग्रीष्मे रविकरपरीतापशमनं
 न केषामत्यर्थं भवति नयनानन्दजननम् ॥ १४८ ॥
 एकेनाथं चतुर्भिः स्तम्भैरष्टभिरस्थार्कसहस्र्यैर्वा ।
 पोडशभिर्वा कुर्यान्मनोहरं शृहमिह द्वितलम् ॥ १४९ ॥
 भद्रैर्युतं चतुर्भिश्चतुरश्च सर्वभित्तिसंयुक्तम् ।
 ईलीतोरणयुक्तं कर्तव्यं पुष्पकाकारम् ॥ १५० ॥
 तस्योपरि मध्यगता प्राङ्गणवापी हृषा विधातव्या ।
 शतपत्रविहितभूषा तन्मध्ये कर्णिका कार्या ॥ १५१ ॥
 तत्कोणेषु चतुर्ष्वपि रमणीया दारुदारिकाः कार्याः ।
 मध्याम्बुजनिहितहृषः सालङ्काराः सशृङ्गाराः ॥ १५२ ॥
 पूर्वोक्तयन्त्रयोगात् पद्मासीने वसुन्धराधिपतौ ।
 भृङ्गारामलबारिभिरद्वन्द्वार्पाणीं भ्रियाच्च ततः ॥ १५३ ॥
 तामिति भृत्वा वापीं तत्सलिलं तदनुपद्गर्भगतम् ।
 छायस्तु गन्धरोत्तेष्वति गोहति(?)सर्वतो नियतम् ॥ १५४ ॥
 मुखपद्मसमुत्कीर्णं रूपैश्चित्रैर्मनोरमैरस्तिलैः ।
 अङ्गैर्वारि विमुञ्चति नासास्यश्रवणनेत्राद्यैः ॥ १५५ ॥
 प्रणालालयं धाराभवनमिदमत्यद्गुततरं
 स्थितिं धत्ते यस्य क्षितिपतिलकस्याङ्गणभुवि ।
 करोत्येतद् वेत्यं स्थपतिरपि बुद्ध्या चतुरया
 जगल्येतौ द्वावप्यधिकमहनीयौ कृतथियाम् ॥ १५६ ॥
 चतुरश्रातिगमीरा वापी कार्या मनोरमा सुहृष्टा ।
 गर्भगतं शृहमस्याः कर्तव्यं लिप्ससन्धि ततः ॥ १५७ ॥
 विहितप्रवेशनिर्गति सुरङ्गयाधो निवेशितद्वारम् ।
 विदधीत चारुरूपैः प्रवर्षकैर्व्यासमुपरिष्टात् ॥ १५८ ॥

चित्राध्यायोदितवर्त्मना ततोऽलङ्कृतं च चित्रेण ।
 तस्य विधेयं मध्यं सलिलाधिपवाससङ्काशम् ॥ १५९ ॥

ऊर्ध्वविनिर्गमिताद्वैर्नीलैस्तत्पट्टकन्दकोद्भूतैः ।
 सच्छिद्रकण्ठिकागतदिनकरनिर्धितोद्योतम् ॥ १६० ॥

आपुरयेत् ततोऽनु च पाताम्बुभिरमलकमलपर्यन्तम् ।
 विधिनामुनैव सम्यक् प्रविधाय परोरमं भवनम् ॥ १६१ ॥

नानारूपकथुक्त्या (उ॒व्यु)परचिततमङ्गतोरणद्वारम् ।
 शालाभिरायताभिश्चतस्त्वपि दिक्षु कृतशोभम् ॥ १६२ ॥

कृत्रियशक्तरीमकरीपक्षिभिरपि चाम्बुसम्भवैर्युक्ताम् ।
 कुर्यादङ्घोजवर्ती वायीमाहार्ययोगेन ॥ १६३ ॥

सायन्तमुख्यपुरुषा राजाङ्गालव्यसंश्रयास्तत्र ।
 परराष्ट्रागतदूतास्तिष्ठयुनिहितमिह निभृताः ॥ १६४ ॥

अथ स यथाविधि सलिलक्रीडां पूर्वोक्तमार्गरूपाणाम् ।
 दृष्टा मुदितः कुर्यात् पर्यङ्कारोहणं नृपतिः ॥ १६५ ॥

तत्र स्थितस्य नृपतेः परिवारितस्य
 वाराङ्गनाभिरभितो जलमयधान्नि ।
 पातालसङ्गनि यथा भुजगेश्वरस्य
 निसीमसम्भृतरतिर्भवति प्रमोदः ॥ १६६ ॥

पूर्वोक्तवापिकायां मध्ये स्तम्भश्चतुभिरुपरचितम् ।
 मुक्ताप्रवालयुक्तं पुष्पकमथ कारयेण्टम् ॥ १६७ ॥

वापीं परितः पुष्पकमापूर्य सुनिर्गमाभिरथ सुदृढम् ।
 गर्भस्वस्तिकभित्तिभिरुपहितशोभं समन्ततः कुर्यात् ॥ १६८ ॥

पूर्वोक्तवारियोगात् पूर्णायाकर्णतो विधायैताम् ।
 जलकेलिषु सोत्कण्ठो महीपतिः पुष्पकं यायात् ॥ १६९ ॥

कुर्वीत नर्मसचिवैर्विलासिनीभिश्च सार्धमवनिपतिः ।
 तेज्जित्यन्तरवर्ती निमज्जनोन्मज्जनैः क्रीडाम् ॥ १७० ॥

१. 'ई' ग. पाठः । २. 'अ भिस्य' क. पाठः ।

एकत्र मग्नेरपत्र दृष्टरन्यत्र हत्वा सलिलेन नष्टः ।
 क्रीडत्यलं केलिकरैः सहायैर्तुपः सुखं मज्जनपुष्करिण्याम् ॥१७१॥

वापीतलस्थितमय त्रपयावनम्-
 माच्छादितस्तनभरं करपल्लवेन ।
 गाढावसक्तवसनं जलरोधमुक्ता-
 वालोकते प्रणयिनीजनमत्र धन्यः ॥ १७२ ॥

रथदोलादिविधानं दारवमभिदध्महे वर्यं सम्यक् ।
 यन्त्रभ्रमणकर्म प्रकीर्तिं पञ्चमं यत् तत् ॥ १७३ ॥

तत्र वसन्तः प्रथमो मदननिवासो वसन्ततिलकश्च ।
 त्रिभ्रमक्षिपुराख्यः पञ्चते दोलकाः कथिताः ॥ १७४ ॥

निखनेचतुरः स्तम्भान् समैकमूत्रोपगान् कङ्गन् सुद्दान् ।
 सहशान्तरान् धरित्रीवशतः सुश्लिक्षणैष्टपीडगतान् ॥ १७५ ॥

प्रासादस्योक्तदिशि प्रविदध्याद् विरचिताएकरदैर्घ्यम् ।
 भूमिगृहं रमणीयं तदर्थतो विहितगाम्भीर्यम् ॥ १७६ ॥

तद्भूतले स्तम्भो लोहमयाधारसंस्थितः कार्यः ।
 भ्रमसहितः पीडयुतो ग्रस्तश्चादकतुलाभिः ॥ १७७ ॥

संस्थाप्योपरि पीडस्य कुम्भिकामतिद्वां विभक्तां च ।
 धनुरुच्छैस्ततोऽमूर्मषभिरावेष्येद् भैः ॥ १७८ ॥

स्वेच्छमय भूमिकोच्छ्रयमस्योर्ध्वं कल्पयेन्नितान्तमृजुम् ।
 निदधीत वेष्टनोर्ध्वं पट्टयुतं स्तम्भशीर्षं च ॥ १७९ ॥

हीरग्रह(ण?)पर्यन्तं मैदला गजशीर्षिका विधातव्या ।
 सुहृदा प्रयत्नरैचिता मनोभिरामा यथाशोभम् ॥ १८० ॥

पट्टस्योपरि कार्या चतुष्किका क्षेत्रमानतोऽभीष्टात् ।
 तस्यामुपरि विधेयस्तलवन्धो दृढतरन्यासः ॥ १८१ ॥

स्तम्भैर्द्वादशभिरंथ क्षेत्रे युक्त्या समुच्छैर्भव्यैः ।
 रूपवतीकोणस्थितिरधिका भूः प्रथमिका कार्या ॥ १८२ ॥

१. 'य मुष्टिभिः' क. पाठः । २. 'स', ३. 'चरिता', ४. 'यि' क. पाठः ।

५. 'तद्भूमि' ख. ग. पाठः ।

मध्ये भ्रमश्च तस्या गर्भस्तम्भप्रतिष्ठितः कार्यः ।

क्षेत्रप्रमाणवशतस्तां पश्चाच्छादयेत् पद्मः ॥ १८३ ॥

रथिकाशिखाप्रकेषु च फलकां(म?व)रणस्य तददुपरिष्टान् ।

भ्रमचक्राणि न्यस्येन्मध्ये स्तम्भे च पञ्चैव ॥ १८४ ॥

अत उपरि यथाशोभं हि भूमिका पुष्पकाकृतिः कार्या ।

मध्यस्तम्भाधारा कृतकलशविभूषणा शिरसि ॥ १८५ ॥

स्तम्भेऽव?ध)स्ताद् भ्रमिते भूशं भ्रमत्यर्थभूमिका तत्र ।

रथिकाभ्रमरक्युक्ता परस्परं चक्रयन्त्रेण ॥ १८६ ॥

वसन्तरथिकाभ्रमे समविरुद्धवाराङ्गना-

परिभ्रमणसम्भृताभ्यर्थिकविभ्रमं भूयतिः ।

करोति नयनोत्स(वस्त्रिविं त्रि)दशथाञ्जि यत्कीर्तनं

वसन्तसमये भ्रमत्यमलकीर्तिधार्मिव सः ॥ १८७ ॥

आरोप्य स्थिसमेकं स्तम्भं भूमीगृहादिगदितमंथ ।

हस्तचतुष्कोच्छाया कार्योपरि भूमिका चास्य ॥ १८८ ॥

मध्ये भ्रमरक्युक्तं शेषं पूर्ववदिहाचरेदजिलम् ।

पुष्पकमपि च स्तम्भे शिथिलं कलशोच्छिर्वान् कुर्यात् ॥ १८९ ॥

तस्योपरि च ग्रीवा चतुरासनसंयुता विश्वातव्या ।

वण्टास्तम्भौ कार्या स्तम्भेन महावली तत्र ॥ १९० ॥

एवं पुष्पकभूमिकान्तरतलस्थायी निगृहो जनो

यावद् भ्रामकयन्त्रचक्रनिकरं सम्यक् क्रमाचालयत् ।

तावत् ता रथिकासना मृगदशस्तत्र स्थिताः पुष्पके

कामावासकुतूहलार्पितदशो भ्राम्यन्ति सर्वा अपि ॥ १९१ ॥

अथ कोणगतान् स्तम्भांश्चतुरो विनिवेशयेद् क्रज्जन् सुहृदान् ।

सुशिर्षिष्टपीठसंस्थान् समान्तरान् मेदिनीवशतः ॥ १९२ ॥

तेषामूपरि (लतातिळा)न्तरसंयुक्ता भूमिका विश्वातव्या ।

रथिकास्तत्र चतस्रो जायन्ते पूर्ववद् दिक्षस्थाः ॥ १९३ ॥

१. 'म्भः', २. 'कां तर' क. पाठः । ३. 'मय च' ग. पाठः । ४. 'क्षशणपी' क. पाठः । ५. 'पूर्वयुक्ताभिः ।' क. 'वद्दिक्षस्थाः' ग. पाठः ।

तदुपरि तथार्थभूमिः कार्या सुश्लिष्टदारुसन्धाना ।

मध्यभ्रमरकयुक्ता सरूपका मत्तवारणयुता च ॥ १९४ ॥

६ नानाविधकर्मवती वसन्ततो वाशरेखा स्यात् ।

अन्योन्ययन्त्रपरिघट्टनदोल्यमान-

निशेषचकरथिकाभ्रमणाभिरामम् ।

हृष्टा वसन्ततिलकं सुरमन्दिराणां

भूषायमाणमुपयाति न विस्म(यत्वं?यं कः)॥ १९५ ॥

प्रविधाय रङ्गभूमिं प्रथमां शास्त्रान्तराधरस्यार्थे(?) ।

चतुरथा रूपवती सचतुर्भद्रा विधेया भूः ॥ १९६ ॥

प्रतिकोणमाग(त?ता)स्या भद्रेषु भवन्ति संयता भ्रमराः ।

अत उपरिष्टाद् भूम्या भ्रमराधाएसनाः कार्याः ॥ १९७ ॥

रेखाः शुद्धाः कार्या विहरन्तश्चित्रिताश्चान्याः ।

पीठेषु मध्य(ग?सं)स्यासंततोऽपरा भूमिकाः कार्याः ॥ १९८ ॥

पीठस्य मध्यसंस्थैरन्योन्यारालियोजितश्चकः ।

सर्वे वेगाद् भ्राम्यन्ति सान्त(नौ?रा) विभ्रमे भ्रमराः ॥ १९९ ॥

दोलासनो विहितवारवर्धु(कृ?भू)ताति-

चित्रण यस्त्रिदशधामसु विभ्रमेण ।

पृथ्वीपरिष्टुदमुपैति समुद्धसन्ती

कीर्तिंने माति शुबनत्रितयेऽपि तस्य ॥ २०० ॥

चतुरथमथ क्षेत्रं कृत्वांशैर्भाजितं ततोऽष्टाभिः ।

कोणः शैर्षस्तस्मिश्चतुरथं कल्पयेद् भद्रम् ॥ २०१ ॥

तद्दिगुणमूर्ध्वंमतस्य भूमिकाभागसङ्कलयां कार्यम् ।

तत्रायंशचतुर्ष्केण भूमिका स्यात् समुच्छयतः ॥ २०२ ॥

तत्राष्ट्रपद्चतुर्भागवर्जिता भूमिका उपर्युपरि ।

क्रमशो भवन्त्यथैवं ताः स्युस्तिंस्त्रोऽर्थसंयुक्ताः ॥ २०३ ॥

१. 'रिष्व भू' क. पाठः । २. 'सातनावितमेभ्रम(?)' ख. पाठः । ३. 'ना-
विभ्रमे भ्रम' ग. पाठः । ४. 'धू+तानि चि' क. पाठः ।

६ इह किविदर्थं मातृकासु गलितमिव भाति ।

शेषांशोच्छ्रवयुक्ता घण्टा चतुरश्रकायता कार्या ।
 त्रिचतुर्भूम्यौ कार्ये सपटचतुर्भागविस्तारे ॥ २०४ ॥

रज्जः स्यादावभुवि द्वितीयभुवि कोणगास्तथा रथिकाः ।
 स्युभद्राकृतियुक्ता दोला अपि तत्र रमणीयाः ॥ २०५ ॥

रथिकास्तुतीयभूमौ कार्या भद्रेषु चातिरमणीयाः ।
 कोणावथासनान्यर्थवास्तुकेऽपि भ्रमः कार्यः ॥ २०६ ॥

दोलारथिके चतुरासने भ्रमोऽष्टासनो भवेत् तत्र ।
 आसनमिह तत् कथितं युवतेः स्थानं यदेकं स्यात् ॥ २०७ ॥

निखिलान्यपि भ्रमणसंमुखं तानि विभ्रति भ्रमणम्(?) ।
 यत्रासनानि स इह भ्रम इत्युक्तोऽपराधिका(?) ॥ २०८ ॥

यष्टेरुद्धर्वमधस्ताद् भ्रमस्य चक्रं (नि)योजयेदेकम् ।
 लघुचक्राणि च तद्वन्नियोजयेदासनेष्वत्र ॥ २०९ ॥

लघुचक्रारकवृत्ते संलग्नाः कीलका दृढाः कार्याः ।
 तुल्यान्तराः समस्ताः प्रलघु(क)चक्रारवृन्तगताः ॥ २१० ॥

रथिकाशिखाग्रन्तकं भ्रमचक्रारक(वि�?)नियोजितं कार्यम् ।
 यष्टिचतुर्ष्टयमस्मिस्तिर्यक् चक्रद्वयोपेतम् ॥ २११ ॥

ऊर्ध्वं द्वितीयभूमेस्तुतीयभूमेरथान्तरे कुर्यात् ।
 नियतं रथिकायष्टिभ्रैमसंलग्नानि यन्त्राणि ॥ २१२ ॥

आसनाधारयष्टीनां रथिकाचक्रयोजितान् ।
 अधः समान्तरान् कुर्याच्चतुरः परिवर्तकान् ॥ २१३ ॥

त(द्व)द् द्वितीयभूमीदोलागर्भे समान्तरे यष्टी ।
 लघु तथैकचक्रे याम्योत्तरचक्रयोन्यस्येत् ॥ २१४ ॥

तद्वदधो भूकोणगरथिकाचूडोग्रचक्रसंसक्ताः ।
 यष्टीस्ततश्चतस्रो द्विचक्रका इतरचक्रयोन्यस्येत् ॥ २१५ ॥

प्रान्तचक्रद्वये कोणरथिकाचक्रयोजिता ।
 दोलागर्भगता यष्टिस्तिर्यक् कार्यापरापरा ॥ २१६ ॥

१. 'यु' ग. पाठः । २. 'चक्रभ्रमरच' ख. पाठः । ३. 'क्रम' ग. पाठः ।

४. 'म' ख. ग. पाठः । ५. 'ला' ग. पाठः ।

पूर्वे भद्रे द्वारं कुर्यात् सोपानराजितमधस्तात् ।
 गर्भात् पश्चिमभागे निवेशयेद् देवतादोलाम् ॥ २१७ ॥
 अन्योन्यं चक्रभ्रममिन्डामुक्ति विधानतः सम्यक् ।
 ज्ञात्वा प्रयोजनीयं शीघ्रवहं मन्दवहनं च ॥ २१८ ॥
 एष समासेन यथा भ्रममार्गः कीर्तिः स्फुटोऽस्माभिः ।
 अन्योद्यपि कर्तव्यः सम्यग् भ्रमहेतवे तद्वत् ॥ २१९ ॥
 स्तम्भादिद्रव्याणां विन्यासैः कल्पितं हृष्टः शुद्धणैः ।
 सुशिष्टसन्धिवन्वं द्वृतं तथा दीर्घमुख्यधरैः ॥ २२० ॥
 परिवारितमथ तिलकैः समन्ततः सिंहकर्णसंयुक्तम् ।
 त्रिपुरं सम्यक् कुर्याद् विचित्ररूपं (स्व)कैर्थित्रैः ॥ २२१ ॥
 बुद्ध्या कल्पैः पूर्वयन्त्रैश्च युक्तं यन्त्राध्यायं वेत्ति यः सम्यगेतम् ।
 प्राप्नोत्यर्थान् वाच्छितान् कीर्तियुक्तान् स क्षमापालैरन्वहं पूर्व्यते च ॥
 एतद् द्वादशराजचक्रमखिलं क्षमापालचूडामणे-
 दोः स्तम्भप्रतिवद्वृत्ति परितो यस्येच्छया भ्राम्यति ।
 स श्रीमान् भुवनेकरामपनुपर्तिर्देवो व्यधत्त द्वृतं
 यन्त्राध्यायमिमं स्वचुदिरचितैर्यन्त्रपञ्चैः सह ॥ २२३^१_२ ॥

इति महाराजाचिग्रवधीमोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशाखे
 यन्त्रविधानं नामैकत्रिशोऽध्यायः ॥

अथ गजशाला नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ।

लक्षणं गजशालानामिदानीमभिद्ध्यहे ।
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे भागैर्भक्ते ततोऽष्टभिः ॥ १ ॥
 मध्ये द्विभागविस्तारं स्थानं कुर्वीत हस्तिनः ।
 कल्प्याः प्रासादवद् भागा ज्येष्ठमध्याध्रमाः क्रमात् ॥ २ ॥

१. 'न्त्रैः' क, 'न्त्रं' ख, पाठः ।

तद्वहिर्भागिकोऽलिन्दो वहिस्तस्यापि चापरः ।
 भागेनकेन भित्तिः स्याद् द्वितीयालिन्दक्षाद् वहिः ॥ ३ ॥
 तस्या द्वारप्रदेशे तु कर्तव्यौ कूर्परावुभौ ।
 कर्णप्रापासादिका कार्या हितीयालिन्दसंश्रिता ॥ ४ ॥
 द्वे द्वे वातायने कुर्याद् भित्ति दिक्षु तिसृष्टिपि ।
 ५ प्राग्नीवोऽग्रे भवेच्छाला सुभद्रेयमुदाहता ॥ ५ ॥
 अस्या एव यदा पक्षेप्राग्नीवौ भवतो मुखे ।
 ननिदनी नामतः शाला तदा स्याद् गजवृद्धये ॥ ६ ॥
 अस्या एव यदा स्यातां प्राग्नीवौ पार्श्वयोर्द्वयोः ।
 तदा सुभोगदा नाम तृतीया परिकीर्तिता ॥ ७ ॥
 अस्या एव यदा पृष्ठे प्राग्नीवः क्रियतेऽपरः ।
 भद्रिका नाम शाला स्यात् तदा द्विरदपुष्टिदा ॥ ८ ॥
 पञ्चमी चतुरश्चा स्याद् वर्षणी नाम पूजिता ।
 प्राग्नीवालिन्दनिर्युहहीना पृष्ठी तथापरा ॥ ९ ॥
 शाला प्रमारिका धान्यधनजीवितहारिणी ।
 तदेतां वर्जयेत् कुर्यादन्याः सर्वार्थसिद्धये ॥ १० ॥
 प्राग्नीरिकेति प्रथितेह शाला सा प्राणसस्यद्रविणच्छिदे स्यात् ।
 कुर्यादतस्तां न यथोदितास्तु कार्याः परा जीवितवित्तवृद्धयै ॥ ११ ॥
 इति महाराजाधिग्राजभीमोऽवेदविरचिते समयङ्गणसूत्रधारापरनान्ति वास्तुशाखे
 गजशाला नाम द्वात्रिशोऽध्यायः ॥

अथाश्वशाला नाम त्रयस्त्रिशोऽध्यायः ।

अथ लक्ष्माश्वशालायाः प्रोच्यते विस्तरादिह ।

स्ववेशपवास्तोः कर्तव्यं पदे गन्धर्वसंबङ्के ॥ १ ॥

१. 'तु', २. 'क्षः' क. पाठः । ३. 'ते', ४. 'ज्ञ' ख. पाठः ।

५ इह सर्वत्र 'प्राग्नीव' इति पाठ्यं माति ।

अथवा पुष्पदन्तास्त्वये स्थानं वासाय वाजिनाम् ।
 अरब्रिष्टतमात्रं यज्ञेयेत् तत् परिकीर्तितम् ॥ २ ॥
 अशीत्परविकं मध्यं पञ्चारत्न्यवमं भवेत् ।
 स्थलप्रदेशे विपुले गुप्ते रम्ये शुची तथा ॥ ३ ॥
 समे च चतुरश्चे च स्थि(ते?)रे) मङ्गल्यमेव च ।
 स्थानं हयोनां कर्तव्यं प्रदेशे सुपरिक्षमे ॥ ४ ॥
 निम्नगुल्मद्रुपस्थाणृचत्यायतनवेशमभिः ।
 बलमीकर्णकरामिश्र वर्जिते तस् समाचरेत् ॥ ५ ॥
 निःसङ्गे शलयहीने च प्रागुदक्षिणे तथा ।
 प्रदेशे तद् विधातव्यमालोक्य सुसमाहितैः ॥ ६ ॥
 ब्राह्मणानुमते श्रस्ते^१ दिने स्थपतिभिः सह ।
 भूमेविभागमालोक्य सुभगानानयेद् द्रुपान् ॥ ७ ॥
 न जाता ये श्मशानेषु देवतायतनेषु वा ।
 अन्येष्वपि निपिद्धेषु जातान् वृक्षान् विवर्जयेत् ॥ ८ ॥
 वृक्षान् प्रशस्तानानीय समीपे भर्तुवेशमनः ।
 ततो भूमि परीक्षेत प्रशस्तौमय निनिदत्तम् ॥ ९ ॥
 चितायतनवल्मीकग्रामधान्यखलेषु च ।
 विहारेषु च कर्तव्यमध्यानां न निवेशनम् ॥ १० ॥
 भवन्ति स्वामिनः पीडा ग्रामधान्यखलेषु च ।
 श्मशाने वेशकरणान्नराणां मृत्युमादिशेत् ॥ ११ ॥
 स्थानं विहारवल्मीकविहितं स्यादनर्थकम् ।
 तन्नित्यसन्तापकरं क्षयकृत्त तपस्विनाम् ॥ १२ ॥
 देवोपयातजननं स्त्रीणां च क्षयकारकम् ।
 विहितं पादपैथैत्यर्थैः स्याद् भूतभीतिदम् ॥ १३ ॥
 भवेद् रोगकरं भर्तुविहितं कण्ठकिंद्रियैः ।
 दीर्णायामुक्तायां च कृतं भूमौ क्षयावहम् ॥ १४ ॥

१. 'स्त' क. पाठः । २. 'शुभानानीय सहु' क, 'सुभगाना' ख. पाठः । ३. 'लां
 वाय', ४. 'नाखि' ख. पाठः । ५. 'न', ६. 'जात् द्रुपाणां', ७. 'क' क. पाठः ।

नतायां क्षुद्रयकरं कृतं भवति मन्दिरम् ।
 तस्मात् कार्यं प्रशस्तायां भूमौ तद् वाजिहृदये ॥ १५ ॥

मङ्गलयरमणीये च चतुरथे मनोनुगे ।
 शुभे च विहितं सद्ग भवेत् कल्याणकारकम् ॥ १६ ॥

निर्गच्छतो यथा वापे पार्थे भर्तुस्तुरङ्गमाः ।
 भवन्ति कुर्यात् स्थपतिस्तथा वाजिनिवेशम् ॥ १७ ॥

अन्तःपुरप्रदेशस्य कार्यं दक्षिणतथा तत् ।
 प्रवेशे दक्षिणं तेषां हेषितं जायते यथा ॥ १८ ॥

तथा भर्तुहिंतार्थाय कर्तव्यं सद्ग वाजिनाम् ।
 प्रागुदग् वा मुखं तस्य विधातव्यं सैतोरणम् ॥ १९ ॥

प्राग्नीवकेण संयुक्तं चतुःशालमसङ्कटम् ।
 दशारविसमुच्छ्रायमष्टारविप्रविस्तृतम् ॥ २० ॥

नागदन्तकसंशोभि पुरः कुड्यार्धसंयुतम् ।
 पृष्ठे समग्रकुड्यं वा तत्र स्थानानि कल्पयेत् ॥ २१ ॥

तानि तु प्राङ्मुखानि स्युस्तथैबोद्धमुखानि च ।
 आयामे किञ्चुमात्राणि त्रिकिञ्चूणि च विस्तरात् ॥ २२ ॥

प्रांशुन्नतोर्ध्वभागानि चतुरथाणि कारयेत् ।
 अग्रोचां सुखसञ्चारां तेषु भूमिं प्रकल्पयेत् ॥ २३ ॥

स्थानं सूत्रस्य मध्ये तु हस्तमात्रं समन्ततः ।
 आस्तीर्णं च समश्छृणनीरन्त्रैः फलकैर्हैः ॥ २४ ॥

धातव्यर्जुनपुन्नागकुभादिविनिर्मितैः ।
 अष्टाङ्गुलसमुच्छ्रायैरध्यधीरविविस्तृतैः ॥ २५ ॥

अचिछ्रद्रैः “संहतैर्वद्वैरयैसा पार्थयोद्दयोः ।
 अजन्तुसङ्कुलैः काष्ठे रुचकाभि(?)भिंपद्यतैः ॥ २६ ॥

यवसस्य भवेत् स्थानं निर्यौहः स्वास्तुतं शुभैः ।
 किञ्चुत्रयोच्चितं तत् स्यादेकान्ते सुसमाहितम् ॥ २७ ॥

१. ‘वै’ क. पाठः । २. ‘दे’ ख. पाठः । ३. ‘सु’ क. पाठः । ४. ‘सं-
 हितै’ ख. पाठः । ५. ‘ज’ क. पाठः ।

हस्तद्वयप्रमाणं च कुर्यात् खादनकोष्ठकम् ।
 मूललिप्समदुर्गन्धि विस्तारोच्चाययोः समम् ॥ २८ ॥
 स्थाने स्थाने त्रयः कीलाः सुहृदाः कपिशीर्षकाः ।
 पश्चात्रीनिग्रहार्थं ताँ पुरतः कल्पयेदुभाँ ॥ २९ ॥
 पश्चाद् वन्धार्थमेकं च सुगुमं परिकल्पयेत् ।
 चतुर्हस्तायतं त्यक्त्वा शाकाकोणचतुष्टयम् ॥ ३० ॥
 स्थानेष्वेतेषु तुरगान् सर्वेष्वपि लिवेशयेत् ।
 तत्र कुर्याद् बलि होमं स्वस्तिवाचनकं जपम् ॥ ३१ ॥
 ग्रीष्मे कार्यं सुसंषृष्टं सिक्तं तत्र महीतलम् ।
 वर्षस्वनम्बृपङ्कं च शिशिरे संवृतं शुभम् ॥ ३२ ॥
 तिष्ठेयुस्तत्र तुरगा नातिसङ्कीर्णशङ्किनः ।
 अस्पृशन्तो मिथः कार्याः सर्वावाधविवर्जिताः ॥ ३३ ॥
 स्थानं दभिणपूर्वस्थां दिशि वह्नेः प्रकल्पयेत् ।
 निदध्यादुदकुम्भं च किञ्चिदैन्द्रीसपात्रितम् ॥ ३४ ॥
 ब्राह्म्यां दिशि प्रकर्तव्यं स्थानं यवसस्य च ।
 वायव्यां तु प्रकर्तव्यं स्थानमोदूखलं दिशि ॥ ३५ ॥
 निःश्रेणयः कुशाः कूपाः कार्याश्च फलकावृताः ।
 कुदालोदालगुडकाः शुक्रयोगाः सुरस्तथा ॥ ३६ ॥
 कच्छ्रहण्यः शृङ्गं च तथा परश्वोऽपि च ।
 नाद्याः(?) प्रदीपांश्च भवन्त्यच्चारारोपयोगिनः ॥ ३७ ॥
 सङ्घ्रहः सुखसञ्चारवस्तुनां नैकते भवेत् ।
 अम्न्युपद्रवसञ्चार्थं वन्धन्तेदोपयोगिनः ॥ ३८ ॥
 पदार्थान् सञ्चिवाँ कुर्याजंलदीपादिकान् त्रुवः ।
 भाण्डानि कुर्याच पृथग् ज(न्द्रालो)पनयनेच्छया ॥ ३९ ॥
 हस्तवासीं शिक्कां दीपं दर्वीं फालमुपानहीं ।
 पिंकानि विचित्राणि वस्तीन् नानाविधानपि ॥ ४० ॥

१. 'बीच्छाद' क, 'बीद्वाद' ख. पाठः । २. 'ख', ३. 'वा प', ४. 'प' क,
 बाठः । ५. 'उव', ६. 'भाण्डापन', ७. 'वि' क. पाठः ।

एवंविधानि चान्यानि संनिदध्यात् प्रयत्नतः ।
 पुरःस्तम्भाश्रितं भाण्डं सन्नाहादेविंधीयते ॥ ४१ ॥

प्राङ्मुखे तुरगं गेहे वारुण्यां स्थापयेद् दिशि ।
 पूर्वामुखे पदे वापि मित्रस्य वरुणस्य च ॥ ४२ ॥

भवन्ति तेन बहवः पुष्टि च प्राप्नुवन्ति ते ।
 सा हि दिक् पूजनीया च स्तोतव्या च प्रकीर्तिं ॥ ४३ ॥

होमशान्तिकंदानेषु धर्म्या याश्च पराः क्रियाः ।
 तासु प्रशस्यते पूर्वा शक्रेणाधिष्ठिता स्वयम् ॥ ४४ ॥

तस्यामुदेति दिनकुदनुलोमं ततः पुनः ।
 अश्वानां पृष्ठतो याति स प्रतीचीमनुक्रमात् ॥ ४५ ॥

स्नानाधिवासने पूजा माङ्गल्यानि पराणि च ।
 प्राङ्मुखानां तुरङ्गाणां कर्तव्यानि शुभार्थिभिः ॥ ४६ ॥

एवं कृते भूमिवलमित्राणां यशसोऽपि च ।
 वृद्धिर्भवति भूपस्य तस्मात् प्राची प्रशस्यते ॥ ४७ ॥

भर्तुवृद्धिप्रदं स्थानमग्रेत्रासस्य तद् भवेत् ।
 दक्षिणाभिमुखायां तु शालायां वाञ्छितार्थदम् ॥ ४८ ॥

स्थानं भवति वाहानां पदे वल्लसं विभावसोः ।
 वहिनाध्यासिता सा दिग्ं आत्मा वहिश्च वाजिनाम् ॥ ४९ ॥

अगरो वहुभोक्ता च तत्र वद्दो भवेद्यः ।
 उद्भुमुखेऽपि भवने प्राप्नुवन्ति शुभं हयाः ॥ ५० ॥

तथास्थितानामश्वानां दक्षिणेन दिवाकरः ।
 उदेत्यनन्तरं याति तान् विधाय प्रदक्षिणम् ॥ ५१ ॥

प्रयाति वापतोऽ(अं च?श्वानां) स्थाप्यास्तेनोत्तरामुखाः ।
 चन्द्राकौं प्रति(हर्ष?हेष)न्ते तथा वद्वीत वाजिनः ॥ ५२ ॥

नृपतिश्च जयं सिद्धिं पुत्रानायुश्च विन्दति ।
 अरोगाश्च भवन्त्यश्वा वर्धयन्ति च सन्ततिम् ॥ ५३ ॥

१. 'ताः' क. ख. पाठः । २. 'पु'; ३. 'उयगोकस्य' क. पाठः । ४. 'गदीसो वहिस्तु वा', ५. 'आरोग्याश्च' क. पाठः ।

दक्षिणाभिमुखान् कुर्यान् सन्नाशान् न चाग्रगान् ।
 पितृकार्याद्यतोऽन्यत्र दक्षिणा वर्जितैव दिक् ॥ ५४ ॥
 अस्यामेव दिशि प्रेता यतः सर्वे प्रतिष्ठिताः ।
 उदेति वायतो याति चास्तं दक्षिणतो रविः ॥ ५५ ॥
 सोमश्च पृष्ठे भवति तेनाश्वा दैवपीडिताः ।
 ग्रहैर्विकारैर्विविधैः पीड्यन्ते ऽरातिविहलाः ॥ ५६ ॥
 भयेन व्याधिभिश्चार्ता ग्रासं नेच्छन्ति खादितुम् ।
 पराजयमतुष्टिं च स्वामिनोऽनर्थसङ्गतिम् ॥ ५७ ॥
 कुर्वन्त्यतो न वशीयात् कथञ्चिद् दक्षिणामुखान् ।
 पश्चिमाभिमुखानां च वद्धानां वाजिनां सदा ॥ ५८ ॥
 उदेति पृष्ठतो भानुः पुरतोऽस्तं प्रयाति च ।
 न भवेद् विजयस्तेन भरुस्तत्पृष्ठवतिनः ॥ ५९ ॥
 शक्तस्य पृष्ठवर्तित्वात् प्रातिलोच्याच्च भास्तवः ।
 कुप्यन्ति व्याधयस्तेषां तृणं देहिनाशनाः ॥ ६० ॥
 तैस्ते ध्यायन्ति वेषन्ते जले ग्रासं प्रयान्ति च ।
 यवसं नाभिनन्दन्ति क्षमां मुञ्चन्ति सर्वथा ॥ ६१ ॥
 दिशोऽभिमुखमागेय्या वध्यन्ते यदि वाजिनः ।
 व्यथन्ते रक्तपित्तोत्थैस्तदा रोगैरनेकधा ॥ ६२ ॥
 जायन्ते स्वामिनो वन्धवधहृच्छोषदायिनः ।
 वाजिनां च भवेत् तत्र वहिदाहकृतं भयम् ॥ ६३ ॥
 भर्तुः पराजयो विघ्नः स्याच्च देहस्य संशयः ।
 नैऋत्याः ककुभो वाहा वध्यन्ते संमुखं यदि ॥ ६४ ॥
 तदा न तेऽभिनन्दन्ति खादनं पानभोजने ।
 यथा यथा क्षिति पादैर्दारयन्ति पुनः पुनः ॥ ६५ ॥
 हेषन्ते वीक्ष्य वहुशो मनुष्यान् पक्षिणः पशून् ।
 भ्रमयन्ति च गात्राणि नैऋतीं चाभितः स्थिताः ॥ ६६ ॥

१. 'प्य' क. पाठः । २. 'क' ल. पाठः ।

तथा तथैपां कुपिता नाशं कुर्वन्ति राक्षसाः ।
 वैध्यन्ते यदि वाङ्मानाद् वायव्याभिमुखं हयाः ॥ ६७ ॥
 तदा ते वातिके रोगैः पीड्यन्ते प्रतिवासरम् ।
 चलः कायो भवेद् भर्तुः क्लेशाखोपजीविनाम् ॥ ६८ ॥
 नरणां च भवेन्मृत्युर्दुर्भिक्षप्रभवं भयम् ।
 ऐशान्यभिमुखं वद्धाः प्रणश्यन्ति तुरङ्गमाः ॥ ६९ ॥
 सूर्योदयस्याभिमुखं वद्धानां चेदमादिशेत् ।
 निवैध्यन्ते यदा वाहा व्राहीं दिशमुपाश्रिताः ॥ ७० ॥
 वैध्यन्ते ते ग्रहदिव्यवर्णाधिभिश्च विचिन्तनाः ।
 कर्वयहव्यक्रियास्तत्र भर्तुर्न विजयावहाः ॥ ७१ ॥
 द्विजानामुपतापाय जायन्ते तत्र वाजिनः ।
 अनुवंशं च शालायां स्थानमध्यस्य नेष्यन्ते ॥ ७२ ॥
 स्वामिनस्तद्जीर्णाय स्यान्वाशाय च वाजिनाम् ।
 स्थाने प्रशस्ते तुरगान् सर्वथा वासयेदतः ॥ ७३ ॥
 नच धार्याः क्षणमपि रोगिणः कल्यसन्निधौ ।
 कल्यानामपि रोगाः स्युर्यतो रोगिंसमाश्रयात् ॥ ७४ ॥
 हयागारस्य पूर्वेण कार्यं भेषजमन्दिरम् ।
 तस्येव वामतः सर्वसंभारान् परिकल्पयेत् ॥ ७५ ॥
 वाजिनां भेषजार्थार्थं भाण्डानि च विनिश्चिपेत् ।
 अगदानोपधीः स्नेहान् वर्तीश्च लवणानि च ॥ ७६ ॥
 भेषजागारसविधे कुर्याचारिष्टमन्दिरम् ।
 भवनं व्याधितानां च कार्यं वासाय वाजिनाम् ॥ ७७ ॥
 सुगुर्सं तत्र कर्तव्यं पूर्वनिर्दिष्टवेष्मवत् ।
 संवद्धं च विधातव्यमेतद् वेष्मचतुष्टयम् ॥ ७८ ॥

१. 'नां' क. पाठः । २. 'से', ३. 'नि' ख. ग. पाठः ।

सुधावन्धवृः कुर्ज्यैः सप्राग्नीवोचतोरणम् ।
 चत्वार्यपि विशालानि सुगमानि च कारयेत् ॥ ७९ ॥
 वेश्मस्वेवंविधेष्वशान् स्थापितान् परिपालयेत् ॥ ७९^१_२ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशाखे
 अश्वशाला नाम त्रयस्त्रिशोऽध्यायः ॥

अथाप्रयोज्यप्रयोज्यं नाम चतुस्त्रिशोऽध्यायः ।

राङ्गां सेनापतीनां च वर्णिनामपि वेश्मसु ।
 यदि वा वास्तुकक्षासु सभादेवकुलेषु च ॥ १ ॥
 शयनासनयानेषु भाजनाभरणेषु च ।
 छत्रध्वजपताकासु सर्वोपकरणेषु च ॥ २ ॥
 अप्रयोज्यानि यानि स्युः प्रयोक्तव्यानि यानि च ।
 विस्तरात् तानि कथयन्ते हितार्थमथ देहिनाम् ॥ ३ ॥
 पूर्वोक्तानां नृपादीनां यानि वेश्मसु केवलम् ।
 अप्रयोज्यानि तान्येव पूर्वमत्राभिदध्महे ॥ ४ ॥
 तेषु नैव प्रयोक्तव्याः समस्ता अपि देवताः ।
 दैत्या ग्रहास्तथा तारा यक्षगन्वर्वराक्षसाः ॥ ५ ॥
 पिशाचाः पितरः प्रेताः सिद्धविद्याधरोरगाः ।
 चारणा भूतसङ्घाश्च तेषां योषाः सुतास्तथा ॥ ६ ॥
 प्रतीहाराः प्रतीहार्यस्तेषामधिकृताश्च ये ।
 आयुधानि तदीयानि सर्वे चाप्सरसां गणाः ॥ ७ ॥
 दीक्षितव्रतिपापणिडनास्तिकाः क्षुत्रपीडिताः ।
 व्याधिवन्धनशस्त्राप्रितैलास्त्रक्षयङ्गांसुभिः ॥ ८ ॥
 शूलज्वरादिभिश्चार्ता येऽन्येऽप्येवंविधा नराः ।
 मत्तोन्मत्तजड़ीवनग्रान्धवधिरादयः ॥ ९ ॥

१. 'वास्तुक' ए. ग. पाठः । २. 'त' क. पाठः ।

दोलाक्रीडाश्च नेष्यन्ते ग्रहणानि च दन्तिनाम् ।
 देवासुराद्याः सह्याया विग्रहाश्च महीक्षिताम् ॥ १० ॥

प्राणियुद्धविमर्दाश्च मृगया च न शस्यते ।
 रौद्रदीनाद्भुतवासवीभत्सकरुणा रसाः ॥ ११ ॥

न प्राणिषु प्रयोक्तव्या हास्यशृङ्गारवर्जिताः ।
 हस्त्यधरथयानानि विमानायतनानि च ॥ १२ ॥

चण्डानलप्रदीपानि भवनानि बनानि च ।
 वृक्षाः पुष्पफलैर्हीना विहङ्गावासदूषिताः ॥ १३ ॥

एकद्विशाश्वा रुक्षाश्च भग्नाः शुष्काः सकोटराः ।
 कदम्बशालमलीशेलुतारक्षारलुकादयः(?) ॥ १४ ॥

भूतालयत्वान्नेष्यन्ते कटुकण्टकिनश्च ये ।
 गृध्रोलूका विहङ्गेषु कपोतश्येनवायसाः ॥ १५ ॥

कङ्कश्चेति न शस्यन्ते खगा रात्रिचराश्च ये ।
 गजाश्वमहिषाश्वोद्या मार्जारखरवानराः ॥ १६ ॥

सिंहो व्याघ्रस्तरक्षुश्च वराहमृगजम्बुकाः ।
 तथा वनचरा ये च क्रव्यादा मृगपश्चिणः ॥ १७ ॥

गृहेष्वेते न कर्तव्याः शैलाटव्याश्रिताश्च ये
 अमीषां करणादैर्यराचार्यो विप्रमुच्यते ॥ १८ ॥

व्याधिं घोरमवाग्नोति व्यसनं वन्धमेव च ।
 यत्र तत्र गृहस्वामी धनहानिं पराजैयम् ॥ १९ ॥

प्रवासं वन्धनं नाशं मृत्युं वा क्षिप्रमाप्नुयात् ।
 इत्युक्तान्यप्रशस्तानि गृहेषु गृहमेधिनाम् ॥ २० ॥

तत्र यानि प्रयोज्यानि कथ्यन्ते तान्यतः परम् ।
 यस्य यत्र भवेद् भक्तिर्या चास्य कुलदेवता ॥ २१ ॥

हस्तक्लृप्रमाणेन तान् कुर्वन् स्यान् दोषमाक् ।
 तद्वारपार्ष्योः कार्यो प्रतीहारौ स्वलद्वक्तौ ॥ २२ ॥

१. 'रा', २. 'श्येना न' क. पाठः । ३. 'भवम्' ख. ग. पाठः ।

वेत्रदण्डव्यग्रकरौ खञ्जकोशपरिच्छदौ ।
 स्पृयोवनसम्पद्वा विचित्राम्बरभूषणो ॥ २३ ॥
 धात्री वामनिका कुञ्जा सखीभिः परिवारिता ।
 विदूपकैः कञ्जुकिभिस्तुर्षुगतास्तथा ॥ २४ ॥
 द्वारस्योभयतः कार्याः प्रतीहार्यो मनोरमाः ।
 निधयथानुरूपाश्च शङ्खाबजोजज्वलक्षणाः ॥ २५ ॥
 रब्रदीनारराशीश्च वहन्तो वदनोद्दतान् ।
 पश्चस्था पूर्णकुम्भा वा रब्रवस्त्रिभूषिता ॥ २६ ॥
 वक्ररुद्धिस्थितैः पुष्पफलपद्मवसम्भृतैः ।
 पूर्णकुम्भाहकुशच्छत्रश्रीतुक्षादर्शचामरैः ॥ २७ ॥
 कार्याएमङ्गला द्वारे द्वौभिः शङ्खमत्स्ययोः ।
 द्वारमण्डलमध्यस्था म्लांघ्यमाना गजोन्तमैः ॥ २८ ॥
 पश्चासना पश्चहस्ता श्रीश्च कार्या स्वलङ्घता ।
 वृषः सवत्सा धेनुर्वा सच्छत्रवस्त्रिभूषणा ॥ २९ ॥
 फलभक्तवृद्धिविधराहारार्थं निवेदितैः ।
 नानापुष्पफलैर्नर्म्मैः शालैस्तिर्थगवस्थितैः ॥ ३० ॥
 चित्रा पत्रलता लेखया वाह्याभ्यन्तरभिचिषु ।
 हंसकारण्डचक्राहिर्विसिनीपत्रवर्तिभिः ॥ ३१ ॥
 कुमारकंश्च क्रीडद्विर्युक्ता ललितवाहुभिः ।
 वासधान्त्रि निवेश्यन्ते विचित्रामरणाम्बराः ॥ ३२ ॥
 रतिक्रीढापरा नायों नायकस्तु यद्यच्छया ।
 आपाण्डुदेहच्छब्दयः स्वल्पचारुविभूषणाः ॥ ३३ ॥
 किञ्चित्पतनुभिर्गत्रैः कार्याः सुरतलालसाः ।
 प्रवृद्धशाखाविट्ठैः प्रचलारुणपल्लवैः ॥ ३४ ॥
 चम्पकाशोकपुन्नागनानाम्रतिलकादिभिः ।
 छायापुष्पफलोपेतैः वृक्षेरन्यैश्च भूषिताः ॥ ३५ ॥

१. 'रैदी' ख. ग. पाठः । २. 'वसुभिः' । ३. 'स्था' क.पाठः ।

उद्यानभूमयः कार्याः कूजत्पिकमधुवताः ।
 ऋतवः फलपुष्पाद्यैः स्वैः स्वेत्विहरलङ्कुताः ॥ ३६ ॥
 मनोरमैर्विशेषैश्च खगैश समयोचितैः ।
 काटम्बकुररक्रीञ्चहंससारसमेखलाः ॥ ३७ ॥
 तीरान्तोद्रुतवानीरकेतकीपण्डमण्डिताः ।
 जलान्तलीनपत्स्यैश्च सञ्जल्लाना नलिनीवनैः ॥ ३८ ॥
 लेख्याश्च गृहभितीनामधोभागेषु दीर्घिकाः ।
 फैलः समै समक्षेष्वुमणिकाञ्चनभाजनाः ॥ ३९ ॥
 विन्यस्तपश्चिनीपत्राः सोत्पलाः पानभूमयः ।
 विचित्रातोद्यहस्ताश्च नृत्यगीतविचक्षणाः ॥ ४० ॥
 मुदिता ललना लेख्याः प्रेक्षासङ्गीतभूमिषु ।
 प्रकल्प्याः पञ्चरस्थाश्च चकोरशुकसारिकाः ॥ ४१ ॥
 प्रहृष्टाः परपुष्टाश्च मयूराश्च सकुकुक्याः ।
 इति यानि प्रदिष्टानि प्रयोक्तव्यानि वेदमनि ॥ ४२ ॥
 तानि सर्वाणि शस्तानि सर्वोपिकरणेष्वपि ।
 देवयोनिगणास्तद्वत् पुरुषाश्च विनिन्दिताः ॥ ४३ ॥
 साकन्दाश्च न शस्यन्ते पीठशश्यासनादिषु ।
 पुरस्तात् कीर्तितान्यत्र प्रयोक्तव्यानि यानि च ॥ ४४ ॥
 तानि शस्तानि कक्षासु सभादेवकुलेषु च ।
 दिव्यपानुपसम्बद्धान्पारुष्यानारुष्यायिकादिषु ॥ ४५ ॥
 प्रोक्तानि तानि तावन्ति शुभान्यालेख्यकादिषु ।
 इति कथितपयोज्यं योजनीयं च बुद्ध्या
 भवनशयनकक्षादेवधिष्ठयादिकेषु ।
 विरचयति यथोक्तं निनिदितं वर्जयेद् यः
 स भवति नृपतीनां शिलिपनां चार्चनीयः ॥ ४६^१_२ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभीजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्भिः वात्सुशास्त्रे
 अप्रयोज्यप्रयोज्यं नाम चतुर्सिंशोऽध्यायः ॥

१. 'नी', २. 'त' क. पाठः । ३. 'मु' ख. ग. पाठः । ४. 'षु' क. पाठः ।
 ५. 'कु', ६. 'न्धानारुष्या' ख. ग. पाठः ।

अथ शिलान्यासविधिनाम् पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।

अथ व्रूपः शिलान्यासविधिमत्र यथागमम् ।
 तत्रोदगयने पुण्ये शुक्रपक्षे शुभेऽहनि ॥ १ ॥
 स्थिरस्य दिवसे करणे च गुणान्विते ।
 तिष्ठेऽश्विनीषु रोहिण्यामुत्तरेष्वपि च त्रिषु ॥ २ ॥
 रेवत्यां श्रवणे हस्ते शिलाविन्यासमाचरेत् ।
 स्थिरस्य राशेरुद्ये सौम्यमित्रावलोकिते ॥ ३ ॥
 सम्युद्धनिमित्तशकुनस्वस्तपुण्याहवाचिते ।
 हर्षोदये च मनसः कुर्याद् वास्तोनिवेशनम् ॥ ४ ॥
 भद्रः प्रकृत्या शारुद्रः शुचिः स्नातः समाहितः ।
 कर्मारभेत स्थपतिः कृतदेवार्चनक्रियः ॥ ५ ॥
 पूर्णा समामविकलां चतुरश्रामनिन्दिताम् ।
 शिलामाद्यां चये साध्वीं परीक्षेत विचक्षणः ॥ ६ ॥
 कुम्भाद्कुशध्वजच्छब्दप्रमत्स्यचामरतोरणीः ।
 दूर्वानागफलोणीषपुष्पस्वस्तिक्रोदिभिः ॥ ७ ॥
 नन्द्यावर्तेः सचमरैः कूर्मपद्मनिशाकरैः ।
 वज्रैः प्रशस्तैः प्राकारभूषिताः कर्मणो हिताः ॥ ८ ॥
 दीर्घा हस्वाल्पविषयाञ्चाभाध्मातापरीक्षिताँ ।
 दिङ्मृढा चाङ्गहीना च साम्यज्ञारा सशक्तराँ ॥ ९ ॥
 खण्डा दुःपक्निभित्रा कृष्णा दोषभयावहां ।
 नृणां पशुतुरज्ञाणां पदाङ्काः स्वस्तिवृद्धये ॥ १० ॥
 क्रव्यान्मृगविहज्ञानां पादैः स्पृष्टास्तु वर्जयेत् ।
 नन्दाभद्राजयापूर्णाश्रतस्तः स्युरिमाः शिलाः ॥ ११ ॥
 वासिष्ठी काशयपी तद्दद भार्गव्याहिरसीति ताः ।
 तत्र प्रागुत्तरे देशे संनिवेशस्य वास्तुनः ॥ १२ ॥

१. 'स्थापनाभ्या' (?) क, 'छालाभ्या' ग, पाठः । २. 'ताः' ख, ग, पाठः ।
 ३. 'राः' क, पाठः । ४. 'क्षपनि' क, 'पक्षानि' ग, पाठः । ५. 'हाः' ख, पाठः ।

नैऋत्यां वा सकुसुपां सपां गोचर्मसम्मिताम् ।
 वेदां सगन्धकलशां चतुरश्रां ग्रकलयेत् ॥ १३ ॥

आग्रेय्यामादितो नन्दां स्थापयेत् क्रमशः शिलाम् ।
 अकालमूलैरव्यज्ञैः सपदोत्पलपङ्क्तैः ॥ १४ ॥

सर्वोपयिहिरण्याद्यैर्हमराजतमृतमयैः ।
 कुम्भैस्ताम्रपयैश्चापि मन्त्रैस्तामभिषेचयेत् ॥ १५ ॥

तीर्थग्रस्तवणाम्भोभिः सरब्राक्षतपङ्क्तज्ञैः ।
 सुगन्धिभिः संपुण्याहमभिषेकं प्रयोजयेत् ॥ १६ ॥

जाहवीयमुनारेवासरस्वत्यादिसम्भवैः॒वम् ।
 महानदीजलं शस्तं शुभतीर्थमवं तथा ॥ १७ ॥

तथाद्रिवनवेशन्तदेवायतनजानि च ।
 अभिषेकार्थमम्भांसि बथालाभमुपाहरेत् ॥ १८ ॥

मन्त्रेणानेन चैतासामभिषेकं समाचरेत् ।
 हिरण्यवर्णाः पावन्यः शुचयो दुरितच्छिदः ॥ १९ ॥

पुनन्तु शान्ताः श्रीमत्य आपो युष्मान्मधुच्युतः ।
 मन्त्रपूतेन पवसा स्नापयित्वा ततः शिलाम् ॥ २० ॥

स्थपतिर्गन्धकलकेन मङ्गलयेनानुलेपयेत् ।
 हिमचैन्दनपूर्णेन व्यवकीर्य सुगन्धिना ॥ २१ ॥

तरसा छादयेदेनां सलाजैः पुष्पदामभिः ।
 धूपमालयोपहारैश्च दधिमांसाक्षतादिभिः ॥ २२ ॥

पूर्जयेदिष्टकां देवीं वस्त्रयुग्मैश्च पुष्कलैः ।
 निवेशनान्ते नैऋत्यां तदा विप्रानवस्थितान् ॥ २३ ॥

समसद्व्ययात् शुचीन् प्राज्ञानर्चयेद् दक्षिणाफलैः ।
 ओङ्कारस्वस्तिपुण्याहगीतवादित्रनिस्वनैः ॥ २४ ॥

कर्ता जनितरोमाच्चस्तेभ्यः कुर्याद्वमस्कियाम् ।
 निवेद्य वास्तोष्पतये भूतेभ्यश्च ततो वलिम् ॥ २५ ॥

१. 'सु' ग. पाठः । २. 'वमान्यः' क. पाठः । ३. 'चन्द्रेण पू' ल. ग. पाठः । ४. 'र' ग. पाठः ।

तासां चतसृणामन्याः कुर्यादुपशिलाः पृथक् ।
 प्राकारं स्वस्तिकाङ्क्षे द्वे तथा श्रीवत्सलक्षणा ॥ २६ ॥
 नन्दावर्तस्तु पूर्णायां भवे(देको?दङ्को) यथाक्रमम् ।
 कर्णे प्राग्दक्षिणे नन्दां वास्तुनः स्थापयेद्वैः ॥ २७ ॥
 अन्याः क्रमेण भद्राद्याः कोणेष्वन्येषु च त्रिषु ।
 प्रतिष्ठापनमन्त्रात्र तासां चतसृणामपि ॥ २८ ॥
 चत्वारं क्रृषिभिर्गताः शाश्वतारम्भदर्शनाः ।
 वीर्येणादिवराहस्य वेदार्थस्त्वभिमन्त्रिताः?ताम् ॥ २९ ॥
 वसिष्ठेनन्दिनीं नन्दां प्राक् प्रतिष्ठापयाम्यहम् ।
 सुमुहूर्ते सुदिवसे सा त्वं नन्दे! निवेशिता ॥ ३० ॥
 आयुः कारयितुर्दीर्घं श्रियं चाउयामिहावह ।
 भद्रासि सर्वतोभद्रा भद्रे! भद्रं विधीयताम् ॥ ३१ ॥
 कश्यपस्य प्रियसुते! श्रीरस्तु यृहेष्विनः ।
 जये! विजयतां स्वामी यृहस्यास्य महात्मनः ॥ ३२ ॥
 आचन्द्राकं यशश्चास्यं भूम्यामिह विरोहतु ।
 त्वयि सम्पूर्णचन्द्रामे! न्यस्तायां वास्तुनस्तले ॥ ३३ ॥
 भवत्येषु यृहस्वामी पूर्णे! पूर्णमनोरथः ।
 इति मूलचं(यो?यं) मन्त्रः कुर्यात् स्वस्तिकवाचनः ॥ ३४ ॥
 ताभिहिरण्यवर्णाभिः शिलाभिः सममद्भुतम् ।
 प्रागुदक्षुवना धन्या न प्रत्यग्दक्षिणाप्नुवा ॥ ३५ ॥
 इष्टकार्थत्यभवनप्राकारपुरकर्मसु ।
 विताने चितिविन्यासे चतुर्मुखनिकेतने ॥ ३६ ॥
 पुरोधाः शान्तिवेदीषु प्रतिमास्थापनेषु च ।
 याज्ञिकेन विधानेन क्रमशः स्थापयेच्छिलाः ॥ ३७ ॥

१. '३ च स्व', २. 'जया श्री', ३. 'थ' ग. पाठः । ४. 'हुं',
 ५. 'स्वां', ६. 'मे' क. पाठः । ७. 'म' ख. ग. पाठः । ८. 'भिः सशिलाभिः सम
 हुलम्', ९. 'के', क. पाठः ।

इत्रैशोकौर्णसंभा(सै?रुयै)स्ताः सामभिः सं महावैतः ।
गायन्युष्टिगनुष्टुष्टिभृद्दत्या च यथाकम् ॥ ३८ ॥

चयान् समस्तांश्चिनुयाच्चतुरो विरमेत् ततः ।
ज्ञात्वा भिन्निप्रमाणं च चितेश्चयचतुष्टयम् ॥ ३९ ॥

समाप्यमादिकर्मवं कनिष्ठे च यथोत्तरम् ।
प्रतिष्ठितास्ताः प्रथमं भूतले सुस्थिताः समाः ॥ ४० ॥

न चालयेचालने स्याद् गृहभर्तुर्महद् भयम् ।
कम्पने च भयं विद्यादेतासां स्थिरतां पुनः ॥ ४१ ॥

स्थपतेर्गृहभर्तुश्च मङ्गलं परमं विदुः ।
प्रागदक्षिणौयां चलने गृहभर्तुर्महद् भयम् ॥ ४२ ॥

भार्याविनाशो नैक्रित्यां शून्यं (?) भीतिर्मुहिंशि ।
गुरोश्च भयमैशान्यामपचारेऽपि तद् भवेत् ॥ ४३ ॥

प्रथमं स्थापि(तेनै?ताने)वं स्तम्भानपि न चालयेत् ।
नोद्धरेत् प्रणुद्याच्च विधिस्तुल्यो यतोऽनयोः ॥ ४४ ॥

विन्यासं प्रथमं तस्मात् कुर्यात् सम्यक् समाहितः ।
शिलानां स्थपतिस्तद्वत् स्तम्भानामपि सर्वथा ॥ ४५ ॥

द्वारप्राकारशालानां नगराणां च वेशमनाम् ।
तत्प्रमाणो विधिर्यस्मात् तस्मात् तत्रादतो भवेत् ॥ ४६ ॥

एवं शिलान्यासविधानमेतद् यथावदस्माभिरिहोपदिष्टम् ।
अस्मिन् कुते वेशमसुरालयादि निष्पत्तिमभ्येति विनैव विघ्नम् ॥

इति महाराजाधिराज श्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गसुवधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे

शिलान्यासविधिर्नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥

१. 'सु' स. ग. पाठः । २. 'स्त', ३. 'णयोश्चाल', ४. 'न्यां', ५. 'तत्रास्मात्तत्रा' क. पाठः ।

६. 'वैश्वोः' इति मातृकासु दृश्यते ।

अथ वलिदानविधिर्नाम पद्त्रिंशोऽध्यायः ।

इदानीमभियास्यामो वलिरूपविधेः क्रमम् ।
 येन येनार्चिता देवास्तुष्यन्ति समहेष्वराः ॥ १ ॥
 मण्डलं वास्तुनो मध्ये गोमयेन प्रकल्पयेत् ।
 कलशं तत्र विन्यस्येत् सप्रसूनं सकाञ्चनम् ॥ २ ॥
 वास्तुदेवास्ततः कल्प्या यथास्थाननियोगतः ।
 सधूपैर्विविधैर्मालयैरध्यं पश्चान्निवेदयेत् ॥ ३ ॥
 अर्चयेद् विश्वकर्माणं मालयैर्धूपैर्विलेपनैः ।
 भक्षैः फलैर्बहुविधैः पूजयेत् सुसमाहितः ॥ ४ ॥
 आज्येन पयसा दद्वा पूजयेच्छिखिनं पुनः ।
 शालिगोधूमसुद्धार्थान्यैः पञ्जर्यन्यमर्चयेत् ॥ ५ ॥
 जयन्तं पूजयेदाम्रद्राक्षाखर्जुरिकादिभिः ।
 मालतीमछिकाभिश्च पूजयेत् त्रिदशाधिपम् ॥ ६ ॥
 पुष्पैः रक्तस्तथा धूपैः रक्तचन्दनलेपनैः ।
 ततः मूर्यं जगन्नाथं पूजयेण्ठोकचक्षुपम् ॥ ७ ॥
 जम्बीर्वैजपूर्वश्च नारङ्गैः पीतकैः फलैः ।
 पूजयेत् सत्यनामानं देवं तेन स तुष्यति ॥ ८ ॥
 मत्स्यमांसैश्च तुष्यन्ति सर्वे रक्षःपुरोगमाः ।
 सितैः फलैर्नारिकेलैर्भृशश्च परितुष्यति ॥ ९ ॥
 गन्धधूपप्रयोगैश्च नभोनामानमर्चयेत् ।
 पुष्पैः सुगन्धिभिः शुक्रैर्मूर्तिः पारतुष्यति ॥ १० ॥
 कृसरं मधुसंयुक्तं पौष्णे भवत्या निवेदयेत् ।
 वितर्थं तु शुभेरन्यैर्मैथमांसविवर्जितैः ॥ ११ ॥
 पूजितस्तुष्टिमायाति विवस्वांश्च महामूर्तिः ।
 पुष्पैः सपुष्पकैस्तुष्टिमवामोति वृहक्षतः ॥ १२ ॥

१. 'यैर्भाविता', २. 'सर्व' ख. ग. पाठः । ३. 'ष' क. पाठः ।

मत्स्यमांसयुतैर्भव्यर्थमतुष्टिः सदा भवेत् ।
 पुच्चागागरुधुपेन गन्धर्वानर्चयेद् बुधः ॥ १३ ॥

मृगमांसयुतैर्भक्षेभृजराजं च तर्पयेत् ।
 राजजम्बुफलैर्बिलवैर्देवमभ्यर्चयेन्मृगम् ॥ १४ ॥

पायसैर्मधुसंयुक्तमांसैर्भक्तेश शोभनैः ।
 कर्पूरसुरभिद्रव्यगम्भैः संपूजयेत् पितृन् ॥ १५ ॥

सपुष्प्यमोदकैलर्जिः पललैश्च विमिश्रितैः ।
 दौवारिकं प्रयवेन पूजयेद् विघ्नकारकम् ॥ १६ ॥

अपूर्वैः शोभनैर्गन्धैर्धृपैर्मालयैरनुत्तमैः ।
 पुष्पैः कण्टकजातीनां सुग्रीवं पूजयेत् सदा ॥ १७ ॥

सपुष्प्यलो(पै)जकैर्भक्षयैर्दधियुक्तान्नपायसैः ।
 अर्चयेत् पुष्पदनं तु यशोवीर्यान्वितं सुरम् ॥ १८ ॥

मांसैश्च सूकरादीनां वैनतेयं सदार्चयेत् ।
 वरुणं च महासत्त्वं पूजयेद् धूपचन्दनैः ॥ १९ ॥

राहुं च मांससंयुक्तस्तर्पयेद् भक्षयभोजनैः ।
 रुधिरेण प्रदत्तेन तुष्टिमेति शर्नश्चरः ॥ २० ॥

मांसेन तु क्षयस्तुष्टिं रोगाणामधिषो व्रजेत् ।
 मेदसा पूजयेद् रोगं सर्वलोकभयङ्करम् ॥ २१ ॥

चासुकिं क्षीरदानेन पूजयेत् सततं नरः ।
 पूर्वयत् पूजयेद् देवं विश्वकर्माणमीश्वरम् ॥ २२ ॥

सितप्रसूनविन्यासैर्भल्लाटं पूजयेद् बुधः ।
 दधियुक्तेन चान्नेन सोमं सर्वत्र पूजयेत् ॥ २३ ॥

कुबेरं धूपदानेन पूजयेत् सततं नरः ।
 अदितिं च सुवर्णेन पञ्चरपि च पूजयेत् ॥ २४ ॥

अर्कमन्दारमालाभिर्वृषभं च समर्चयेत् ।
 अन्येषामपि देवानामर्चनं धूपसाम्रतैः(?) ॥ २५ ॥

१. 'पुष्पेल्लोप' ख. ग. पाठः । २. 'घ' क. पाठः ।

सर्वपुण्यफलैश्चैपां कार्यं वृद्धिमता सदा ।
 इत्येते वलयः सर्वे शान्त्यर्थं परिकल्पिताः ॥ २६ ॥

शोधने कर्षणे भूमेः साधने रूपकल्पने ।
 यहे प्रवेशने रम्ये तिथिमध्युदयेषु च(?) ॥ २७ ॥

स्कन्धावारनिवेशेषु पुरग्रामनिवेशने ।
 देवालयक्षितिपवेशमनिवेशनेषु
 प्रोक्तान् वलीन् प्रवितरेत् प्रयतः सुरेभ्यः ।
 प्रारम्भमन्यमपि वास्तुगतं चिकीर्षुः
 कुर्वन्निमं विधिमभीप्सितमाजनं स्यात् ॥ २८^१ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुधारे
 वलिदानविधिर्नाम पद्मिंशोऽध्यायः ॥

अथ कीलकमूत्रपातो नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ।

वर्णानां यानि दास्त्रणि कीलकार्यं नियोजयेत् ।
 इदानीं तानि वक्ष्यामि श्रेयःकीर्तिहिताय च ॥ १ ॥

खदिरोदुम्बराश्वत्थशालशाकधवार्जुनाः ।
 अञ्जनः कदराशोकतिनिशारुणचन्दनाः ॥ २ ॥

शिरीषसर्जन्यग्रोधवेणवः कीलकर्मणि ।
 पुन्नामानो द्रुमाः शस्ताः स्तीनामानो विगहिताः ॥ ३ ॥

अश्वत्थः खदिरश्वेतौ विप्राणां वृद्धिकारकौ ।
 रक्तचन्दनवेणूत्थकीलौ क्षत्रस्य पूर्जितौ ॥ ४ ॥

शाकश्च खदिरश्वेति सामन्तानां हिताविमौ ।
 कीलौ शालशिरीषोत्थौ वैश्यानां कीर्तिनौ शुभौ ॥ ५ ॥

शूद्रजातेस्तु तिनिशथवार्जुनसमुद्धवाः ।
 वैश्यवेशमसु सौभाग्यकार्यं च स्युशोकजाः ॥ ६ ॥

१. 'न' क. पाठः । २. 'ग्राम ते', ३. 'लः', ४. 'तः' ख. पाठः ।

न्यग्रोधो वणिजां धान्नि भूमिकर्मण्युदुम्बरः ।
 महामा(त्रीत्रा)स्वैविद्यानां कीलाः सर्जिनिं गृहे ॥ ७ ॥

विप्राणां सर्ववर्णोत्थाः क्षत्रियाणां त्रिवर्णजाः ।
 वर्णद्वयोक्ता वैश्यानां शूद्राणां स्वानुलोमतः ॥ ८ ॥

प्रतिलोमा न कर्तव्याः कीलका भूतिमिच्छता ।
 प्रमाणान्यथ कीलानां निगद्यन्ते पृथक् पृथक् ॥ ९ ॥

द्वात्रिंशद्वृगुलाः कीला विप्राणां स्युः शुभावहाः ।
 क्षत्रियाणां पुनश्चाष्टाविंशत्यद्वृगुलसम्मिताः ॥ १० ॥

चतुर्विंशत्यद्वृगुलाश्च वैश्यानां शुभदायिनः ।
 विंशत्याद्वृगुलैः कीलाः शूद्रजातेस्तु ते हिताः ॥ ११ ॥

षड्वृगुलपरीणाहाः सर्वेष्वेते शुभावहाः ।
 ब्राह्मणक्षत्रियविशां वेदाष्टाश्रुपदश्रयः ॥ १२ ॥

पदश्रयस्तु शूद्रस्य प्रकृतेस्तु यदच्छया ।
 दार्ममांड्जौर्णिकार्पांसं विप्रादीनां यथाक्रमम् ॥ १३ ॥

अर्धपर्वपरीणाहं दृढं सूत्रं तु वर्तितम् ।
 अलाभे स्वस्य सूत्रस्य प्रोक्तादन्यतमं चुधः ॥ १४ ॥

गृहणीयात् सूत्रमन्ये तु गृहणीयुः स्वेच्छयैव ते ।
 इत्थं संभृत्य सम्भारान् गृहभर्ता शुभेऽहनि ॥ १५ ॥

शुक्रपक्षे शुचिः स्नातः स्थपतिश्च सिताम्बरः ।
 गृहस्थानं निमित्तात् तु देवस्थानानि लक्ष्येत् ॥ १६ ॥

कुमुपाक्षतमर्यश्च कर्तव्या गृहदेवताः ।
 आदौ स्थानानि शब्द्कूनां परीक्षेत समन्ततः ॥ १७ ॥

तेषु सर्वेषु कर्तव्यमर्चनं तु यथाविधि ।
 गृहस्य मध्ये सिक्त्वा तु निरूप्य ब्रह्मणः पदे ॥ १८ ॥

गोमयेन सपालिसां कुर्याद् वेदां सुलक्षणाम् ।
 चतुरश्रां चतुर्द्वारामक्षतैः सुप्रतिष्ठिताम् ॥ १९ ॥

१. 'स्वविविद्यानां' ख., 'स्वैविद्यानां' ग. पाठः । २. 'दशान्त्रप';
 ३. 'शिष्येष्यु', ४. 'ना', ५. 'त्ता त्तु', ६. 'पृथक्' ख. ग. पाठः ।

तस्या मध्ये प्रतिष्ठाप्यः कुम्भो हैमोऽथ राजतः ।
 ताम्रको मृन्मयो वापि पूर्वालाभे परः परः ॥ २० ॥
 अकालमूलः सोऽव्यज्ञो जलपूर्णः स्वलहृकृतः ।
 मणिरब्रवद्वालैश्च स्वर्णरूप्येण गमितः ॥ २१ ॥
 प्रतिष्ठा(प्यादियोऽ)क्षतैः पुष्पफलवीजसमन्वितः ।
 वेतेन चन्दनेनैनं चर्चयित्वा समन्ततः ॥ २२ ॥
 तस्योपरिष्टाद् विन्यस्येत् क्षीरवृक्षस्य पछवम् ।
 सुगन्धिनाथं धूपेन धूपयित्वा चतुर्दिशम् ॥ २३ ॥
 वेष्टयेदहतेनैनं शुक्रवस्त्रेण सर्वतः ।
 वास्तुमध्ये यतो ब्रह्मा कुम्भरूप(ं?पः)स तिष्ठति ॥ २४ ॥
 कुम्भस्योत्तरभागे तु कीलकान् स्थापयेद् बुधः ।
 कीलानष्टौ पैरीक्षेत स्थापयेच्च यथाविधि ॥ २५ ॥
 वेतचन्दनलिप्तांस्तात् वेतपुष्प्यर्विभूपयेत् ।
 सालक्कर्कान् सुरभिणा धूपेन च सुधूपितान् ॥ २६ ॥
 ऊर्णीमयेन सूत्रेण त्रिवर्णेनाभिवेष्टयेत् ।
 मधुसर्पिर्दधिक्षीर्मूलभागेषु लेपयेत् ॥ २७ ॥
 अर्चयेत् परशुं सूत्रमष्टीलादीनि सर्वतः ।
 अथोपकरणान्यत्र धूपपुष्पाक्षतादिभिः ॥ २८ ॥
 ततः पूर्वोत्तरे वास्तोर्भागे सप्तार्चिषः पदे ।
 गोमयेन समालिप्ते कुशास्तरणमास्थितः ॥ २९ ॥
 अग्निकार्यं प्रकुर्वीत पुरोधाः शान्तिमेव च ।
 सांवत्सरः शुचिः स्नातः कृतस्नानः(?) समाहितः ॥ ३० ॥
 शङ्कुना साधयेण्टयं सम्यक् तैद्विकाथवा(?) ।
 रात्रिलघ्नं तु नक्षत्रैर्मध्यास्तोदयसंश्रितैः ॥ ३१ ॥

१. 'च', २. 'यवीश्वेत'(?) ख. ग. पाठः । ३. 'सास्ते श्वे', ४. 'काः',
 ५. 'ताः' क. पाठः । ६. 'ष्टीलावानि' ख. ग. पाठः । ७. 'रशुचिः'
 ८. 'ङ्कुतसा', ९. 'तं खाटि' ख. ग. पाठः ।

एवं संसाधयेण्ट्रं यदीच्छेत् सिद्धिमात्मनः ।
 पूजया तुष्टिकारिण्या पूजयेच पुरोहितम् ॥ ३२ ॥

अभ्यचिंते यतस्तस्मिन् ब्रह्मा भवति पूजितः ।
 सांवत्सरस्य कर्तव्या ततः पूजा यथाविधि ॥ ३३ ॥

सांवत्सरेऽचिंते यस्मात् पूजितः स्याद् ब्रह्मस्पतिः ।
 स्थपति पूजयेत् पश्चात् त्वधृतुष्टिचिकीर्षया ॥ ३४ ॥

तदधीनं यतः कर्म शुभं वा यदि वाशुभम् ।
 वेतचन्दनदिग्धांस्तात् वेतपुण्डश्च पूजितात् ॥ ३५ ॥

सदशैरहतैर्वस्त्रैरङ्गुलीयैः प्रपूजयेत् ।
 परिकर्मकरा ये च तान् यथाशक्ति पूजयेत् ॥ ३६ ॥

हेमा वस्त्रादिदानैश्च वाञ्छिर्वा परितोषयेत् ।
 यथा मुमनसस्ते स्युस्तथा कर्तव्यमादरात् ॥ ३७ ॥

ततः स्थपतिराचम्य वलिकर्म समाचरेत् ।
 सूत्रपाते वलिं धीमान् सार्वभौतिकमाचरेत् ॥ ३८ ॥

तस्यालाभे वलिः कार्यो यो भवेत् सोऽभिधीयते ।
 विदधीत चरून् वेतरक्तपीतासितात् पृथक् ॥ ३९ ॥

पायसं कुसरं क्षीरं निष्पावात् वेतमोदनम् ।
 पाविकादैषिरूपांश्च पल्लोङ्गापिकाधृतम् ॥ ४० ॥

दध्योदनं च संमिश्रं देवताभ्यो निवेदयेत् ।
 तिलैर्धृतेन सहितेदेवमण्डिं च पूजयेत् ॥ ४१ ॥

ततश्च पायसं दध्मा ब्रह्मस्थाने निवेदयेत् ।
 ततश्चानुक्रमेणैश्च देवताभ्यो वलिं हरेत् ॥ ४२ ॥

वलिकर्म यथान्यायं कृत्वा च द्विजवाचनम् ।
 स्वशाखीयात् शुचीन् शाहान् पूजयेद् दक्षिणाफलैः ॥ ४३ ॥

ओङ्कारस्वस्तिपुण्याहर्गात्तवादित्रनिस्वरैः ।
 ततो विष्णैः सह स्वामी कुर्यात् तस्य प्रदक्षिणम् ॥ ४४ ॥

१. 'यै' ल. ग. पाठः । २. 'त्रि' ल. पाठः । ३. 'दध्यरू' ल. ग. पाठः ।
 ४. 'मृ' क. पाठः ।

अक्षतान् प्रथमं कुम्भे दापयित्वा द्विजोत्तमैः ।
 ततो दक्षिणपूर्वेण गत्वा पुण्याह्वाचकैः ॥ ४५ ॥
 अहताम्बरसंवीतः शुचिः स्थपतिरासने ।
 निषद्य प्राद्युम्बः शङ्खकुं धृत्वा दक्षिणपाणिना ॥ ४६ ॥
 पश्चादादाय वायेन प्रतिष्ठाप्य च भूतले ।
 मन्त्रानभूत् जपन वीरो हन्यात् परशुना ततः ॥ ४७ ॥
 विशन्तु ते तलं नागा लोकपालास्तथैव च ।
 प्रतिष्ठन्तु गृहं चास्मिन्नायुर्बलकरं भवेत् ॥ ४८ ॥
 प्रहारान् सुस्थिरानष्टौ दद्यात् कीलस्य मूर्धनि ।
 हन्यमाने ततः कीले निमित्तान्युपलक्षयेत् ॥ ४९ ॥
 गोविग्रस्थनागाढ्याः कन्या नृपवरंस्त्रियः ।
 शङ्खदुन्दुभिवंशानां तथा गीतस्य च ध्वनिः ॥ ५० ॥
 आविर्भवति यद्यस्मिन् हन्यमाने प्रभुस्तदा ।
 सततं सुखमामोति शान्त्यैर्वर्येश वर्धते ॥ ५१ ॥
 हतं क्षुतं विपन्नं वा निषेधः सूत्रकीलयोः ।
 पापण्डिनां च सर्वेषां दर्शनं न सुखावहम् ॥ ५२ ॥
 दद्या शुभनिमित्तानि ततः शङ्खकुं निवेशयेत् ।
 हन्यमानो यदा कीलो विशेद् भूमी शनैः शनैः ॥ ५३ ॥
 कर्मसिद्धिर्भवेत् तत्र गृहं रत्नपरिच्छदम् ।
 हन्यमानोऽपि न विशेद् धरित्रीं कीलको यदा ॥ ५४ ॥
 न तत्र कर्मसिद्धिः स्यादनिमित्तं च लक्षयेत् ।
 एकेनापि प्रहारेण यत्र कीलो विशेन्महीम् ॥ ५५ ॥
 ने सिद्धिं याति तत्रौकः कृतं वा नोपसुज्यते ।
 आयस्याष्टीलया हन्यात् काष्टेन कथञ्चन ॥ ५६ ॥
 काष्टेन ताडितः कीलो वह्निदोपकरो भवेत् ।
 अश्मना यदि ताड्येत तदा व्याख्यं प्रयच्छति ॥ ५७ ॥

१. 'कुम्भं' क. पाठः । २. 'ज्व' ख., 'ज्व' ग. पाठः । ३. 'रः' क. पाठः ।
 ४. 'शान्तैश्च' क. शान्त्यैर्वर्येश', ख. ग. पाठः । ५. 'स' ख. ग. पाठः ।

ऐन्द्रीं प्रतिनतः कीलो धनसम्भानकारकः ।
 आग्नेयां प्रैणते कीले भवत्यग्निभयं महत् ॥ ५८ ॥
 याम्यायां मरणं राज्ञां दिशि राक्षसतो भयम् ।
 धननाशस्तु वारुण्यां वायव्यां रोगतो भयम् ॥ ५९ ॥
 सौम्यं सौम्यानते राजप्रसादायेशतो गतः ।
 कीलके कूर्चके जाते पुत्रपौत्रान्वर्यमृद्दृहे ॥ ६० ॥
 परमामृद्दिमामोति धनधान्येत्र वर्धते ।
 हन्यमानो यदा यत्नात् कीलः कश्चिदपि स्फुटेत् ॥ ६१ ॥
 नाशं विद्यात् तस्य पल्न्या ज्येष्ठस्य तनयस्य वां ।
 यदि भज्येत कीलैः स्वात् स्वामिनो जायते वथः ॥ ६२ ॥
 यदा कीलः पतेद्दस्ताद् भ्रंशः स्यात् स्थपतेस्तदा ।
 हस्तभ्रष्टश्च(?) स भवेदष्टीले हस्तविच्युते ॥ ६३ ॥
 सुखेन हन्यमानश्चेत् कीलः स्वस्थो न जायते ।
 अष्टौ प्रहारानपरांस्तस्य दद्यात् तदा पुनः ॥ ६४ ॥
 संगन्धधूपोपहारैः कुर्याच परिषेचनम् ।
 इदं साम महापुण्यं परिचिन्त्य समाप्तः ॥ ६५ ॥
 त्रैशोकं तु जपेद् विद्वान् यावच्छङ्खकभिषेचनम् ।
 गत्वाथ नैऋतीमाशां ततः शङ्खकुं निवेशयेत् ॥ ६६ ॥
 उर्णायिवेन साम्नास्य सम्यक् स्नपनमाचरेत् ।
 वायोदिशं ततो गत्वा तत्र शङ्खकुं निवेशयेत् ॥ ६७ ॥
 अभिषेकं महारत्नसाम्ना तस्य समाचरेत् ।
 अथैशानां दिशं गत्वा शङ्खकुं तस्यां निवेशयेत् ॥ ६८ ॥
 भाग्रेण साम्ना कुर्वीत प्राग्वत् तस्याभिषेचनम् ।
 ततोऽनु सूत्रं वधीयात् सब्यं द्विगुणवेष्टितम् ॥ ६९ ॥
 प्रदक्षिणं प्रसार्येतदुक्तः शङ्खकुकमो यथा ।
 (मैव)ध्यमानं यदा सूत्रं शङ्खकुः किमपि मुश्चति ॥ ७० ॥

१. 'च गते' ल. ग. पाठः । २. 'च' ल. पाठः । ३. 'लस्यात्', ४. 'स्य',
 ५. 'लतुस्थो', ६. 'वर्त्य स' क. पाठः । ७. 'निवेशन' क. 'वेशन' ल. पाठः ।
 ८. 'प्राग्वत् (कार्यं उ)माल' क. पाठः । ९. 'कुः' ल. ग. पाठः ।

तदा पुत्रवर्धं विद्याच्छिन्नं स्वस्वामिमृत्यवे ।
 तस्माद् यत्नः प्रकर्तव्यो यावत् सूत्रं प्रसार्यते ॥ ७१ ॥
 चतुर्णामपि वाहूनां पोषं (?)चिन्नं न दुष्यति ।
 सूत्रं प्रसार्य वितरेच्चरुन् पूर्वं प्रकल्पितान् ॥ ७२ ॥
 स्वेषु स्वेषु ततः स्थानेष्वनेन विधिना बुधः ।
 शङ्कुस्थानेषु दातव्याः सिताद्याश्रवः क्रमात् ॥ ७३ ॥
 प्राग्दक्षिणस्या विद्यशो मन्त्रं चमं हृदा जपेत् ।
 मारुतानां च सर्वेषां मानवानां तथैव च ॥ ७४ ॥
 बलिं तेषु प्रयच्छामि मन्त्रेण परिमन्त्रितम् ।
 रक्तं बलिमुपादाय नैऋत्यभिमुखस्तथा ॥ ७५ ॥
 नैऋत्यथिपतिश्चैव नैऋत्यां ये च राक्षसाः ।
 बलिं तेषु प्रयच्छामि रक्तमोदनमुत्तमम् ॥ ७६ ॥
 कृष्णं बलिमुपादाय गत्वा च दिशमानिलीम् ।
 नमस्ते नागराजाय ये चान्ये तं समाश्रिताः ॥ ७७ ॥
 बलिं तेषु प्रयच्छामि कृष्णमोदनमुत्तमम् ।
 बलिमुदधृत्य हारिद्रैश्यानीमाश्रयेन् दिशम् ॥ ७८ ॥
 नमो रुद्रेषु सर्वेषु ये चान्ये तान् समाश्रिताः ।
 प्रयच्छामि बलिं तेषां हारिद्रैदनमुत्तमम् ॥ ७९ ॥
 एवमेतान् बलीन् सर्वान् यथावत् प्रतिपादयेत् ।
 ततः कुम्भोदकं पुण्यं साम्ना दिव्येन मन्त्रयेत् ॥ ८० ॥
 वामदेव्येन कुर्वीत प्रोक्षणं तेन वास्तुनः ।
 हुमा विश्रादीनामिति निगदिताः शङ्कुघटने
 फलं यच्छङ्कोशं स्फुटमिह निमित्तानि बहुवः ।
 तथा सूत्राताने विधिरनु च मन्त्रैः प्रतिदिशं
 बलिः कीलेषूक्तस्त्रिदशपरितोपाय विधिवत् ॥ ८१ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीमोलदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारायरनान्नि वास्तुशाले
 कीलकसूत्रपातो नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥

१. 'रयेत्' क. पाठः । २. 'मू' ख. ग. पाठः । ३. 'र्वि' क. पाठः ।
 ४. 'येत् द्वि' ख. ग. पाठः ।

अथ वास्तुसंस्थानमातृका नामाष्टात्रिशोऽध्यायः ।

इदानीमभिधास्यामो वास्तुसंस्थानमातृकाम् ।
 निवासहेतवे सम्यक् सर्वकर्मोपजीविनाम् ॥ १ ॥

चतुरश्च समं * साचि दीर्घं वृत्तं च शम्बुकम् ।
 शकटाक्षभगादर्शवज्रकन्थाकृतीनि च(?) ॥ २ ॥

छिन्नकर्ण विकर्णं च शङ्खामं क्षुरसन्निभम् ।
 शैत्याननं कूर्मपृष्ठं सदेशं व्यजनाकृति ॥ ३ ॥

शरावस्वस्तिकाकारं मृदग्नपणवोपमम् ।
 विशर्करं कवन्धामं यवमध्यसमाकृति ॥ ४ ॥

उत्सङ्ग(राम)जदन्ताभे तथा परशुसन्निभम् ।
 विस्त्रावितं च श्वभ्रं च + प्रलम्बं च विवाहिकम् ॥ ५ ॥

त्रिकुण्ठं पञ्चकुण्ठं च परिच्छिवं तथापरम् ।
 दिक्स्वस्तिकामं श्रीदृक्षं वर्धमानसमाननम् ॥ ६ ॥

एणीपदं नरपदं चत्वारिंशत् समाप्तः ।
 क्षेत्राण्युक्तान्यथामीषां विनियोगो विधीयते ॥ ७ ॥

चतुर्थे समे राजा शव्याकारे पुरोहिताः ।
 दीर्घं कुमारकाः सेनापतिर्वृत्तायते वसेत् ॥ ८ ॥

वसेयुः शम्बुकाकारे सर्वे वाहाः सुखार्थिनः ।
 अन्तःपुरं सद्व समे वाणिजाः शकटाकृतौ ॥ ९ ॥

वेश्यास्तु भगसंस्थाने दर्पणाभे सुवर्णकृत् ।
 संस्थानतो वज्रसमे जना नगरगोष्ठिकाः ॥ १० ॥

वसेयुः + शङ्खसंस्थाने क्षेत्रे पुत्राभिलापिणः ।
 छिन्नकर्णे महामात्रा विकर्णे मृगलुभ्यकाः ॥ ११ ॥

शङ्खाभे चैकदृशानो गणाचार्याः क्षुरोपमे ।
 व्र(ता?जा)ध्यक्षः शक्तिसुखे कूर्मपृष्ठे तु मालिकाः ॥ १२ ॥

१. 'संवातं', २. 'संक्षामनं', ३. 'व' ख. ग. पाठः ।

* पूर्वाध्यायोपान्तिमश्लोकादारभ्या चत्वारिंशाध्यायावसानात् क. पाठो शुसः, ख. गयो-
 द्यु विनियोगे शेषम् 'ति षष्ठ्यते । † विनियोगे पूर्वीर्णं त इष्ठते । ‡ उपर्याहं विनियोगम्,

सदंशे सौचिका वाजिपोपका व्यजनोपमे ।
तक्षाणश्च शरावामे स्वस्तिके वन्दिमांगधाः ॥ १३ ॥

पणवामे मृदङ्गामे वेणुतूर्यादिवादकाः ।
विशर्करे तु रथिनः कवन्धप्रतिमे पुनः ॥ १४ ॥

नीचाः श्वपाकाश्च यवप्रतिमे धान्यजीविनः ।
उत्सङ्गे श्रमणा हस्त्यारोहिणो (राग)जदन्तके ॥ १५ ॥

परशुप्रतिमे क्षेत्रे बन्धनागारिणो जनाः ।
विस्ताविणि सुराकाराः श्वभ्रामे कर्मकारिणः ॥ १६ ॥

युगले नापिताः स्वाविवाहव्ये(?)कोशरक्षिणः ।
त्रिकुष्टे पञ्चकुष्टे च वसेयुर्वहिजीविनः ॥ १७ ॥

समन्ततः १ परिच्छब्दे सर्वे मानोपजीविनः ।
दिक्स्वस्तिके तु चैत्यानि कुर्याद् वासांश्च सर्वशः ॥ १८ ॥

श्रीदृष्टप्रतिमे दृक्षान् यज्ञवाटांश्च कारयेत् ।
वर्धमानाङ्गुतिमुखेऽप्येतानेव प्रकल्पयेत् ॥ १९ ॥

एणीपदे तु गणिकाश्चैरान् नरपदोपमे ।
इत्युक्ताः शुभदा वासाः सर्वकर्मोपजीविनाम् ॥ २० ॥

कर्मोपजीविजनवासनिमित्तमेताः ।
क्षेत्राङ्गुतीरभिहिताः प्रविमृश्य तेषाम् ।
वेशमानि कारयति यः स्थपतिर्यथाव-
न्मान्यः स कस्य न भवेदिह भूमिपृष्ठे ॥ २१ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशाखे
वास्तुसंस्था(?)नमातृकानामाष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥

१. 'क्षणांश्च', २. 'मे' ख. ग. पाठः । ३. 'स्वाविवा' ग. पाठः ।

४. 'परिच्छब्दमिति' लक्ष्ये पहितम् ।

अथ द्वारगुणदोषो नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ।

युहाण्युक्तानि सर्वेषामेवं कर्मोपजीविनाम् ।
 वर्णिनां च गृहस्थानां कथ्यन्तेऽतः परं यथा ॥ १ ॥

भल्लाटे धनदे यद्वा चरके पृथिवीधरे ।
 ब्राह्मणस्य भवेद् वेशम् माहेन्द्रद्वारमुत्तमम् ॥ २ ॥

माहेन्द्रेऽकेऽथ सत्ये वा आर्यके^१ वा निकेतनम् ।
 कार्यं गृहक्षतद्वारं क्षत्रियस्य शुभावहम् ॥ ३ ॥

याम्ये वैवस्वते वापि गान्धवेऽथ गृहक्षते ।
 वैश्यस्य भवनं कार्यं द्वारं पुण्याहये शुभम् ॥ ४ ॥

वारुणे पौष्णदन्ते वा यद्वा मैत्रेऽथवासुरे ।
 शुद्रस्य सदनं कार्यं भल्लाटद्वारमुत्तमम् ॥ ५ ॥

विग्राणां प्रालग्नुखं वास्तु गृहं स्याद् दक्षिणाग्नुखम् ।
 वर्धते धनधान्येन पुत्रपौत्रैश्च नित्यशः ॥ ६ ॥

दक्षिणाभिग्नुखं वास्तु भवनं पश्चिमाग्नुखम् ।
 क्षत्रियस्य धनं धान्यं विक्रमश्चेह वर्धते ॥ ७ ॥

वास्तुनः पश्चिमं द्वारं भवनस्योत्तराग्नुखम् ।
 तत्रैषते धनैर्धान्यैः पुत्रपश्चादिभिश्च विद् ॥ ८ ॥

वास्तु स्यादुत्तरद्वारं गृहं पूर्वाग्नुखं तथा ।
 शुद्रस्य कर्मवृत्तिस्तु धनधान्यैविवर्धते ॥ ९ ॥

एकस्यामपि शालायां चत्वारः संप्रकीर्तिः ।
 निवेश्येद्वारभागाश्च कथ्यन्ते च शुभाशुभाः ॥ १० ॥

उत्सङ्गो हीनवाहुश्च पूर्णवाहुस्तथापरः ।
 प्रत्यक्षौयश्चतुर्थश्च निवेशः परिकीर्तिः ॥ ११ ॥

उत्सङ्ग + एवदीक्षाभ्यां(?) द्वाराणां वास्तुवेशमनोः ।
 स सौभाग्यप्रभावद्विधनधान्यजयप्रदः ॥ १२ ॥

१. 'स्ते' ख. ग. पाठः । २. 'येषद्वाराश्च', ३. 'क्षो' ख. पाठः ।

[†]'एकादिकाभ्यां द्वाराभ्याम्' इति पाठः स्वात् ।

यत्र प्रवेशतो वास्तु(?)गृहं भवति वामतः
 तद्दीनवाहुकं वास्तु निन्दितं वास्तुचिन्तकैः ॥ १३ ॥
 तस्मिन् वसन्तलपवितः स्वल्पमित्रोऽल्पवान्धवः ।
 स्त्रीजितश्च भवेत्तित्यं विविधव्याधिषीडितः ॥ १४ ॥
 वास्तुप्रवेशतो यत् तु गृहं दक्षिणतो भवेत् ।
 प्रदक्षिणप्रवेशत्वात् तद् विद्यात् पूर्णवाहुकम् ॥ १५ ॥
 तत्र पुत्रांश्च पौत्रांश्च धनधान्यसुखानि च ।
 प्राप्नुवन्ति नरा नित्यं वसन्तो वास्तुनि ध्रुवम् ॥ १६ ॥
 गृहपृष्ठं समाश्रित्य वास्तुद्वारं यदा भवेत् ।
 प्रत्यक्षायस्त्वसौ निन्द्यो वामावर्तप्रवेशवत् ॥ १७ ॥
 ब्राह्मणो निवसेन्मुख्ये द्विनाम्नि क्षत्रियो वसेत् ।
 वितये निवसेद् वैश्यः शूद्रः सुग्रीवनामनि ॥ १८ ॥
 एते वैशेषिकाः सर्वे वर्णीनामनुपूर्वशः ।
 वास्तुद्वारनिवेशाश्च वासैः सह निरूपिताः ॥ १९ ॥
 यथोत्तरमथोच्यन्ते वर्णानां गृहकल्पनाः ।
 † शूद्रविद्यक्षत्रियाणां च राज्ञां च जयकाङ्क्षिणाम् ॥ २० ॥
 सार्थत्रिभूमि शूद्राणां वेशम् कुर्याद् विभूतये ।
 अतोऽधिकतरं यत् स्यात् तत् करोति कुलक्षयम् ॥ २१ ॥
 वैश्यस्य वर्धयेद् गेहमर्घपञ्चमभूमिकम् ।
 अतिप्रमाणे तत्रास्य धनवन्धुपरिक्षयः ॥ २२ ॥
 क्षत्रियस्य हृष्टं कुर्यादर्घपष्टतलं परम् ।
 सम्पद्वलसमृद्धयै तदतिरिक्तं तु तच्छिदे ॥ २३ ॥
 परं विग्रस्य भवनमर्घसप्तमभूमिकम् ।
 स्वाध्यायाचारभोगार्थमत्युच्चं तु भयावहम् ॥ २४ ॥
 यजन्ते राजसूयादैः क्रतुभिर्येऽवनीश्वराः ।
 तलैरर्धाष्टमैस्तेषां कारयेद् भवनोत्तमम् ॥ २५ ॥

१. 'शि' २. 'च', ३. 'द्रेण वे' ख. ग. पाठः ।

† 'शूद्रविद्यक्षत्रियप्राणां राजाम्' इति पाठः स्यात् ।

आहर्तानेकयज्ञानां राजा राजाधिपथं यः ।
 तस्याप्यर्थाद्यमतलं भवनं सन्निवेशयेत् ॥ २६ ॥

वाजोयेन वा यष्टा यो द्विजः स्यात् समाहितः ।
 गवां कोटियदो यो वा सोऽपि तस्मिन् भैव(बुद्धिर्भीः) ॥ २७ ।

यथाप्रमाणनिर्दिष्टे वसन्तस्ते नृपादयः ।
 प्राप्नुवन्ति परामृद्धिमृद्धिं तु विपर्यये ॥ २८ ॥

सर्पीठतलकं वेशम् मानतः संप्रकीर्तिम् ।
 साधारणेन हस्तेन परं शूद्रस्य विश्वितः ॥ २९ ॥

चत्वारिंशद् विशः पष्टिः क्षत्रियस्य प्रशस्यते ।
 अशीतिर्दिनमुख्यस्य शतहस्ता महीपतेः ॥ ३० ॥

नातः परं नृणाम् चर्वमाणं शस्तमुच्यते ।
 देवदानवदैत्यानां विशाचोरगरक्षसाम् ॥ ३१ ॥

सिद्धगन्धर्वयक्षाणां विधातव्यपतोऽधिकम् ।
 एकभौमादयो नैव गृहं शूद्रस्य विद्यते ॥ ३२ ॥

वैश्यस्य भवनं कार्यमयो ना(न्यैऽय)र्थभूमिकात् ।
 द्विभूमिकादयः कार्यं क्षत्रियस्य न मन्दिरम् ॥ ३३ ॥

सार्धद्विभौमाद् विप्रस्य वितलादपि भूपतेः ।
 हीनप्रमाणादमुतो गृहं यत् कुशिलिपना स्याद् विहितं कथञ्चित् ।

भर्तुर्भिये सिद्धिविनाशनं तत् प्रशस्तशीलादिविपर्ययाय ॥ ३४ ॥

गुणदोपान् प्रवक्ष्यामि द्वाराणां सर्ववास्तुषु ।
 सुस्थितं चतुरश्च च कान्तं स्वद्रव्ययोजितम् ॥ ३५ ॥

ऋग्ये स्वकीयदिग्भागे नद्रस्यं नतथोच्चकैः ।
 नालं नकुञ्जं नाप्यनि(?)पिण्डितं नवहिर्गतम् ॥ ३६ ॥

नाध्यातं नकुञ्जं मध्ये गतं नान्तरकुक्षिषु ।
 नविदुतं नसंक्षिप्तं यत् तत् स्याद् द्वारमृद्धिदम् ॥ ३७ ॥

१. 'टिःप्रदेया वा', २. 'भवेदुभी ।', ३. 'तिर्द्युम्', ४. 'द्विनिवि'(?),
 ५. 'जू', ६. 'स्वे' ख. ग. पाठः ।

पदस्य द्वादशे भागे पदमध्यात् प्रदक्षिणम् ।
 स्थापितं बुद्धिमायाति द्वारं पुष्टि करोति च ॥ ३८ ॥
 रथ्याचत्वरशृङ्गाटवापीकृपाह(?)कुम्भकैः ।
 कुञ्जकोणतरुस्तम्भैर्वनेस्यन्दनादिभिः ॥ ३९ ॥
 यद् विद्धं भवनद्वारं तच्छ्रुभाय न जायते ।
 द्वारं द्वारे प्रविष्टं च कर्तव्यं वित्तेतन(?) ॥ ४० ॥
 पैद्यां प्रवेशयेत्कामन्यद्वारे कदाचन ।
 द्वारं प्रवेशयेत् पैद्यां नारोहणगवाक्षयोः ॥ ४१ ॥
 पक्षद्वारस्य वा नैकां कथञ्चिदपि बुद्धिमान् ।
 न वाह्यगान्तरे द्वारे प्रविष्टं कारयेत् कचित् ॥ ४२ ॥
 विद्वितं हि तथा तत् स्याद् वहुदोषकरं सदा ।
 तोरणं गोपुरद्वारमट्ठो येषां गुहे भवेत् ॥ ४३ ॥
 गृहाणां मौलिकद्वारं श्रोत्रे चैतान् प्रवेशयेत् ।
 द्वारं द्वारस्य कर्तव्यमुपर्युपरि भूमिषु ॥ ४४ ॥
 प्रदक्षिणेन वा कार्यं कार्यं नापरथा पुनः ॥ ४५ ॥
 उपर्युपरिभूमीनां मुखं कुर्यात् प्रदक्षिणम् ।
 नापसव्येन कुर्वीत द्वारमारोहणानि च ॥ ४६ ॥
 यस्यां भित्तौ कुतं पूर्वं तस्यामुपरि कारयेत् ।
 तेथान्यभित्तौ तद्वारं विधातव्यं प्रदक्षिणम् ॥ ४७ ॥
 न मध्ये सज्जनो द्वारं कुर्यादेव पदस्य च ।
 न स्थूले(?) न पदे नापि सिरापाते तदिष्यते ॥ ४८ ॥
 निरंशावस्थितैर्द्रव्यैस्तियक(का?का)न्तैश्च मन्दिरे ।
 मर्मवेषो न दोषाय द्वारवेषोऽथवा कचित् ॥ ४९ ॥
 यवनाद्वालकच्छाया पुरदैवकुलस्य च ।
 न प्रवेश्या गृहद्वारे रथमयः सोमसूर्ययोः ॥ ५० ॥

१. 'नो' ख. ग. पाठः । २. 'ऐन्द्र्यां प्र' ग. पाठः । ३. 'नै', ४. 'र पट्टो'
 ख. ग. पाठः । ५. 'य', ६. 'स्त' ग. पाठः । ७. 'रा दे' ख. पाठः ।

न प्राकारेण कुञ्जेन न विट्ठेन वा पुनः ।
 अन्तर्हितानि दुष्प्रनित द्वारपर्माणि कुत्रचित् ॥ ५१ ॥

अत्युच्चे स्याद् भयं राज्ञो निष्ठे तस्करतो भयम् ।
 कुलपीडा भवेत् कुञ्जे वहिर्याते पराभवः ॥ ५२ ॥

आध्मातेऽत्यन्तदारित्यं कुशमध्ये क्षयो नृणाम् ।
 रथ्याविद्धे भवेद् रोगो मरणं चत्वरेण च ॥ ५३ ॥

शृङ्गाटकेन वैधव्यं दुहितृणां प्रजायते ।
 वाप्या कूपेन वा विद्धे स्यादतीसारतो भयम् ॥ ५४ ॥

कोणान्मृत्युभयं दद्याद् वृक्षे रोगभयं भवेत् ।
 स्तम्भेन श्रियते स्वामी भ्रमेणार्थो न तिष्ठति ॥ ५५ ॥

प्रणालेन महद् दुःखं महाभीतिर्महाकलिः ।
 तस्मात् सर्वप्रयत्नेन द्वारवेदं विवर्जयेत् ॥ ५६ ॥

यस्याग्रतः पृष्ठतश्च द्वारे भित्योर्द्वयोरपि ।
 अन्योन्यं भिद्यते यस्मिन्ब्रकगत्याश्रिते उभे ॥ ५७ ॥

वास्तु तद् भिन्नदेहास्त्वं भिन्नस्वामिविधायकम् ।
 न तत्र जायते वृद्धिः स्थापितस्य न कस्यचित् ॥ ५८ ॥

गृहकुशौ कुतं द्वारं सर्वरोगभयङ्करम् ।
 पूर्वद्वारं तु माहेन्द्रं प्रशस्तं सर्वकामदम् ॥ ५९ ॥

गृहकुशतं तु विहितं दक्षिणेन शुभावहम् ।
 गन्धर्वमथवा तत्र कर्तव्यं श्रेयसे (तैस)दा ॥ ६० ॥

पश्चमेन प्रशस्तं स्यात् पुष्पदन्तं जयावहम् ।
 भल्लाटमुत्तरे द्वारं प्रशस्तं स्याद् गृहेशितुः ॥ ६१ ॥

एकाशीतिपदे तस्मिन्ब्रतुरश्रपदेऽपि वा ।
 द्वारोऽप्य(प)दगास्तासां त्रूपो वहन्यादितः फलम् ॥ ६२ ॥

हुताशभीतिः स्त्रीजन्म भूत्यर्थः प्रियताँ नृपे ।
 क्रोधे चानुतत्ता(?) पुंसः क्रौर्यं स्यात् पूर्ववत् क्रमात् ॥ ६३ ॥

१. 'त्विष्टेक', २. 'वा' ख. ग. पाठः । ३. 'वा' ख. पाठः ।

सुता(पि?सि)प्रैष्यनीचत्वे भक्षयानसुतदिक्कृत् ।
 रोदं कृतघ्नमवसं याम्यतः सुतवीर्यहृत्(?) ॥ ६४ ॥
 सुतोपपीढा रिपुद्विरर्थसुतानवासैस्तनयार्थसम्पत् ।
 स्वास्तिर्वशंसाद् भयमर्थनाश उक्तः क्रमादित्यपरोन्मुखेषु ॥ ६५ ॥
 बन्धव्यसत्त्वे(?) रिपुद्विरर्थसुतासिरड्या गुणसम्पदश्च ।
 सुतार्थलविधिपयात्मजेन दोषास्त्रिया नैक्तदिङ्मुखेषु ॥ ६६ ॥
 गुणाश दोषाश यथावदेते निरूपिता द्वारसमाश्रिता ये ।
 तात् शिल्पविच्छास्त्रविदां वरिष्ठो विज्ञाय पूज्यत्वमुपैति लोके ॥ ६७ ॥
 इति महाराजाधिराजश्रीमोऽदेवविरचिते समराङ्गवृत्तवारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
 द्वारगुणदोषो नाम एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

अथ पीठमानं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ।

देवानां मनुजानां च पीठमानमथोच्यते ।
 पीठं कनीयो भागं च सार्थभागं तु मध्यमम् ॥ १ ॥
 द्विभागमुच्चमं तत् स्यादेषा पीठसमुच्चित्तिः ।
 महेश्वरस्य विष्णोश्च ब्रह्मणश्चोत्तमं भवेत् ॥ २ ॥
 इतरेषां च देवानां कर्तव्यं तत्र धीमता ।
 ईश्वरस्य यथाकामं पीठं कार्यं विचक्षणः ॥ ३ ॥
 यस्मिन् स्थाने विधातव्यो ब्रह्मा विष्णुस्तथैव च ।
 ईश्वरः सर्वतः कार्यो न दोषस्तत्र विद्यते ॥ ४ ॥
 इतरेषां तु देवानां पीठं भागं समुच्चित्तम् ।
 यस्य येन विभागेन वास्तुमानं विधीयते ॥ ५ ॥
 तस्य तेनैव भागेन पीठोच्छ्रायो विधीयते ।
 मनुजानां च पीठानि वेश्मनां देवपीठकैः ॥ ६ ॥

१. 'पा' ग. पाठः । २. 'र्थं', ३. 'र्थं', ४. 'तश्च', ५. 'उके' ख.
 ग. पाठः ।

तुल्यानि कुर्यादुपरि कृता वृद्धिकराः सुराः ।
 पुरमध्ये तु कर्तव्यं ब्रह्मणो गृहमुत्तमम् ॥ ७ ॥

चतुर्मुखं च तत् कार्यं यथा पश्यति तत् पुरम् ।
 अधिकं सर्ववेश्यभ्यस्तथा राजगृहादपि ॥ ८ ॥

राजवेशमाधिकमपि शस्यतेऽन्यसुरालयात् ।
 पञ्चमो लोकपालनां राजा श्रेष्ठतमो यतः ॥ ९ ॥

एवमेतानि देवानां पीठान्युक्तान्यशेषतः ।
 चातुर्वर्णस्य पीठानि ब्रूमो विप्राद्यनुकमात् ॥ १० ॥

पद्मिंशद्वगुलोत्सेधं पीडं विप्रस्य शस्यते ।
 इतरेषां तु वर्णानां हस्यं स्याच्चतुर्वगुलम् ॥ ११ ॥

चातुर्वर्णस्य पीठानि भुद्धके विप्रो गृहाणि च ।
 त्रयाणां श्वत्रियो वैश्यो द्वयोः शुद्धः कमात् स्वकम् ॥ १२ ॥

एवं विभागं पीठानां स्थपतिः परिकल्पयेत् ।
 हितं कारयितुर्वीच्छन् नृपतेश समृद्धये ॥ १३ ॥

प्रमाणे स्थापिता देवाः पूजाहीश भवन्ति हि ।
 प्रमाणं पीठानामिदमभिहितं ब्रह्ममुरजि-

त्पुरारीणामत्रापरदिविपदां यच्च नियतम् ।
 ततो विप्रादीनामपि निगदितं यत् तदस्तिलं
 यैर्थौचित्यायोज्यं श्रियमभिलपद्धिः स्थपतिभिः ॥ १४^१_२ ॥

इति महाराजाचिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गसूत्रधारापरनामि वास्तुशास्रे
 पीठपानं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥

अथ चयविधिर्नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ।

इदानीमभिधीयन्ते चयस्येह गुणागुणाः ।
 सुविभक्तः समश्वारुश्चतुरश्चैवः शुभः ॥ १ ॥

१. ‘णाम्बु धी’, २. ‘णामन्यजातीनां यहं शूद्रकमाशकम्’, ३. ‘यथौ’, ४.
 ‘त्यायोज्यं’ ख. ग. पाठः । ५. ‘श्वभश्वयः’ क. पाठः ।

असंभ्रान्तमसन्दिग्धमविनाशयन्यवहितम् ।
 अनुचेममनुद्वृत्तमकुड्जं नच पीडितम् ॥ २ ॥
 सपानखण्डमृज्वन्तमन्तरङ्गं तथैव च ।
 सुपार्थं सन्धिसुशिष्टं सुप्रतिष्ठं सुसन्धि च ॥ ३ ॥
 अजिह्वं चेति चेयस्य गुणा विशतिरित्यमी ।
 एतेषां वैपरीत्येन दोषाणामपि विशतिः ॥ ४ ॥
 दक्षिणं तु यदा कुड्यं विचिनोति वहिर्मुखम् ।
 तदा व्याधिभयं विद्यान्मृत्युदण्डं च निर्दिशेत् ॥ ५ ॥
 पश्चिमं तु यदा कुड्यं विचिन्वन्ति वहिर्मुखम् ।
 धनहानिं^१ तदा विद्याद् दस्युभ्येष्य भयं भवेत् ॥ ६ ॥
 उत्तरं तु यदा कुड्यं विचिनोति वहिर्मुखम् ।
 कर्त्तारं स्वामिनं वापि व्यसनं प्रापयेत् तदा ॥ ७ ॥
 प्राच्यं वहिर्मुखं कुड्यं चिनोति स्थपतिर्यदा ।
 राजदण्डभयं तत्र निर्देष्टव्यं विचक्षणैः ॥ ८ ॥
 एतदेव फलं त्रूयात् पतिते दलिते तर्था ।
 यस्य प्रागदक्षिणः कर्णः प्रवर्तेत वहिर्मुखः ॥ ९ ॥
 स्यात् तत्राप्रिभयं घोरं गृहमर्तुश संशयः ।
 गच्छेद् वहिर्मुखः कर्णो यदा दक्षिणपश्चिमः ॥ १० ॥
 कलहोपद्रवस्तत्र स्याद् भार्यायाश्च संशयः ।
 पश्चिमोत्तरकर्णे तु सम्भवाते वहिर्मुखे ॥ ११ ॥
 पशुवाहनपुत्राणां संशयस्तत्र जायते ।
 प्रागुत्तरो यदा कर्णः प्रचीयेत वहिर्मुखः ॥ १२ ॥
 गुरुणां संशयस्तत्र गोवृषादेश्च जायते ।
 विशालं यदि जायेत सर्ववाहुषु चिन्वतः ॥ १३ ॥
 कर्णिकासमसंस्थानं तैद् भवेन्मल्लिकाकृति ।
 न ताहशो भवेदायस्तत्र यादग् व्ययो भवेत् ॥ १४ ॥

१. 'इयं च ग ख, 'शं च ग' ग. पाठः । २. 'मत्तम्' ख. ग. पाठः ।
 ३. 'ु', ४. 'नि', ५. 'मि', ६. 'दा', ७. 'य' क. पाठः ।

चयस्य तस्य दोषेण गृ(हीही)क्षीणः पलायते ।
चिन्वतो यदि संक्षिप्तमत्यर्थं तत्र जायते ॥ १५ ॥

ब्रह्मसंज्ञं तदुदिष्टं तत्र राजभयं भवेत् ।
विस्तृतं यदि बालेषु संक्षिप्तं चैव मध्यतः ॥ १६ ॥

तनुमध्यं तदुदिष्टं तत्र विद्यात् क्षुधो भयम् ।
उच्चितं यदि कर्णेषु परिहीणं च मध्यतः ॥ १७ ॥

निर्गतं नाम तद् विद्यात् तत्र चौरभयं भवेत् ।
कर्णेषु परिहीणं चेदुच्छितं चापि मध्यतः ॥ १८ ॥

कूर्मोन्नतमिति इयं सर्वदोषभयावहम् ।
विषमोन्नतकर्णेषु निर्दिशेद् द्रविणक्षयम् ॥ १९ ॥

प्राज्यान्वयानं तद् विद्यात् समेषु विहितेषु च ।
इत्येते चीयमानस्य गुणदोषाः प्रकीर्तिः ॥ २० ॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन चयकर्म प्रयोजयेत् ।
उदकेन समं नीत्वा सम्यग्निशयकारणम् ॥ २१ ॥

त(त्राःस्मा)हते न चान्यत् स्यान्निशयार्थं चयस्य च ।
तस्माज्जलेन वलयं गृहणीयात् पूर्वमाहतः ॥ २२ ॥

ततः सुतादिते सूत्रे चयं कुर्याद् विचक्षणः ।
द्विगुणां क्षेत्रमानस्य रञ्जुं कृत्वा तदन्तयोः ॥ २३ ॥

योऽसौ(?) कार्यां ततस्तस्यां पादोनक्षेत्रमानतः ।
दयान्निशिङ्गनं कीलौ क्षेत्रगर्भान्तगामिनौ ॥ २४ ॥

निधाया(र्याः?य)सकौ तस्याः प्रान्तस्थौ योजयेत् तयोः ।
निरञ्जनाभिकृष्टायां पादोनक्षेत्रसंमितम् ॥ २५ ॥

भुजगत्या भवेद् रञ्जुस्तस्यामिषानुमानतः ।
चिङ्गं दयात् स कर्णः स्यादेवं दोषान् प्रसाधयेत् ॥ २६ ॥

१. 'ऐ', २. 'वा तेषु', ३. 'न' क. ख. ग. पाठः । ४. 'या'ख.
ग. पाठः । ५. 'र', ६. 'यामकौ', ७. 'णा' क. पाठः । ८. 'तः',
९. 'ङ', १०. 'न' ख. ग. पाठः ।

भूरि नांच्छादनं दद्यात् भिन्न्यात् तत्र चेष्टकाः ।
 विषमस्थाः कुठरेणच्छित्त्वा ताः कल्पयेत् समाः ॥ २७ ॥

यथा न च स्पृशेत् सूत्रं विचिन्नीत तथा बुधः ।
 कुर्ज्ये च सादिमध्यान्ते हीष्टेकां निपौतयेत् ॥ २८ ॥

यदा सर्वपरिक्रान्तं तलं चोद्धाटितं भवेत् ।
 तदा नैकत्र कुर्वीत पर्यायेण विचक्षणः ॥ २९ ॥

उद्घाटनं स्तंराणां (?) तु यदीच्छेत् सिद्धिमात्मनः ।
 तत्र तत्र चयं कुर्याद् यदि संविद्वकं हितम् ॥ ३० ॥

दुर्विहं हि भवेत् तेन तस्मात् तत् परिवर्जयेत् ।
 उपरिष्टात् समं पार्श्वे शुजं कुर्याद् विचक्षणः ॥ ३१ ॥

समन्ताद् रुचकच्छिन्नश्चयो भिन्निषु पूजितः ।
 तस्मात् प्रयत्नः कर्तव्यश्चयकर्मणि नित्यशः ॥ ३२ ॥

इति भाषितरूपितमाचरतश्चयकर्म यथाविधि शिलिप्तुतम् ।
 भवतीह यशो भूत्वा विततं गृहमर्तुरपि प्रचुरो विभवः ॥ ३३ ॥

इति महागजाविधिज्ञामोजे विविचिते गमराङ्गपूत्रवायपरनाम्नि यात्तुशाखे
 चयविधिर्नार्मैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

अथ शान्तिकर्मविधिर्नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ।

इदानीमभिधास्यामो विधानं शान्तिकर्मणः ।
 यथावदिष्टा दिक्पालान् हुत्वा शान्तीर्यथाक्रमम् ॥ १ ॥

स्त्रपयेत् कर्णिकां कुम्भैः सहिरण्यविचक्षणः ।
 सर्वगन्धानुलिप्तां च माल्यदामविभूषिताम् ॥ २ ॥

कृतमाल्यानिवसितां (?) मूले च मधुलेपिताम् ।
 दोषप्रशमनार्थाय तां मूलेषु निखातयेत् ॥ ३ ॥

१. 'मा' ल. पाठः । २. 'द्विष्टमे', ३. 'योजये', ल. ग. पाठः । ४. 'न' ल. 'त'
 ग. पाठः । ५. 'दुर्विहं हि', ६. 'भयं कु' ल. ग. पाठः । ७. 'कु+क'
 क, 'हुचक' ग. पाठः । ८. 'का' ल. ग. पाठः । ९. 'स' क. पाठः ।

मधुकुम्भमरिष्टं च शेवालं च विधानवित् ।
 वाचयित्वा तु विषेन्द्रान् कृतपुण्याद्यमङ्गलान् ॥ ४ ॥

स्थापयेत् कर्णिकाः सर्वाः स्थपतिः प्रयतः शुचिः ।
 एतेन विधिना कर्म चातुर्बर्णस्य कारयेत् ॥ ५ ॥

कर्णिका रोपिता यत्र पुनरुत्पाद्य रोप्यते ।
 न तन्निष्पद्यते वेशम् स्वामी चात्र विनश्यति ॥ ६ ॥

निखातं तु यदा दारुच्छिघ्नते ताड्यते पुनः ।
 तन्माशो धनधान्यस्य स्वामिनश्चात्र सर्वथा ॥ ७ ॥

बल्लीनिपीडितं दारु प्रवेशे चेन्निखन्यते ।
 आशीविषभयं धोरं तस्मिन्नुत्पातलक्षणम् ॥ ८ ॥

उत्थाने कर्णिका रक्ष्या सर्वसत्त्वाभिर्धर्षणात् ।
 नवे कर्मण्यशकुना मृगव्यालसरीसुपाः ॥ ९ ॥

कर्णिकामधिरोहनित दोषास्तत्र वदेदमून् ।
 कृतापीडां परिहतां यद्यारोहन्ति वायसाः ॥ १० ॥

गृहिणस्तत् प्रवासः स्यादन्नं पानं च हीयते ।
 मयूरे तदगृहं राजा हरेत् पञ्चान्दतः परम् ॥ ११ ॥

वराङ्गे जायते व्याधिः कोकिलैर्द्युदतः परम् ।
 काकोलैस्त्रीणि वर्षाणि जायते सुमहद् भयम् ॥ १२ ॥

शुके स्युः कलहाद्याँनि नच निष्पद्यते गृहम् ।
 कुकुटेऽग्निभयं विद्याद् राजतो वा महद् भयम् ॥ १३ ॥

सारिकायां तु दौःशीलयं स्त्रीणां गृहपतेस्तथा ।
 सर्परूपे(ते?तु)विश्वेन गृहं निष्टां न गच्छति ॥ १४ ॥

स्त्रीपुंसयोः कुलिङ्गे तु जायते पापकारिता ।
 पारावते तु जायेते स्त्रीपुंसौ गुरुतलपगौ ॥ १५ ॥

विडाले तु कुलं दासैः सह रोगर्निपीड्यते ।
 ज्वलनो वा जलं वापि हस्ती वा हन्ति तदगृहम् ॥ १६ ॥

१. 'च', २. 'द्वी' ख. ग. पाठः । ३. 'ज्यानि' ख. पाठः । ४. 'सर्प',
 ५. 'न' क. पाठः ।

आरण्यैः शकुनैरेतत् स्यद् वर्षाद् धर्षणे फलम् ।
 युनां च जायते मृत्युर्मध्यासङ्गे धनक्षयः ॥ १७ ॥
 दुःस्वप्नदर्शनं धूके वालानां मरणं तथा ।
 त्रस्तभीते निलीने तु राजा शून्यं हरेद् गृहम् ॥ १८ ॥
 यदा त्वये प्रदशयेत् धूम्रः कर्णगतोऽपि वा ।
 अप्रिदृहति तत् क्षिप्रं विद्युद् वा हनित मन्दिरम् ॥ १९ ॥
 यत्रारोहति गृहस्तद् द्विजाङ्गिसृष्टमाचरेत् ।
 कृत्वा हलशैः कूटं ततो वीजानि वापयेत् ॥ २० ॥
 गावश्चात्र प्रदुद्देवज् शान्तिकानि च कारयेत् ।
 मेघेऽभिवृष्टे भूयोऽपि तत्र कुर्वीत मन्दिरम् ॥ २१ ॥
 येषु येषु गृहाङ्गेषु मधुनः सञ्चयो भवेत् ।
 तस्याङ्गस्य वर्धं वृयात् प्रेषिण्यां चाप्युपद्रवम् ॥ २२ ॥
 तस्माद्देतोः शिखाशेषु मुकुटान् प्रणिधापयेत् ।
 यावन्न रोपयेत् सौम्यं तावद् रक्षेत् समन्ततः ॥ २३ ॥
 अभिलीनं तु शकुनर्नहि किञ्चित् प्रशस्यते ।
 तस्मात् प्रयत्नतो रक्षेदुत्पातात् प्राणुदीरितात् ॥ २४ ॥
 भङ्गे गृहाणां दारूणां शान्तिहोमोऽथ कथ्यते ।
 इन्द्रकीलो महाकृटः पृष्ठवंशोचरौ धेरौ ॥ २५ ॥
 प्रग्रहो(?)लिन्दपादौ वा स्वामिनं ग्रन्त्युपद्रवाः ।
 तुलास्थपत्यः(?) कूटं वा वेदिका कर्णपालिका ॥ २६ ॥
 नेत्रं कपोतपालिश्च हनप्रविष्टं कुरुम्बिनी(?) ।
 अन्वग्राः पं(क्षिः?क्ष)वंशाश्च मल्काः सकुमारकाः ॥ २७ ॥
 गोपानस्यो मृगालयश्च स्थपिताः स्वकुमारिकाः(?) ।
 परिघा द्वारपक्षाश्च भ्रातरं ग्रन्त्युपद्रवाः ॥ २८ ॥

१. 'रुणां च ग. पाठः । २. 'हि' क. पाठः । ३. 'क्षेत् प्रातान्', ४.
 'दाहतात्' ख. ग. पाठः । ५. 'व', ६. 'काः', ७. 'रि' ख. ग. पाठः ।
 ८. 'ट' क. पाठः । ९. 'यज्ववं' ख. ग. पाठः ।

संयुक्तं सङ्ग्रहो हन्ति निकृष्टांश्वाधरो धरः ।
 स्थौर्ण्यानि प्रतिपोको वा हन्युरिष्टान् परिच्छदान् ॥ २९ ॥

उ(दैप)विर्भगिनीं हन्यादथवा परिचारकान् ।
 पुंसां पुच्चामभिर्देवैः स्त्रीणां स्त्रीनभिर्भवेत् ॥ ३० ॥

उपश्रातो हत्तेर्नित्यं द्रव्याणां तु नपुंसकैः ।
 भूलिका स्त्रीविनाशाय गृहनाशाय वेधनम् ॥ ३१ ॥

कीला वा सन्धिपालिर्वा मित्रनाशाय दुष्यति ।
 नवे गृहे नवं दारु क्रियमाणमयो कृतम् ॥ ३२ ॥

आयोज्यमानं युक्तं वाँ न्यूनसंवत्सरं स्थितम् ।
 भज्यते देहनाशाय स्फुटत्येथ विभज्यते ॥ ३३ ॥

गृहं ब्राह्मणसात् कृत्वा रवैरालिख्य चापरम् ।
 नवैवस्त्रैः परिच्छाद्यं पुनर्भिर्यानि(?)कारयेत् ॥ ३४ ॥

दग्धे भिक्षे प्रचलिते विनते चिद्युता हते ।
 विरुद्धे दलिते सन्ने सर्वत्रौपाधिभिः स्मृताः ॥ ३५ ॥

शान्तयो विविधं हुत्वा ब्राह्मणान् स्वस्ति वाच्य वा ।
 स्थूणिका भज्यते यस्य कीर्तिस्तस्योपहन्यते ॥ ३६ ॥

चन्द्रसूर्यौ यजेत् तत्र ततः शाम्यति पातकम् ।
 तद्विधं वृक्षमानीय पुनस्तां प्रति कारयेत् ॥ ३७ ॥

एवं कृते सुखी स स्यात् कीर्तिशायुर्धुवा भवेत् ।
 मछुको भज्यते यस्य पौरुषं तस्य हन्यते ॥ ३८ ॥

इष्टानभसनक्षत्रं(?) प्रायश्चित्तं समाचरेत् ।
 तद्विधं वृक्षमानीय प्रति कुर्वीत मछुकम् ॥ ३९ ॥

एवं कृत्वा सुखी स स्याद् वैलं चास्याभिवर्धते ।
 पृष्ठवंशस्य भज्जेन गृही वन्धमवाप्नुयात् ॥ ४० ॥

१. 'विर्भगिना' क, 'भग्नि ह' ल. ग. पाठः । २. 'चू', ३. 'स्वान्यू'
 ल. पाठः । ४. 'न्त्य', ५. 'य भेद्यतितु कार', ६. 'कड़ी' ल. ग. पाठः ।
 ७. 'मु' क. पाठः । ८. 'स्य तस्य पुम्पोऽपहन्य', ९. 'घनं चा' ल. ग. पाठः ।

राजराजं यजेत् तत्र प्रायश्चित्तं तथाचरेत् ।
 सुखी भवति तत् कृत्वा सर्वतश्चाभिवर्धते ॥ ४१ ॥

सर्वेषु स्वस्ति वाच्याश्च ब्राह्मणा दक्षिणाक्षतैः ।
 वारणो भज्यते यस्तु ज्येष्ठं पुत्रं स (वाँज्य?वाध)ते ॥ ४२ ॥

पृथ्वीधरं यजेत् तत्र प्रायश्चित्तं तथाचरेत् ।
 तद्विधं वृक्षमानीय पुनस्तं प्रति कारयेत् ॥ ४३ ॥

सुखी भवति कृत्वैवं पुत्रैश्चापि विवर्धते ।
 संग्रहो भज्यते यस्तु कुलज्येष्ठं स (वार्ध?वाध)ते ॥ ४४ ॥

पितृन् देवान् यजेत् तत्र प्रायश्चित्तं तथाचरेत् ।
 सुखी भवति कृत्वैवं प्रीयन्ते पितरस्तथा ॥ ४५ ॥

स्थूण्यं तु भज्यते यस्य तनयस्तस्य वाधयते ।
 देवानेव यजेत् तत्र प्रायश्चित्तं तथाचरेत् ॥ ४६ ॥

तद्विधं वृक्षमानीय तत् स्थूण्यं प्रति कारयेत् ।
 सुखी भवति कृत्वैवं पुत्रैश्चापि विवर्धने ॥ ४७ ॥

उपधी व्यथते यत्र तत्रामात्यो विनश्यति ।
 यजेत् वासवं तत्र प्रायश्चित्तं तथाचरेत् ॥ ४८ ॥

आनीय तद्विधं वृक्षमुपर्धि प्रति कारयेत् ।
 एवं कृते भवेत् सौख्यममात्यैश्च विवर्धते ॥ ४९ ॥

कायस्तु व्यथते यस्यै प्रेष्यस्तस्योपहन्यते ।
 यक्षं तत्र यजेद् देवं प्रायश्चित्तं तथाचरेत् ॥ ५० ॥

तद्विधं काष्टमानीय कायं तं प्रति कारयेत् ।
 एवं कृते सुखी स स्यात् प्रेष्यैरपि विवर्धते ॥ ५१ ॥

तुला तु व्यथते यस्य व्यथतेऽस्य कुडुभिनी ।
 यजेत् मेदिनीं तत्र प्रायश्चित्तं तथाचरेत् ॥ ५२ ॥

१. 'ता' ख. ग. पाठः । २. 'चाल्यते' ख., 'पाल्यते' ग. पाठः । ३.
 'समाच', ४. 'वर्धयेत्' क. पाठः । ५. 'स्याः प्रेषस्त' ख. ग. पाठः ।

तद्विधं वृक्षमानीय स्थापयेत् तां स्वलङ्घुताम् ।
 ततस्त्वन्याः क्रियाः पश्यन् कारयेन्मतिमान् नरः ॥ ५३ ॥

वधूमिव नर्वैर्वस्त्रैः प्रतिच्छाद्य स्वलङ्घुताम् ।
 ब्राह्मणान् वाचयेत् स्वस्ति ततस्तां प्रति कारयेत् ॥ ५४ ॥

सुखी भवति कृत्वैवं धनेनित्यं विवर्धते ।
 कर्णिकास्वान्तरस्थूणामालापादोऽथ भज्यते ॥ ५५ ॥

तदगृही दुःखमाग्रोति तस्मिन्नुत्पातलक्षणे ।
 आनीय स्थपति तत्र प्रज्ञावन्तं वहुश्रुतम् ॥ ५६ ॥

तत्र वास्तुविमागेन यो देवः स्याद् विनिश्चितः ।
 तस्मै देवाय जुहुयात् प्रायश्चित्तं च कारयेत् ॥ ५७ ॥

सुखी भवति कृत्वैवं सर्वतथाभिवर्धते ।
 युगं तु व्यथते यत्र तत्र ह्यात् पशुपीडनम् ॥ ५८ ॥

यजेत तस्मिन्नीशानं प्रायश्चित्तं च कारयेत् ।
 तद्विधं वृक्षमानीय युगं तत्र प्रति कारयेत् ॥ ५९ ॥

एवं कृते सुखं तस्य पशुद्विद्व जायते ।
 तुलया अगयोर्वापि(?) पादो यस्य प्रभज्यते ॥ ६० ॥

आर्युहीनिर्भवेत् तत्र वलदेवं प्रपूजयेत् ।
 प्रायश्चित्तं ततः कृत्वा पुनस्तं प्रति कारयेत् ॥ ६१ ॥

सुखी भवति कृत्वैवं कुदुम्यी शान्तिकं च तत् ।
 द्वाराङ्गं यस्य माहेन्द्रं हिंस्यते नर्वकर्मणि ॥ ६२ ॥

इन्द्रं तत्र यजेद् देवं प्रायश्चित्तं तथाचरेत् ।
 गृहक्षतस्य द्वाराङ्गे पूजयेद् यममेव त(त्वैम्) ॥ ६३ ॥

पुष्पदन्तस्य द्वाराङ्गे वरुणं तत्र पूजयेत् ।
 द्वाराङ्गं यस्य भल्लाटं हिंस्यते नर्वकर्मणि ॥ ६४ ॥

१. 'स्त्वमाः कि', ख. ग. पाठः । २. 'त्रितिमान्', क. पाठः । ३. 'धान्यैष्व व'
 ख. ग. पाठः । ४. 'तथाचरेत्' क. ग. पाठः । ५. 'आ' ख. ग. पाठः । ६. यहानिः,
 ७. 'कर्म तत्' ख. ग. पाठः । ८. 'नद्रे' क. पाठः ९. 'त्वा' ख. ग. पाठः ।

सोमं तत्र यजेद् देवं प्रायश्चित्तं सपाचरेत् ।
 सुखी भवति कृत्वैवं कुदुम्बी शान्तिकं^१ च तत् ॥ ६५ ॥

स्थूणाराजस्य यस्याग्रं वकं दक्षिणतो भवेत् ।
 शरीरं व्यथते तत्र प्रतिसंबत्सरं स्थिरम् ॥ ६६ ॥

पृष्ठतो दीर्घशोकः स्यादुत्तरेण धनक्षयः ।
 पूर्वतो राजदण्डः स्यात् तस्मात् तद् कल्पु शस्यते ॥ ६७ ॥

चत्वार्यज्ञानि हिंस्यन्ते शरीरा ये च वेशमनः ।
 तुला वा पृष्ठवंशो वा धार(ण्यां?णी)चोत्तराम्बरः ॥ ६८ ॥

उक्तांस्तत्र वलीन् कुर्यात् प्रायश्चित्तं तथाचरेत् ।
 एवं धन्यं शिवं पुष्टिप्रजावृद्धिकरं भवेत् ॥ ६९ ॥

इत्थं निमित्तानि गृहाश्चित्तानि
 ज्ञात्वा प्रदृष्टात् शकुनांश्च सर्वान् ।
 शान्तिं प्रकुर्वन् पृथगुक्तरूपां
 प्राप्नोति कीर्तिं सुखपर्यमायुः ॥ ७० ॥

इति गृहायजाविरचन्निमोडेवविरचन्ने समराङ्गणसूत्रधारायपरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
 शान्तिकर्मविधिर्नाम द्वित्त्वारिंशोऽध्यायः ॥

अथ द्वारभृगफलं नाम त्रित्वारिंशोऽध्यायः ।

यदत्र नवकर्मोक्तं तद् यज्ञेषु गृहेषु च ।
 ज्ञेयं ग्रामे पुरे वापि नगरे पत्तने तथा ॥ १ ॥

संस्थानमाकृतिर्मानं ह्रासेवृद्धी च वाहुषु ।
 एकमेव विजानीयात् सर्वत्रैव विचक्षणः ॥ २ ॥

यूपस्यैव निमित्तानि दारुकर्मणि निर्दिशेत् ।
 पातं पते विजानीयात् तक्षणं तक्षणेन च ॥ ३ ॥

१. ‘कर्म त’ ल, ‘कर्मवित्’ ग, पाठः । २. ‘ते।’ क, पाठः । ३. ‘थोत्त’
 ल, ग, पाठः । ४. ‘हृ’ क, पाठः । ५. ‘सं’ ल, ग, पाठः ।

युपोच्छायमिव ब्रूयाद् दारुणामपि चोच्छ्रयम् ।
 भज्जेन भज्जो नि(दिं?द्रें)श्यः समाधिश्च समाधिना ॥ ४ ॥
 नवकर्मणि यत् स्त्रिगः सुगन्धिं प्रियदर्शनम् ।
 गम्येहरं(?) मनुष्याणां धन्यं तदभिनिर्दिशेत् ॥ ५ ॥
 पुरं वा यदि वा ग्रामो गृहं वा यदि निष्पभम् ।
 आयासबहुलं तद्वितीयस्त्रिलक्षणैभवेत् ॥ ६ ॥
 परिध्वस्तोपमं रुक्षं नवकर्मणि यद् भवेत् ।
 ऋमं रोगं च शोकं च तस्मिन् वेशमनि निर्दिशेत् ॥ ७ ॥
 जेनेन च यदाकीर्णं निश्छायमिव लक्ष्मीश्यते ।
 कुदुम्बी तत्र पण्डासान् नात्र जीवेन्न संशयः ॥ ८ ॥
 यच्छून्यमप्यशून्याभं वेशम् वा यदि वा पुरम् ।
 सर्वकामगुणैर्युक्तं ध(न?न्यं) तदभिनिर्दिशेत् ॥ ९ ॥
 पूर्वो नगरभागश्चेद् रम्यः स्यात् प्रियदर्शनः ।
 प्रियभार्या मनःस्वास्थ्यं धनं धान्यं च भूपतेः ॥ १० ॥
 पूर्वदक्षिणभागश्चेत् पुरस्य प्रियदर्शनः ।
 महद् यशस्तदामोति राजा हेम च पुष्कलम् ॥ ११ ॥
 पुरस्य दक्षिणो भागो यदा रम्यस्तदा भवेत् ।
 राज्ञः सेनापतिप्राप्तिर्थनं धान्यं च पुष्कलम् ॥ १२ ॥
 रमणीयो यदा भागः पुरदक्षिणपञ्चिमः ।
 अर्थसंपत् तदा राज्ञः प्रजाहृदिश्च जायते ॥ १३ ॥
 पुरपञ्चिमभागेन रमणीयेन पार्थिवः ।
 पुत्रबान्धवथान्याद्यः संप्रामोन्युच्चतिं पराम् ॥ १४ ॥
 पञ्चिमोत्तरभागे तु रमणीये नराधिपः ।
 प्रेष्यैः पुत्रवाहनैश्च वृद्धिमेत्युत्तरोत्तराम् ॥ १५ ॥
 उत्तरे रमणीये तु पुरभागे नरेश्वरः ।
 शत्रून् विजयते सर्वान् वर्धते च पुरोहितः ॥ १६ ॥

१. 'य', २. 'बान् धनवानाद्यः' ख. ग. पाठः । ३. 'तिनरोत्तमः ।'
 क, 'युत्तरोत्तरः' ख. पाठः ।

यदि पूर्वोत्तरो भागः पुरस्य प्रियदर्शनः ।
 तत्राभ्युत्तरमानन्दं क्षिप्रं राज्ञो विनिर्दिशेत् ॥ १७ ॥
 निष्पत्तस्य पुरादेयो भागो न स्थानमनोरमः ।
 तस्य तस्यैव भागस्य परिहाणि विनिर्दिशेत् ॥ १८ ॥
 नवे यदि पुरद्वारे कपाटं प्रविशीर्यते ।
 स्त्रीनामयेयमन्यद् वा स्त्रीनाशं तद् विनिर्दिशेत् ॥ १९ ॥
 देवागारे पुरद्वारे प्राकाराद्वालकेषु च ।
 हस्तिशालाभशालासु रथशाला(स्तैस्व)यापि वा ॥ २० ॥
 कोष्ठामारायुथागारे निमित्तं तु शुभाशुभम् ।
 यदि किञ्चित् प्रदृश्येत राज्ञस्तदभिनिर्दिशेत् ॥ २१ ॥
 भज्ञो यत्रोर्ध्वंशस्य तत्र राजा विनश्यति ।
 अगलापीलिकाकुञ्चीभज्ञे च नवकर्मणि ॥ २२ ॥
 ग्रामे नश्यन्ति चेतानि तदा ग्रामो विनश्यति ।
 दिगुत्थितं तु राष्ट्राणां गृहार्थेषु कुडम्बिनाम् ॥ २३ ॥
 नवकर्मणि यत्किञ्चिद् भज्यते यदि वा नमेत् ।
 विद्वस्ते वा स्फुटे वापि कुडम्बिमरणं ध्रुवम् ॥ २४ ॥
 कलं सर्वनिमित्तेषु शुभं वा यदि वाशुभम् ।
 संवत्सरं परं ग्रामं नवकर्मण्ठते गृहे ॥ २५ ॥
 परिसंवत्सरान्ते च पुराणमिति निर्दिशेत् ।
 तुम्बिका भज्यते यत्र नवकर्मणि निष्ठिते ॥ २६ ॥
 श्रेष्ठा तु महिला तत्र पदमिर्मासैर्विनश्यति ।
 एवमेव नवं यस्य सदनं तु विनश्यति ॥ २७ ॥
 ग्रेर्यदासांदिविश्वासात् तद् विनाशयति ध्रुवम् ।
 पृष्ठवंशो नवो यस्य नवकर्मणि भिन्थते ॥ २८ ॥

१. 'त् ॥ देवागारे पुरद्वारे पुज्ञाम यदि भज्यते । तत्र राजा विनश्येत स्त्रीनाम यदि
 तत् क्षिप्तः ॥ 'देवा', ख. ग. पाठः । २. 'पि' क. ३. 'शुचीम ख. 'शुची' ग.
 पाठः । ४. 'विभज्ञे वा' ख. ग. पाठः । ५. 'गुद्यका', ६. 'क्ष' क. पाठः ।
 ७. 'सिविश्वास्त्वास्तद् विभास्य' ख. ग. पाठः । ८. 'तं वि' क. पाठः । ९. 'भज्य-
 ते' ख. ग. पाठः ।

कुटुम्बी मियते तत्र गृहं संवत्सरात् परम् ।
 प्रेष्याश्चात्र विनश्यन्ति दीर्घमाणे विशेषतः ॥ २९ ॥

लुमासु मिथ्यमानासु कन्यामरणमादिशेत् ।
 मुण्डकेषु विनष्टेषु सुहृदेस्य विनश्यति ॥ ३० ॥

अनुपृष्ठेषु भिन्नेषु पुत्राणां मरणं ध्रुवम् ।
 विषत्तौ मुण्डगोथानां माता तस्य विनश्यति ॥ ३१ ॥

नागपाशकभज्ञे तु भृत्यानां मरणं भवेत् ।
 कपाटे भ्रातुमरणमर्गलायां स्त्रिया वधः ॥ ३२ ॥

सुतस्य चार्गलापार्थे विनष्टे परणं भवेत् ।
 द्वारवन्धे विनष्टे तु शीघ्रं कुर्यात् कुलक्षयम् ॥ ३३ ॥

इन्द्रकीलो हहो यस्य भज्ञमायाति मूलतः ।
 सपुत्रपशुवर्गस्य तस्य वृयात् कुलक्षतिम् ॥ ३४ ॥

तोरणं भज्यते यस्य द्रव्यं तस्य विनश्यति ।
 गृहभर्तुश्च मरणं विदशैरवधारयेत् ॥ ३५ ॥

वास्तुमध्ये विनष्टे तु कुलवृद्धो विनश्यति ।
 सोपानं भिद्यते यत्र नवकर्मणि निष्टिते ॥ ३६ ॥

तस्य प्रेष्याश्च गावश्च हिरण्यं च विनश्यति ।
 वेदिका भज्यते यस्य भार्या तस्य विनश्यति ॥ ३७ ॥

गवाक्षस्तु विनश्येत् पैदृस्तम्भोऽपि वा हहः ।
 गजशुण्डाय भिन्नोऽथः कपोतालयथवा नवा ॥ ३८ ॥

स्थपनीपट्टिकाश्च ख्वीविनाशं तदादिशेत् ।
 विट्ठलस्य तुलाया वा भज्ञे जाते कथञ्चन ॥ ३९ ॥

शालास्तम्भस्य वा नाशे भार्या तस्य विनश्यति ।
 स्तम्भशीर्पं यदि भ्रश्येत् स्फुटेत् स्तम्भोऽपि वा हहः ॥ ४० ॥

१. 'बी' ख. ग. पाठः । २. 'प्यमानो वि' क. पाठः । ३. 'भज्यमा',
 ४. 'त्त' ख. ग. पाठः । ५. 'पु', ६. 'व्य' क. पाठः । ७. 'वृयात्', ८. 'यम्',
 ९. 'भज्यते', १०. 'पुटस्त' ख. ग. पाठः । ११. स्वंद्राय 'ख, 'स्वंडयथ' ग.
 पाठः । १२. 'न्रञ्च', १३. 'च' ख. ग. पाठः । १४. 'भवेत्' क. पाठः ।
 १५. 'मा' ख. पाठः । १६. 'वै', १७. 'ऐ', ख. ग. पाठः ।

भज्यते प्रतिमोक्तो वा स्वामिनस्तु वथो भवेत् ।
 भज्ञे तु भज्ञवाहिन्याः कुलवृद्धवथो भवेत् ॥ ४१ ॥
 आकाशंतलके पुत्राः प्रतिच्छन्ने कुटुम्बिनः ।
 विनष्टे च विनश्यन्ति पदभिर्मासैर्संशयः ॥ ४२ ॥
 प्रासादमण्डले भग्ने भग्नासु वलभीषु च ।
 भार्या कुटुम्बिनस्तस्य नाशमायात्यसंशयः ॥ ४३ ॥
 प्रलीनो वा विलीनो वा प्रासादो यस्य भज्यते ।
 प्रलीने भूत्यमृत्युः स्याद् विलीने तु धनक्षयः ॥ ४४ ॥
 मिथ्रे विनष्टे प्रासादे हीयन्ते सर्ववृद्धयः ।
 मरणं वा भवेत् तत्र कुष्ठव्याधिं च निर्दिशेत् ॥ ४५ ॥
 येषु स्थानेषु भज्ञो वा विनतिर्वा प्रकीर्तिं ।
 उपद्रुतिर्विधातो वा तैपां फलमपीरितम् ॥ ४६ ॥
 स्त्रिघानि यदि दृश्यन्ते तानि दाव्यान्वितानि च ।
 धनमायुश्च हर्षं च पूर्वोक्तानां तदादिशेत् ॥ ४७ ॥
 कर्णिकाभ्यन्तरी स्थूणा शालापादोऽथ हीयते ।
 यदि तद् दुःखमाप्नोति गृहभर्ता न संशयः ॥ ४८ ॥
 संप्रधार्य च मेधावी वलावलमतन्द्रितः ।
 निर्दिशेन् वलमाप्नोति धनमायुर्यशस्तथा ॥ ४९ ॥
 एवमादिकनिमित्तमूच्यते संप्रधार्य मतिमान वलावलम् ।
 स्पष्टमादिशति योऽत्र शास्त्रवित् कीर्त्तिवित्त(+धृभव)नानि सोऽनुत्ते ॥
 इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाश्चिं वास्तुशास्त्रे
 द्वारमङ्गफलं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

अथ स्थपतिलक्षणं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ।

स्थापत्यमूच्यते॒स्माभिरिदानीं प्रक्रमागतम् ।
 ज्ञातेन येन ज्ञायन्ते स्थपतीनां गुणागुणाः ॥ १ ॥

१. 'शे' क. पाठः । २. 'यते', ३. 'वृद्धिदः' स. ग. पाठः । ४. 'वि' क. पाठः ।
 ५. 'तः' क. ख. ग. पाठः । ६. 'ये' स. ग. पाठः । ७. 'अयनव', ८. 'ननानि' क. पाठः ।

शास्त्रं कर्म तथा प्रव्वा शीलं च क्रियान्वितम् ।
 लक्ष्यलक्षणयुक्तार्थशास्त्रनिष्ठो नरो भवेत् ॥ २ ॥
 सामुद्रं गणितं चैव ज्योतिषं छन्दं एव च ।
 सिराङ्गानं तथा शिलं यन्त्रकर्मविधिस्तथा ॥ ३ ॥
 एतान्यज्ञानि जानीयाद् वास्तुशास्त्रस्य बुद्धिमान् ।
 शास्त्रानुसारेणाभ्युद्य लक्षणानि च लक्षयेत् ॥ ४ ॥
 प्रसिद्धशास्त्रदृष्टान्तवास्तुज्ञानं प्रसाधयेत् ।
 वास्तुनः ससिरावंशैर्मवेषैः सुनिश्चितैः ॥ ५ ॥
 वास्तुद्वारक्षणान् भूयः सर्वान् जानाति शास्त्रतः ।
 यस्तु शास्त्रमविज्ञाय प्रयोक्ता स्थपतिर्भवेत् ॥ ६ ॥
 हन्तव्यः स स्वयं राजा मृत्युवद् राजहिंसकः ।
 मिथ्याज्ञानादहङ्कारी शास्त्रे चैवाकुतश्चमः ॥ ७ ॥
 अकालमृत्युर्लोकस्य विचरेद् वसुधातले ।
 यस्तु केवलशास्त्रज्ञः कर्मस्वपरिनिष्ठितः ॥ ८ ॥
 स मुश्ति क्रियाकाले इष्टा भीरुरिवाहवम् ।
 केवलं कर्म यो वेत्ति शास्त्रार्थं नाथिगच्छति ॥ ९ ॥
 सोऽचक्षुरिव नीयेत विवशोऽन्येन वर्त्मसु ।
 कर्म वास्तुविषेः स्थानं मानमुन्मानमेव च ॥ १० ॥
 क्षेत्रजा(ति?नि) च कर्माणि लुमालेखा(च?श)तुर्दश ।
 च(त्वा?तु)रो गणित्काच्छेदान् वृत्तच्छेदेषु सप्तसु ॥ ११ ॥
 सुश्छिष्टं सन्धिसन्धानैरधरोत्तरसंयुतम् ।
 वाशरेखान्वितं शुद्धं यो जानाति स कर्मवित् ॥ १२ ॥
 शास्त्रकर्मसमर्थोऽपि स्थपतिः प्रज्ञया विजा ।
 फलेयुः कर्मभिरन्याभिः(?) स्यान्निर्मद इव द्विपः ॥ १३ ॥

१. 'विचो न', २. 'शल्यं य', ३. 'येन च', ४. 'वे' ख. ग. पाठः ।
 ५. 'त्वे' ल. पाठः । ६. 'हि' क. पाठः । ७. 'दा वृ' ख. ग. पाठः । ८. 'च्छा'
 क. ख. ग. पाठः । ९. 'प्य' ख. ग. पाठः ।

प्रत्युत्पन्नमतिर्यः स्याद् वाह(तः?कः) स्थपतिस्तथा ।
कर्मकाले न मुखेत् स प्रज्ञानेनोपबृहितः ॥ १४ ॥

अप्रज्ञेयं दुरालोकं गृहार्थं वहुविस्तरम् ।
प्रज्ञापोतं समाख्यं प्राज्ञो वास्तुनिरं (?) तरेत् ॥ १५ ॥

ज्ञानवाँशं तथा वाम्मी कर्मस्त्रपि च निष्ठितः ।
एवं युक्तोऽपि न श्रेयान् यदि शीलविवर्जितः ॥ १६ ॥

रोषाद् द्वेषात् तथा लोभान्मोहाद् रागात् तथैव च ।
अन्यचिन्त्यत्वमायाति दुःशीलानामविक्षयात् (?) ॥ १७ ॥

शीलवान् पूजितो लोके शीलवान् साधुसम्मतः ।
शीलवान् सर्वकर्मार्हः शीलवान् प्रियदर्शनः ॥ १८ ॥

शीलांधाने परं यत्रमा(धि?ति)ष्टेत् स्थपतिः सदा ।
ततः कर्माणि सिध्यन्ति जनयन्ति शुभानि च ॥ १९ ॥

तथाचाष्टविविं कर्म ज्ञेयं स्थपतिना सदा ।
आलेख्यं लेख्यजातं च दारुकर्म चयस्तथा ॥ २० ॥

पापाणसिद्धहेमां च शिल्पं कर्म तथैव च ।
एभिर्गुणः समायुक्तः स्थपतिर्याति पूज्यताम् ॥ २१ ॥

स्थापत्यमङ्गेरिदपृष्ठभिर्यथतुविविं वेत्ति विशुद्धवुद्धिः ।
स शिल्पिनां संसदि लब्धपूजः परां प्रतिष्ठां लभते चिरायुः ॥ २२ ॥

इति महाराजाधिराजश्चोभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रवारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे

स्थपतिलक्षणं नाम चतुश्त्वारिंशोऽध्यायः ॥

१. 'स्थ' ख. पाठः । २. 'सुर्ननाचरे' ख. ग. पाठः । ३. 'बी' क. पाठः ।
४. 'ल' ख. ग. पाठः । ५. 'धेष्वे स्थ' ग. पाठः । ६. 'च', क. पाठः ।
७. 'कल्पे धर्म' ख. ग. पाठः । ८. 'य' ग. पाठः ।

अथ अष्टाङ्गलक्षणं नाम पञ्चत्वारिंशोऽध्यायः ।

प्रोक्तं चतुर्था स्थापत्यं वास्तुतच्चस्य सिद्धये ।
 ब्रूमस्तदेव चेदानीपह्नः संयुक्तमष्टभिः ॥ १ ॥
 तेष्वज्ञं प्रथमं प्रोक्तं वास्तुपुंसो विकल्पना ।
 पुरस्य विनिवेशस्तु द्वितीयं द्वारकर्म च ॥ २ ॥
 रथ्याविभागः प्राकारनिवेशोऽग्नालकस्य च ।
 विनिवेशः प्रतोलीनां विभागस्थानकानि च ॥ ३ ॥
 प्रासादश्च तृतीयं स्थाचतुर्थं तु ध्वजोच्छ्रितिः ।
 पञ्चमं नृपतेर्वेशम् स्थानान्तरविभक्तिं च ॥ ४ ॥
 चातुर्वर्ण्यविभागश्च गृहभागश्च पष्टकम् ।
 सप्तमं यजमानस्य शालायां मानवीरितम् ॥ ५ ॥
 यज्ञवेदीप्रिमाणं च कोटिहोमविभिस्तथा ।
 अष्टमं राजविविरनिवेशो दुर्गकर्म च ॥ ६ ॥
 यो वेद्यंज्ञान्यमूल्यं एष सोऽत्र स्थपतिसत्तमः ।
 यशो मानं स लभते पूजयते च नराधिष्ठैः ॥ ७ ॥
 अशास्त्रज्ञमकर्मजं स्थपति यः प्रयोजयेत् ।
 न तस्य वास्तु सिद्धेत् सिद्धमप्यतुखावदम् ॥ ८ ॥
 तस्मात् कर्म च शास्त्रं च यो वेत्ति द्वितीयं नरः ।
 अष्टाङ्गमपि यो वेत्ति स राज्ञः स्थपतिर्भवेत् ॥ ९ ॥
 अज्ञानि पूर्वमुक्तानि वास्तुशास्त्रोक्तविस्तरात् ।
 तेषु प्रासादिकं यत् तद् वक्ष्यामोऽग्रे सविस्तरम् ॥ १० ॥
 अथाज्ञं सप्तमं ब्रूमो यत् तद् यज्ञेषु युज्यते ।
 विनिविष्टे पुरे पूर्वं कल्पेषु सुरधामम् ॥ ११ ॥
 दिविः दक्षिणपूर्वस्यां यज्ञार्थं पापयेद् भुवम् ।
 निवेशं तत्र कुर्वीत चतुरथं समन्ततः ॥ १२ ॥

१. 'त्येतान्य' स. ग. पाठः ।

आयामेन विधातव्यो हस्ताष्टादशविस्तृतः ।
 पूर्वद्वारं विधातव्यमादित्यस्य पदे तुष्टैः ॥ १३ ॥
 तस्य पश्चिमभागे तु यजमानकुटी भवेत् ।
 पोदशायामविस्तारा प्राह्मुखी सा शस्यते ॥ १४ ॥
 यजमानकुटीद्वारे देवता या च कीर्तिंता ।
 ततः प्रभृति पूर्वेण प्राग्वंशं पैरिकल्पयेत् ॥ १५ ॥
 वेदिमध्ये स्थितं तत् स्यान्मानं वेदाश्च शस्यते ।
 पूर्वापरेण पद्मनिशत् कर्तव्याः प्रक्रमा तुष्टैः ॥ १६ ॥
 एकत्रिशत् कुटीभागे मध्येऽष्टादश कल्पयेत् ।
 प्रक्रमाः स्युः शिरस्थाने विंशतिशत्तुरुचर्तराः ॥ १७ ॥
 पुरुषस्य शिरस्तत्र प्राग्वंशे तु प्रतिष्ठितम् ।
 तस्मात् पूर्वोत्तरं ज्ञेयं सर्वयज्ञेषु पूजितम् ॥ १८ ॥
 वेदन्तरं तु कर्तव्यं शकटं येन गच्छति ।
 तस्मादुत्तरवेदी या कार्या प्रत्युत्तरेण तु ॥ १९ ॥
 द्विहस्तायामविस्तारो होमश्वेष्टः कुतोऽत्र हि ।
 प्राग्दक्षिणेन संस्थानं यजमानस्य शस्यते ॥ २० ॥
 कटिमात्रं सदा कार्यं नाभिमात्रमथापि वा ।
 ततोऽधिकेन दुर्भिक्षमनावृष्टिश्च जायते ॥ २१ ॥
 एषा यज्ञक्रिया प्रोक्ता कोटिहोमोऽथ वक्ष्यते ।
 पुरस्याभ्यन्तरे भागे हुताशस्य पदे तथा ॥ २२ ॥
 तस्मिन् स्थाने विधातव्यः कोटिहोमः सदा पुरे ।
 लक्षहोमश्च कर्तव्यो नित्यो नैमित्तिकोऽपि वा ॥ २३ ॥
 अथ भूमिवशात् स्थानं कदाचिन्नैव लभ्यते ।
 सर्वतो ब्रह्मणः स्थानाद्वामस्थानं निवेशयेत् ॥ २४ ॥
 ऐशानीं दिशमाश्रित्य ब्राह्मणवेदपारगैः ।
 पुरश्चरणतत्त्वज्ञैः पद्कर्मनिरतैः सदा ॥ २५ ॥

१. 'प्रतिक' क. पाठः । २. 'कर्तव्यते', ३. 'रो' क. ख. ग. पाठः ।
 ४. 'रा:' क. ग. पाठः ।

नित्यं शान्तिपर्विंग्रे राजा तु विजयी भवेत् ।
 नोपसर्गस्तु जायन्ते न च लङ्घीः पुरं त्यजेत् ॥ २६ ॥

अनावृष्टिमयं नास्ति सुभिक्षं जायते सदा ।
 उक्तं याज्ञिकमङ्गं तु सर्वाङ्गेभ्यः प्रशस्यते ॥ २७ ॥

सर्वं स्थपतिना ज्ञेयं तत्त्वज्ञानाह्यणः सह ।
 एकाशीतिपदेनैव यज्ञभूमिं तु मापयेत् ॥ २८ ॥

निवेशं शिविरस्याथ कथयामोऽङ्गमष्टमव् ।
 यदा तु नृपतिः स्थानात् स्वाद् यात्राभिमुखो भवेत् ॥ २९ ॥

शिविरस्य निवेशं च तत्त्ववेत्ता परीक्षयेत् ।
 अर्थशास्त्रविधिज्ञो वा स्थपतिर्वा प्रकल्पयेत् ॥ ३० ॥

शिविरं चतुरश्चं स्याद् द्वन्तं वृत्तायतं कचित् ।
 चतुरश्चायतं वापि विषमं वा कचिद् भवेत् ॥ ३१ ॥

भूमिभागवशात् क(ल्पं?ल्प्यं)महारथ्योभयान्वितम् ।
 शिविरस्य तु चत्वारि कुर्याद् द्वाराणि यवतः ॥ ३२ ॥

स्थया सार्धा तु सेनायाः पुरस्थ्याप्रमाणतः ।
 मित्रे स्थानं नरपतेः कार्यं पृथ्वीधरेऽपि वा ॥ ३३ ॥

आर्यमणे वा विधातव्यं पदे वैवस्व(तो?ते)ऽथवा ।
 निवेशो मन्त्रिणां कार्यः पश्चि(मो?मे) राजवेशमनः ॥ ३४ ॥

पुरोहितस्योत्तरतो बलाध्यक्षस्य पूर्वतः ।
 अन्तःपुरं दक्षिणतो भाष्टागारं तथैव च ॥ ३५ ॥

गृहं प्रविशेतो राज्ञो न्यस्येद् दक्षिणतो हयान् ।
 वामे च दन्तिनो न्यस्येदेवं सैन्यं निवेशयेत् ॥ ३६ ॥

बाह्यतः परिखां तस्य कारयेद् राजवेशमनः ।
 हस्तांस्त्रीश्चतुरो वापि पञ्चहस्तानथापि वा ॥ ३७ ॥

चतुर्ष्यष्टिपदाख्येन विभाज्यं शिविरं बुधैः ।
 निवेशः शिविरस्योत्तो दुर्गकर्माथ कथ्यते ॥ ३८ ॥

१. 'वै' क. ख. ग. पाठः । २. 'शि', ३. 'व्यं' क. पाठः ।

दुर्गं तु पदिधं प्रोक्तं राज्ञां तु विजिगीपताम् ।
 अबदुर्गं पङ्कदुर्गं वा वनदुर्गेरिणे तथा ॥ ३९ ॥
 पार्वतीयं मैहादुर्गमिति कल्प्यानि पार्थिवैः ।
 सर्वेषामेव दुर्गाणां पार्वतीयं प्रशस्यते ॥ ४० ॥
 दुर्गस्थानविभागोऽत्र पोडशाख्येन कीर्तिः ।
 मध्ये तु ब्रह्मणः स्थानमसम्बाधं विधीयते ॥ ४१ ॥
 ब्रह्मस्थानं समारभ्य हम्यं पञ्चशयाः स्मृताः ।
 उपरथ्या त्रिहस्ता तु केषास्तु द्विशयाः स्मृताः ॥ ४२ ॥
 सन्निकृष्टा विधातव्या दुर्गा?र्गरथ्या समन्ततः ।
 द्वारं रथ्याप्रमाणेन कार्यं नात्यन्तमुच्छ्रितम् ॥ ४३ ॥
 परचकसमं वाधं^(१) सुरक्षं तत् सदा भवेत् ।
 दुर्गेभरगृहस्थानं ब्रह्मणः परितो भवेत् ॥ ४४ ॥
 वैवस्वतेऽथवार्यम्णे मैत्रे पृथ्वीधरेऽपि वा ।
 यथा पुरे पुरा प्रोक्तं स्थानं दुर्गेऽपि तत् तथा ॥ ४५ ॥
 वीराः शुभा खदोपाश्च भूमिपालस्य संमताः ।
 धनुर्वेदविधिश्चाश्च कृताख्याः शास्त्रपारगाः ॥ ४६ ॥
 दुर्गं स्थाप्याः सुरूपाश्च वहवश्च वरमित्रियः ।
 अन्तःपुरं च कोशं च कुमारांश्चात्र वासयेत् ॥ ४७ ॥
 एवं दुर्गविधानस्य समाप्तोऽयमुदाहृतः ।
 इत्यष्टाङ्गो वास्तुशास्त्रस्य सारः संक्षेपेण स्पष्टमस्माभिरुक्तः ।
 यत्र ज्ञाते शिलिपवेद् वास्तुविद्यापाठोनाथं सन्तरन्त्यग्रयासात् ॥ ४८^१_२ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रवाचायपरनाम्नि वास्तुशास्त्रे

अष्टाङ्गलक्षणं नाम पञ्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥

१. 'ओ' ग. पाठः । २. 'प', ३. 'गु', ४. 'थ' ख. ग. पाठः ।
 ५. 'बृद्धास्तु वि' क. पाठः ।

अथ तोरणभृगादिशान्तिको नाम पदचत्वारिंशोऽध्यायः

पुरातनं नवं वापि कृतं वाथार्थनिर्मितम् ।
 देवतानां नृपाणां च तोरणं निष्पतेद् यदि ॥ १ ॥
 भज्यते दक्षते वाथ नपते सज्जतेऽथवा ।
 दवविद्युज्जलाद्यैर्वा हन्यते तत् कदाचन ॥ २ ॥
 तत्र दोपान् प्रवक्ष्यामो दोपप्रशमनानि च ।
 तोरणं निष्पतेत् सर्वं विरो वास्य कथञ्चन ॥ ३ ॥
 राङ्गां सेनापतीनां च प्रतीहारपुरोधसाम् ।
 प्रधानांश्चगजानां च विप्रपौरजनस्य च ॥ ४ ॥
 तत्र मृत्युभयं विद्याद् दुर्भिक्षं चापि निर्दिशेत् ।
 तस्मात् प्रशमहेत्वर्थं विधिं कुर्यादिम् बुधः ॥ ५ ॥
 ऋत्विग्भव्रीहमण्ठीरः स्थपतिः सपुरोहितैः ।
 रात्रौ होमवलिं कुर्याद्वगरे तु चतुर्दिशम् ॥ ६ ॥
 कर्णचत्वरशृङ्गाटेष्ववनीपालवेशमनि ।
 स्थानेष्वेतेषु विप्राद्यवेदिं निष्पाद्य साक्षताम् ॥ ७ ॥
 कलशैद्रव्यगन्धैश्च श्वेतमाल्याम्बरैर्दृष्टाम् ।
 तत्र होमं प्रकुर्वति शान्तिकं वलिमेव च ॥ ८ ॥
 एवं प्रशमयेत् सर्वं यत्किञ्चिद् दुरितोत्थितम् ।
 तोरणं भज्यते चेत् तद्राष्ट्रमज्जं विनिर्दिशेत् ॥ ९ ॥
 अस्य प्रशमहेत्वर्थं पूर्वोक्तं कारयेद् विधिम् ।
 तदेवैकं प्रदक्षेत तोरणं नगरे(र्य?य)दि ॥ १० ॥
 तदा वह्निभयं ब्रूयाद् राष्ट्रस्य नगरस्य च ।
 सवाह्नाभ्यन्तरं विप्रैर्विधिमेनं प्रयोजयेत् ॥ ११ ॥

१. 'नृषीणां च' ख. ग. पाठः । २. 'पत्यते य' क, 'नृपतेष्यदि' ग. पाठः । ३.
 'नानां ग' ख. ग. पाठः । ४. 'वी', ५. 'तदा चैकं' क. पाठः । ६. 'रै', ग. पाठः ।

नते वा शीर्णभग्ने वा व्याधिषीढां विनिर्दिशेत् ।
 होमं वलिं च कुर्वीत पुनःसंस्कारमस्य च ॥ १२ ॥
 वातेन विद्युता वापि तोरणं यदि भज्यते ।
 तस्मिन् रोगाः प्रवर्तन्ते कुलपीडाधनक्षयाः ॥ १३ ॥
 शान्तिकर्म प्रकुर्वीत ततः शान्तिकरं भवेत् ।
 एवमादौ कृते पथात् पुनः संस्कारयेद् बुधः ॥ १४ ॥
 पूर्वावयवनिर्माणाद् विशिष्टं रचयेत् पुनः ।
 दृढसन्धिनिर्गृहं च दृढद्रव्यसमन्वितम् ॥ १५ ॥
 विविधं रूपकर्माद्यं सुसंस्थानं मनोरमम् ।
 अकुञ्जमनतं चैव पूर्वोत्कृष्टतरं तथा ॥ १६ ॥
 नियुक्ते तु पुनः शान्तिं ब्राह्मणान् वाचयेत् ततः ।
 पुराणे वा नवे वाय कृते वार्धकृतेऽथवा ॥ १७ ॥
 प्रासादे वा शूहे वापि कपोतः प्रविशेद् यदि ।
 तत्र दोषाः प्रपथन्ते शान्तिकर्म तथैव च ॥ १८ ॥
 कालमूर्तिः कपोतश्च पापमूलकरण्डकम् ।
 विहङ्गापशदो हीनः कृष्णचारी विहङ्गमः ॥ १९ ॥
 चतुर्विधः समाख्यातो मुनिभिः स तपोधनैः ।
 श्वेतो विचित्रकण्ठश्च विचित्रोऽन्योऽथ कृष्णकः ॥ २० ॥
 कपोतो भवने यस्य श्वेतवर्णो विशेत् कचित् ।
 कीर्त्तिविद्याधनं पुण्यं शीघ्रं च नयते क्षयम् ॥ २१ ॥
 नित्यं रोगाः प्रवर्धन्ते शिशुपीडा च जायते ।
 चित्रकण्ठो हरेज्ञायां पुत्रान् सर्वान् विचित्रकः ॥ २२ ॥
 सर्वाः सिद्धीश्च कृष्णाङ्गः प्रेदुर्ध्यं च कुलं हरेत् ।
 रोगाः सर्वेऽपि वर्धन्ते विपदो व्यसनानि च ॥ २३ ॥
 वन्धनानि च जायन्ते प्रविष्टे तु कपोतके ।
 तस्मद् यत्परो भूत्वा प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ २४ ॥

१. 'यः' क. ग. पाठः । २. 'इहं' ल. ग. पाठः । ३. 'न' ग. पाठः । ४. 'कलि-
सूत्रं क' क. पाठः । ५. 'यु' क. पाठः । ६. 'ष्व' ग. पाठः ।

स्नातखिकालशुद्धात्मा सोपवासो जितेन्द्रियः ।
देवपूजार्चनरतो नित्यं दानपरः शुचिः ॥ २५ ॥

यवीन्नप्रायभोजी च नित्यं होमपरायणः ।
गुरुविग्रहतथैव वेतमालयाम्बरस्तथा ॥ २६ ॥

यही सगृहिणीकस्तु व्रतमेतत् समाचरेत् ।
वेतके पञ्चरात्रं च चित्रकण्ठे दशैव तत् ॥ २७ ॥

चित्रे पञ्चदशाहानि कृष्णे दिवसविंशतिः ।
व्रतस्थेन तु कर्तव्यमग्निकार्यं मनोरमम् ॥ २८ ॥

यथालाभं समादाय तस्य देहं सपिञ्चकम् ।
निकृन्तेत् खण्डखण्डानि विभागाष्टशतानि तेम् ॥ २९ ॥

घृतप्लुतानि पुण्यानि मधुलाजान्वितानि च ।
पञ्चवारुणसंज्ञेन वह्निकार्ये कृतेऽक्षतैः ॥ ३० ॥

ततश्च मांसं जुहूयाद्वयपात्रेण मन्त्रवित् ।
हुते क्रव्ये ततः क्षीरं दधि मध्वाज्यमेव च ॥ ३१ ॥

संपूजयेद् ग्रहान् सर्वान् ब्राह्मणान् वाचयेत् ततः ।
स्ववित्तपादं वेते तु विश्रेभ्यः प्रतिपादयेत् ॥ ३२ ॥

वित्तार्थं चित्रकण्ठे तु पादोनं सर्वचित्रके
कृष्णे सर्वधनत्यागः कर्तव्यो ब्राह्मणान् पुनः ॥ ३३ ॥

ऐवं शान्तिर्भवेद् गेहे सर्वदोपक्षयावहा ।
महतीं श्रियमामोति धनलाभश्च जायते ॥ ३४ ॥

पुत्रैः पौत्रैर्द्विमामोप्यनन्तामायुर्दीर्घं प्राप्नुयात् संयंतात्मा ।
एतत् कृत्वा मुच्यते सर्वपापैर्मर्यैर्यद्वच्छारदः शीतरश्मिः ॥ ३५ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गवत्तृष्णापरनाश्रित वास्तुशास्त्रे
तोरणभज्जकपोतप्रवेशशानितको नाम पद्चत्वारिंशोऽव्यायः ॥

१. 'या' ग. पाठः । २. 'तत्' क, 'ते' ग. पाठः । ३. 'ताष्टतानि पुण्याणि म'
ख. ग. पाठः । ४. 'णान् पु', ५. 'यि' ६. 'पहः' क. पाठः । ७. 'यु' क. ग. पाठः ।

अथ वेदीलक्षणं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ।

वेद्यश्चतस्रो विज्ञेया याः पुरा ब्रह्मणोदिताः ।
 वयं ताः संप्रवक्ष्यामो नामसंस्थानपानतः ॥ १ ॥
 प्रथमा चतुरश्चा स्यात् सभद्रा च द्वितीयका ।
 तृतीया श्रीधरी नाम चतुर्थी पद्मिनी स्मृता ॥ २ ॥
 यज्ञकाले तथोद्ग्राहे देवतास्थापनेषु च ।
 नीराजनेषु सर्वेषु बहिर्होमे च नित्यशः ॥ ३ ॥
 वृपाभिषेचने चैव शक्तध्वजनिवेशने ।
 वृपयोग्या भवन्त्येता वर्णानामनुपूर्वशः ॥ ४ ॥
 चतुरश्चा तु या वेदी नवहस्ता समन्ततः ।
 अष्टहस्ता प्रमाणेन सर्वभद्रा प्रकीर्तिता ॥ ५ ॥
 श्रीधरी सप्त विज्ञेया हस्तान् मानेन वेदिका ।
 पद्महस्ता चैव शाख्यज्ञैर्नलिनीह विधीयते ॥ ६ ॥
 चतुरश्चा तु कर्तव्या चतुरश्चा समन्ततः ।
 भद्रेस्तु सर्वतोभद्रा भूषणीया चतुर्दिशम् ॥ ७ ॥
 श्रीधरी चापि विज्ञेया कोणविंशतिसंयुता
 नलिनीति च विज्ञेया पद्मसंस्थानधारिणी ॥ ८ ॥
 कर्तव्यौः स्वस्वविस्तारादुच्छ्रयेण त्रिभागिकाः ।
 कुर्यान्मन्त्रवतीभिस्ता इष्टकाभिस्तु चाय?यिताः ॥ ९ ॥
 चतुरश्चा यज्ञकाले विवाहे श्रीधरी स्मृता ।
 देवतास्थापने वेदीं सर्वभद्रां निवेशयेत् ॥ १० ॥
 नीराजने साग्रिकार्थे तथा राजाभिषेचने ।
 वेदी पद्मावती या च तथा शक्तध्वजोच्छ्रये ॥ ११ ॥
 चतुर्मुखा तु कर्तव्या सोपानैश्च चतुर्दिशम् ।
 प्रतीहारसमायुक्ता चार्धचन्द्रोपशोभिता ॥ १२ ॥

१. 'तासां प्र', २. 'स्तोन्मा', ३. 'व्या स्व', ४. 'का' क. पाठः । ५. 'का' ।
 ख. ग. पाठः ।

चतुःस्तम्भसमायुक्ता चतुर्षुभविराजिता ।
 काञ्चने राजतैस्तात्रैर्षुन्मयैः कलशैस्तथा ॥ १३ ॥

कोणेकोणे तु विन्यस्तैर्वल्गुवानरभूषितैः ।
 स्तम्भप्रमाणं वेदीनां कार्यं छायवशेन च ॥ १४ ॥

एकेन द्वित्रिभिर्विपिच्छाद्यैः सामलसारिकैः ।
 स्तम्भमूलानि चाभ्यज्य गुडेन मधुसर्पिषा ॥ १५ ॥

परमाञ्जेन वाभ्यज्य तान् विन्यस्येद् यथातथम् ।
 देवताः पूजयित्वा तु ब्राह्मणान् स्वस्ति वाचयेत् ॥ १६ ॥

चतुर्विधमितीरितं यदिह वेदिकालक्षणं
 समग्रमपि वर्तते मनसि यस्य तच्छलिपनः ।
 स याति भुवि पूज्यतामवनिभोक्तुरामोति च
 श्रियं स्थपतिसंसदि स्फुरति चास्य शुभ्रं यशः ॥ १७ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीमोजदेवविरचिते समराङ्गसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशाखे
 वेदीलक्षणं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

अथ गृहदोषनिरूपणं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ।

अतः परं गृहादीनामपश्चस्तसमुच्छ्रूतम् ।
 क्रियते कथितं यस्मादेकत्र सुसमं भवेत् ॥ १ ॥

रक्षोम्बुनाथकीनाशमरुद्दहनदिक्षुवा ।
 मध्यपुवा च भूव्याधिदारित्यमरकावहा ॥ २ ॥

वहिपुवा वहिभिये मृतये दक्षिणपुवा ।
 रुजे रक्षःपुवा प्रत्यक्षुवा धान्यधनच्छिदे ॥ ३ ॥

कलहाय प्रवासाय रोगाय च मरुपुवा ।
 मध्यपुवा तु भूमिर्या सर्वनाशाय सा भवेत् ॥ ४ ॥

तु गास्थिकेशं कीटत्वं (क) शङ्खभस्मोपरान्विताम् ।
 कर्पराङ्गारिणीं दुष्टसच्चानार्थजनां त्यजेत् ॥ ५ ॥
 चैत्रे शोककरं वेशम् उपेष्ठे मृत्युप्रदायकम् ।
 पशुनाशनमापादे शून्यं भाद्रपदे कृतम् ॥ ६ ॥
 औश्चिने कलहाय स्यात् कार्त्तिके भृत्यनाशनम् ।
 माघे चाप्रिमयाय स्यान्मासेष्वेषु न कारयेत् ॥ ७ ॥
 पावकस्य पदे पृष्ठवंशस्यापि च पश्चिमे ।
 पुरप्रासादकर्णे च कीलादि प्राक् प्रयोजयेत् ॥ ८ ॥
 पूर्वपश्चिमदिङ्गमूढं वास्तु स्त्रीनाशकृद भवेत् ।
 उदङ्गमूढं न निष्पत्तिं याति सर्वं च नाशयेत् ॥ ९ ॥
 यत्तु दक्षिणदिङ्गमूढं जायते मरणाय तत् ।
 प्राम्बास्तुनि (तु) कुर्वते प्रासादं पन्दिरं पुरे ॥ १० ॥
 वलितं चलितं भ्रान्तं विसूत्रं च समुत्सृजेत् ।
 यत् स्यान्मुखविनिष्कान्तं वलितं तत् प्रकीर्तितम् ॥ ११ ॥
 चलितं पृष्ठनिष्कान्तं दिङ्गमूढं भ्रान्तमुच्यते ।
 विसूत्रं कर्णहीनं स्यात् फलमेषां प्रचक्षमहे ॥ १२ ॥
 वलिते चलति स्थानं चलिते विग्रहो भवेत् ।
 भ्रान्तं योषिद्विनाशाय विसूत्रं भूरिशतुरुक्त् ॥ १३ ॥
 मूषकोत्करवल्मीकिप्रान्ता वक्रा भुजङ्गवत् ।
 छिन्ना भिन्ना विकर्णा च न वास्तुनि शुभा क्षितिः ॥ १४ ॥
 मूषकोत्करवत्यर्थं हन्ति वल्मीकिनीं सुतम् ।
 विकर्णा कुरुते कर्णं रोगं १ छिन्ना विनाशिनी ।
 भिन्ना भेदं करोत्युर्वीं कुटिला मतिवक्रताम् ॥ १५ ॥
 सपादं सत्रिभागं वा सार्वं द्विगुणमेव च ।
 यत् स्यान्मुखायतं वेशम् तदनिष्टफलप्रदम् ॥ १६ ॥

१. 'ली', २. 'त्वप्रश्नम्' ख. ग. पाठः ३. 'अश्चिन्ये क', ४. 'शुभम्'
 क. पाठः ५. 'तू' क. ग. पाठः ६. 'गान्' क. पाठः ।

यद् द्विशालं त्रिशालं वा चतुःशालमथापि या ।
 मूषपया रहितं वेशम तदनिष्टकलप्रदम् ॥ १७ ॥
 पुरतः पृष्ठतः पार्श्वे यदि वालिन्दवर्जिता ।
 यहे न शस्यते शाला देवागरे तु शस्यते ॥ १८ ॥
 अन्यपृष्ठस्थितद्वारं वेशम खादकमुच्यते ।
 परस्परविरोधाय तद् वेशम गृहिणोस्तयोः ॥ १९ ॥
 सशलयं पादहीनं च समसान्धि अिरोगुरु ।
 वेशमनामिदमुदितं मर्घदोषचतुष्टयम् ॥ २० ॥
 वास्तुक्षेत्रस्य यत्राहे यस्य वर्त्म प्रवर्तते ।
 तेदञ्जं वास्तुनस्तस्यच्छित्तं तेनेति निर्दिशेत् ॥ २१ ॥
 छिन्नाङ्गं विकलं तत् स्वाद् भीतिं सर्वदोषकृत् ।
 तद्भृत्येतेऽङ्गं तद् वेदस्तस्याकलोऽन्यथा ॥ २२ ॥
 स्वगृहद्वयमध्येन निर्वाहो यदि वर्त्मनः ।
 द्वारवेषोदितान् दोपांस्तदा प्रामोति निश्चितम् ॥ २३ ॥
 मार्गश्चेको यदा गच्छेदुभयोर्गृहपार्षयोः ।
 मार्गवेषस्तदा स स्याच्छोकसन्तापकारकः ॥ २४ ॥
 उत्सङ्गः पूर्णवाहुश्च हीनवाहुस्तथापरः ।
 प्रत्यक्षाय इति प्रोक्तं प्रवेशानां चतुष्टयम् ॥ २५ ॥
 गृहस्य सम्मुखं यत्र द्वारं भवति वास्तुनः ।
 उत्सङ्ग इति सै प्रोक्तः पूर्णवाहुः प्रदशिणः६ ॥ २६ ॥
 वामतो हीनवाहुः स्यात् प्रत्यक्षो वाक्षायस्तु पृष्ठतः ।
 चतुर्थोऽयं समुदिष्टः प्रवेशो वास्तुनो तुवैः ॥ २७ ॥
 उत्सङ्गाख्ये प्रवेशे स्यात् प्रजाहानिः कुडुम्बिनः ।
 धनधान्यक्षयो वास्य मरणं वा धुरं भवेत् ॥ २८ ॥
 पूर्णवाहौ पुत्रपात्रा धनधान्यसुखानि च ।
 भवन्ति वसतो नित्यं गृहिणस्तत्र वास्तुनि ॥ २९ ॥

१. 'कः' ल. ग. पाठः । २. 'य' क. पाठः । ३. 'सं', ४. 'मु',
 ५. 'तुक्तो वा' ल. पाठः ।

६. 'पूर्णवाहुस्तु' दक्षिणे इति तु पाठो तुकः ।

अल्पमित्रो यृही इनवाहावत्यल्पवान्धवः ।
 स्याद् वाल्पवित्तो जीयेत स्त्रीभिः पीड्येत वामयैः ॥ ३० ॥
 प्रत्यक्षायप्रवेशस्तु विहितो यत्र वेश्मनि ।
 तस्मिन् निवसतां पुंसां निश्चितः स्याद् धनक्षयः ॥ ३१ ॥
 मूषास्वस्थानयुक्तासु शालाभेद इति स्मृतः ।
 प्राप्नोति तत्र निवसन् मृत्युं दुःखं सरोगताम् ॥ ३२ ॥
 उदगदक्षिणशालासु पुर्वापरगतासु च ।
 अन्यथा वा स्थितं द्वारं वधवन्धनकारकम् ॥ ३३ ॥
 मूषागतान् भ्रमान् कुर्यात् शालां प्रतिभेदयेत् ।
 भ्रममपासु शालासु विषयन्ते कुटुम्बिनः ॥ ३४ ॥
 शालाभेदो भवेद् यत्र पृष्ठतः पार्खितोऽपि वा ।
 धनधान्यक्षयस्तत्र गृहिणो जायते ध्रुवम् ॥ ३५ ॥
 यत्र प्रत्यहमुखे शाले गृहं तत् स्याद् विकोक्तिलम् ।
 आयुश्चतुष्पदं धान्यं वसतां तत्र नश्यति ॥ ३६ ॥
 सीमाशालाप्रभिन्नस्य प्रासादस्य गृहस्य च ।
 अस्थिरा जायते क्राद्धिः स्थितिश्च न भवेचिरम् ॥ ३७ ॥
 सर्वदोषकरी इया गर्भे चन्द्रावलोकिता ।
 मूषां विना विनाशाय कामोच्छित्त्यै गवाक्षकः ॥ ३८ ॥
 यदा गण्डोऽथवा कुक्षिः पृष्ठं कक्षाथ भिद्यते ।
 दारिश्च जायते भर्तुस्तदानीमतिदुस्सहम् ॥ ३९ ॥
 गर्भादुभयतो गण्डौ कक्षे स्तः कर्णभित्तिगे ।
 दक्षिणोत्तरयोः कुक्षी पृष्ठतः पृष्ठमादिशेत् ॥ ४० ॥
 स्थापितद्वारसंरोधे गृहिणो जायतेऽश्मरी ।
 द्वारे तु विहिते तस्मिन्बन्धस्तस्य जायते ॥ ४१ ॥
 पूर्वद्वारनिरोधं तु नवमार्गं कदाचन (?) ।
 श्रोत्ररोधेऽश्मरीदोषः कुत्तश्रोत्रेण नैम्यता (?) ॥ ४२ ॥

१. 'थ' ग, पाठः । २. 'कना' ख, ग, पाठः । ३. 'क्षी' क, पाठः ।
 ४. 'न्य' ग, पाठः । ५. 'नंषता' ख, पाठः ।

कृत्तानि यत्र चीयन्ते गवाक्षालोकनानि च ।
 तत्र प्रसूतिर्न भवेन्निष्पन्नापि विनश्यति ॥ ४३ ॥

चीयमाना यदा भित्तिर्दक्षिणा स्याद् वहिर्मुखी ।
 तदा व्याधिभयं विद्यान्तृपदण्डभयं तथा ॥ ४४ ॥

यदा तु पश्चिमं कुरुयं प्रयाति वहिरग्रतः ।
 धनहानिं विजानीयाचौरेभ्यश्च भयं तदा ॥ ४५ ॥

उत्तरं तु यदा कुरुयं चीयमानं वहिर्वजेत् ।
 गृहमरुश्च कर्तुश्च व्यसनं स्यात् तदा महत् ॥ ४६ ॥

यदाग्रं चीयमानायाः पूर्वभित्तिर्वहिर्वजेत् ।
 तदा गृहपतेस्तीत्रं राजदण्डभयं भवेत् ॥ ४७ ॥

प्राग्दक्षिणो यदा कर्णश्रीयमानो वहिर्वजेत् ।
 तत्राश्रिभीतिरतुला संशयश्च ग्रभोभवेत् ॥ ४८ ॥

वहिर्मुखो यदा गच्छेत् कर्णो दक्षिणपश्चिमः ।
 कलहोपद्रवस्तत्र स्याद् भार्यायाश्च संशयः ॥ ४९ ॥

यत्रोत्तरापरः कर्णश्रीयमानो वजेद् वहिः ।
 पुत्रवाहनभृत्यानां भवेत् तस्मिन्नुयद्रवः ॥ ५० ॥

यदा प्रागुत्तरः कर्णो वहिर्गच्छति वेश्मनः ।
 तदा गवां वृपाणां च गुरुणां च क्षयो भवेत् ॥ ५१ ॥

चतस्रो भित्तयो यस्य वहिनिर्यानिं वेश्मनः ।
 चीयमानास्तदत्रोक्तं मन्दिरं माल्लिकाकृति ॥ ५२ ॥

तादृग् गृहे न तत्रायो व्ययो भवति यादृशः ।
 कर्णितोऽस्यैव दोषेण तस्य भर्ता पलायते ॥ ५३ ॥

संक्षिप्यते तु यद् वेश्म चीयमानं समन्ततः ।
 संक्षिप्तमिति तज्ज्ञेयं तत्र राजभयं भवेत् ॥ ५४ ॥

यत् स्यादन्तेषु संक्षिप्तं विस्तृतं चापि मध्यतः ।
 मृदज्ञाकृतिसंस्थानं तत्र व्याधिभयं भवेत् ॥ ५५ ॥

१. 'ता' ख. पाठः । २. 'यी' क, 'ती' ख. पाठः । ३. 'खा' क. पाठः ।

४. 'ता' ख. पाठः ।

आद्यन्तविस्तुतं यत् स्यात् संक्षिप्तं चापि मध्यतः ।
 मृदुमध्यं तदुहिष्टं क्षुद्रयं तत्र जायते ॥ ५६ ॥
 विषमैरुच्चतैः कर्णधनक्षयकरं शृहम् ।
 भिन्निवचापि कर्णेषु प्रागुक्तं फलमादिशेत् ॥ ५७ ॥
 मध्ये द्वारं न कर्तव्यं मनुजानां कथञ्चन ।
 मध्ये द्वारे कुते तत्र शुलनाशः प्रजायते ॥ ५८ ॥
 द्वारं द्वारेण वा विद्धमशुभायोपपत्ते ।
 अनिष्टद्रव्यसंयुक्तं धनधान्यविनाशनम् ॥ ५९ ॥
 नवं पुराणसंयुक्तपन्थं स्वामिनमिच्छति ।
 अधोग्रं राजदण्डाय विद्धं द्वारं विगर्हितम् ॥ ६० ॥
 नवं पुराणसंयुक्तं द्रव्यं तु कलिकारकम् ।
 न मिथ्रजातिद्रव्योत्थं द्वारं वा वेशं वा शुभम् ॥ ६१ ॥
 शृहस्थानेषु यद् द्रव्यमधिवास्य प्रतिष्ठितम् ।
 तच्चालनेन चलनं गृहमर्तुः प्रजायते ॥ ६२ ॥
 अन्यवास्तुच्युतं द्रव्यमन्यवास्तौ न योजयेत् ।
 प्रासादे न भवेत् पूजा गृहे च न वसेद् गृही ॥ ६३ ॥
 द्रव्येण देवदग्धेन भवनं यद् विधीयते ।
 न तत्र वसति स्वामी वसन्नपि विनश्यति ॥ ६४ ॥
 मूर्योद्भवा द्रुमच्छाया ध्वजच्छायाच गर्हिता ।
 द्वारातिकमणादेताः क्षुद्रव्याधिकालिकारकाः ॥ ६५ ॥
 प्रासादशिखरच्छाया ध्वजच्छायेति कीर्तिंता ।
 त्रिपञ्चसप्तमी भर्तुर्गृहतारा न शोभना ॥ ६६ ॥
 निम्नोच्चतं करालं च सम्मुखं पृष्ठदेशगम् ।
 वामावर्तं च न शुभं द्वारप्रगतरं शृहे ॥ ६७ ॥
 निम्ने स्यात् स्त्रीजितो भर्ता दुर्जनस्थितिरुचते ।
 सम्मुखे सुतपीडा स्यात् पृष्ठगे चपलाः स्त्रियः ॥ ६८ ॥
 वामे विचक्षयो द्वा(रि?रे) भवत्यग्रतरे प्रभोः ।
 द्वारं तस्माच्च कर्तव्यमीद्यूपं विचक्षणः ॥ ६९ ॥

१. 'द' क, 'च' ख, ग, घः । २. 'सुनि चो' क, ख, घः ।

नागदन्ततुलास्तम्भभित्तिमूयागवाक्षकाः ।
 द्वारमध्ये न दातव्या न चैते विषमस्थिताः ॥ ७० ॥

इतिहासपुराणोक्तं वृत्तान्तप्रतिरूपकम् ।
 निनिदं च गृहे नेष्टं शस्तं देवकुलेषु तत् ॥ ७१ ॥

यानीन्द्रजालतुलयनि यानि मिथ्याकृतानि च ।
 भीषणानि च यानि स्युर्ने कुर्यात् तानि वेशमसु ॥ ७२ ॥

स्वयमुद्धाटितं द्वारमुच्चाटनकरं भवेत् ।
 धनहृद् बन्धुवैरं स्यादथवा कलिकारकम् ॥ ७३ ॥

स्वयं यत् पिहितं द्वारं तद् भवेद् बहुदुःखदम् ।
 सशब्दं भयकृत् पादशीतलं गर्भपातनम् ॥ ७४ ॥

द्रव्यं नाधोमुखं कार्यं प्रत्यग्याम्याननं नच ।
 पश्चिमाग्रे परिक्लेशो दक्षिणाग्रे तु शून्यता ॥ ७५ ॥

स्तम्भद्वारं च भित्ति च विपरीतं न कारयेत् ।
 अमीषां वैपरीत्येन दोषाः स्युर्वह्वो वृणाम् ॥ ७६ ॥

मूलसूत्रानुसारेण कर्तव्या भूमिकोपरि ।
 उपर्युपरि यद् वेशमसैमं संतापकारकम् ॥ ७७ ॥

अधोभूमौ क्षणा ये स्युस्तत्समांशौर्ध्वभूमिषु ।
 परित्यजन्नपहिताँ (?) न कुर्वात् यथोच्चरम् ॥ ७८ ॥

शाला निज्ञा भवेद् यस्मिन्नलिन्दस्त्वधिको भवेत् ।
 निधनं जायते तत्र सदा शोकभयानि च ॥ ७९ ॥

मूलद्वारानुसारेण द्वाराण्युपरिभूमिषु ।
 कुर्याद् भयप्रदानि स्युर्विहितान्यन्यथा पुनः ॥ ८० ॥

क्षुद्रयप्रदमाध्मा(नं?तं) कुब्जं कुलविनाशनम् ।
 अत्यर्थं पीडितं पीडां करोत्यन्तनं क्षयम् ॥ ८१ ॥

प्रवासो वाहविनते दिग्भान्ते दस्युतो भयम् ।
 मूलद्वारं क्षयं कुर्याद् विद्धं द्वारान्तरेण यत् ॥ ८२ ॥

१. 'ताँ' क. पाठः । २. 'समस्तं ता' ख. ग. पाठः । ३. 'दृ' ग. पाठः ।
 ४. 'ता;' ख. ग. पाठः । ५. 'न' क. पाठः । ६. 'न्तं' क. ग. पाठः ।

प्रवासो भृत्यजो द्वेषो विद्धे चत्वररथया ।
 नौशं द्रव्यं ध्वजाविद्धं वृक्षेण शिशुदृष्टकम् ॥ ८३ ॥
 पङ्कविद्धे भवेच्छोकः सलिलस्त्राविणि व्ययः ।
 कूपेन विद्धेऽपस्थारो विनाशो देवतेन च ॥ ८४ ॥
 स्तम्भेन दूषणं स्तीणां ब्रह्मणा तु कुलक्षयः ।
 मानादभ्यधिके द्वारे राजतो जायते भयम् ॥ ८५ ॥
 व्यसनं मानतो हीने चौरेभ्यश्च भयं भवेत् ।
 व्याधयः श्वन्नविद्धेन धनस्य च परिक्षयः ॥ ८६ ॥
 देवध्वजेन वन्धः स्यात् सभयैश्वर्यसंक्षयः ।
 सञ्चिपातभयं वाप्या तुल्या दृष्टत्वमाकृते(?) ॥ ८७ ॥
 हृदुक् कुलालचक्रेण दारिद्र्यं वारिणा भवेत् ।
 व्याधिरुक्तं कचकुटेन आपाकेन(?) सुतक्षयः ॥ ८८ ॥
 नि(श्वैस्त्र)तोदूखलेन स्याच्छिलया चाशमगी भवेत् ।
 तोयमाणेन दुर्मन्त्री भस्मना चाशसो गृही ॥ ८९ ॥
 दारिद्र्यं छायया विद्धे भवेद् द्वारे कुटुम्बिनः ।
 स्थलस्यन्दनवल्मीकैविदेशगमनं भवेत् ॥ ९० ॥
 कृशं विकृतमत्युच्चं करालं शिथिलं पृथु ।
 वक्रं विशालमुत्तानं (श्वैस्त्र)लाग्रं हस्वकुक्षिकम् ॥ ९१ ॥
 स्वपादचलितं हस्वं हीनकर्णं मुखानतम् ।
 पार्श्वं सूत्रमार्गाच्च भ्रष्टं द्वारं न शोभनम् ॥ ९२ ॥
 तत् करोति क्षयं घोरं विनाशं स्वामिसम्पदः ।
 वसतां कलहं नित्यमतस्तत् परिवर्जयेत् ॥ ९३ ॥
 अन्तद्वाराद् वहिद्वारं नोचं कुर्यात् सङ्कटम् ।
 उच्चं विसङ्कटं वापि तच्छिवाय न जायते ॥ ९४ ॥
 पट्टसन्धिर्यदा मध्ये द्वारस्य स्यात् कथञ्चन ।
 कर्तुस्तदा विनाशः स्यात् कुलस्य च परिक्षयः ॥ ९५ ॥

१. 'जा दोषा चि', २. 'श' ख. ग. पाठः । ३. 'द्र' ख. 'द्रष्टव्य' ग. पाठः ।
 ४. 'करच', ५. 'श्वि' क. पाठः । ६. 'लम्बकु' ख. पाठः ।

तुला उपतुला वास्युद्धारि तिर्यग् यदा कृताः ।
दारिद्र्यव्याधिसन्तापा भवन्ति स्वामिनस्तदा ॥ ९६ ॥

अनुवंशमनुभासा जपन्त्यो यदि यन्दिरे ।
विचायुषोस्तदालपत्वमनारोग्यं च जायते ॥ ९७ ॥

उदुम्बरे (वि)निहिता(नि?) ललाटी नाम सा तुला ।
दूषणं मरणं वापि कन्यानां विदधाति सा ॥ ९८ ॥

उत्तराङ्गोदरे न्यस्ता ललाटेन समा यदि ।
तुला ललाटिका सापि कुलक्षयकरी भवेत् ॥ ९९ ॥

तुलापिण्डेन विन्यस्ता ज्ञेया यज्ञोपवीतिनी ।
वसतो व्यसनं कुर्यात् कुटुम्बस्यामुखं च सा ॥ १०० ॥

यदि भारतुलैकापि मध्ये विद्वा कथञ्चन ।
तदा वराहं भजेत धनं च परिहीयते ॥ १०१ ॥

मिति भेदो न कर्तव्यस्तुलाग्रहिणिरपि ।
कुर्याद् ब्रह्मपदन्यस्तो भारपदः कुलक्षयम् ॥ १०२ ॥

अयुक्तयोर्युक्तयोर्वा सन्धिथेऽभारपदगे^१ ।
सन्धौ स्यात् तत् सुतो ज्येष्ठः कर्तुश्चापि विनश्यति ॥ १०३ ॥

अनुवंशं न भुजीत न शीत कदाचन ।
भुजानस्यार्थनाशः स्याच्छयानस्य महारूजः ॥ १०४ ॥

नाशोऽनुवंशं रोगाः स्युस्तिर्यकस्थे रक्षसो भयम् ।
शयनागारविन्यस्ते मरणं नागदन्तके ॥ १०५ ॥

कर्णीवात्^(?) पक्षिराह्यणाध्वजच्छत्रकुमारकान् ।
सिंहकर्णकपोतालि गृहेषु परिवर्जयेत् ॥ १०६ ॥

इन्द्रकीलं शुक्रं तुम्बीमर्घवंशं च वेशमनि ।
न कुर्यात् तत्र विहिताः सर्वदोषावहा यतः ॥ १०७ ॥

अतिक्षिप्रचिरोत्पन्नं कुशद्रव्यमपोहितम् ।
अप्रतिष्ठितसंस्थानं गृहं नमति पञ्चवा ॥ १०८ ॥

१. 'भला' ख. पाठः । २. 'गाः' क. पाठः । ३. 'साँ' ख. पाठः ।
४. 'मूर्ख', ५. 'पाइ' ख. ग. पाठः ।

अतिस्थूलेन हस्वेन शरीरेण यथा नरः ।
 विरुपो दुर्बलश्चैव तथा द्रव्येण पन्दिरम् ॥ १०९ ॥
 जीर्णं धुणं (कृक्ष)तं मिथ्रं हीनं वक्रं विधिच्युतम् ।
 चण्डं तुष्टं वक्रकोणं सन्धिविद्वाल्पमूलके ॥ ११० ॥
 वज्रमध्यं स्थूलमूलं कुक्षिभिन्नं च दारु यत् ।
 भिन्नमूलं कूर्मपृष्ठं पक्षहीनं च वर्जयेत् ॥ १११ ॥
 पातितान् वर्जयेद् वृक्षान् द्विपाखाग्निजलानिलैः ।
 प्रभूतपक्षिनिलयान् काककौशिकसेवितान् ॥ ११२ ॥
 मधुग्रहपिशाचाहिदुष्टांश्चत्यश्मशानजान् ।
 चतुष्पथत्रिकमहानदीसङ्गममार्गजान् ॥ ११३ ॥
 देवतायतनेजातानूर्ध्वशुष्कान् क्षतच्छदान् ।
 वलीपिनद्वान् सुपिरकोट्यन्धिसङ्कुलान् ॥ ११४ ॥
 याम्यापराशापतितांस्त्यजेत् कण्टकिनोऽपिच ।
 कपित्थोदुम्बराश्वत्यशिरीपवटचम्पकान् ॥ ११५ ॥
 कोविदारधवारिष्टश्लेष्मातकविभीतकान् ।
 किञ्च सप्तच्छदक्षीरिकलदांश्च द्रुपांस्त्यजेत् ॥ ११६ ॥
 पर्माणि यत्र पीड्यन्ते द्वार्सर्भित्तिभिरेव वा ।
 दारिश्च कुलहानिं वा गृहिणस्तत्र निदिशेत् ॥ ११७ ॥
 स्तम्भैर्विनश्यति स्वामी तुलाभिः स्त्रीवधो ध्रुवम् ।
 सङ्ग्रहैर्वन्धुनाशः स्याज्जयन्तीभिः स्तुपावधः ॥ ११८ ॥
 मर्मस्थानस्थितैः कायैर्भर्तुः कायो निपीड्यते ।
 मर्मस्थैः सन्धिपालैस्तु सुहृदिश्लेषमादिशेत् ॥ ११९ ॥
 गृहपीढा नागदन्तैर्नागपाशैर्धनक्षयः ।
 कापिच्छकैस्तु प्रेष्याणां क्षयं मर्मस्थितैर्वदेत् ॥ १२० ॥
 पहुदारुकान्यनुसरागवाक्षालोकनानि च ।
 मर्मस्थाननिविष्टानि जनयन्ति महाभयम् ॥ १२१ ॥
 स्तम्भैर्वा द्वारपद्यैर्वा तुलाभिर्नागपाशैः ।
 वातायनैर्नागदन्तैर्द्वारपद्ये निपीडिते ॥ १२२ ॥

१. 'गु' क. पाठः । २. 'ञ्चदावृतान्' ख. ग. पाठः ।

व्याधयः संप्रवर्धन्ते धननाशः कुलक्षयः ।
 राजदण्डभयं च स्यादपत्यानां च पीडनम् ॥ १२३ ॥
 पद्मारुकाणां मध्येषु द्वारमध्येषु वा पुनः ।
 कर्णद्रव्यादिभिर्विद्वेष्टेवादिशेत् फलम् ॥ १२४ ॥
 संविद्वा नागदन्तैर्या स्तम्भैर्वातायनैस्तथा ।
 शश्या शस्त्राद् भयं भर्तुः कुर्यात् तस्करतोऽपि वा ॥ १२५ ॥
 गृहमध्ये कृतं द्वारं द्रव्यकोशविनाशनम् ।
 आवहेत् कलहं भर्तुर्भार्या वास्य प्रदूषयेत् ॥ १२६ ॥
 द्रव्येणैकोत्तरेणापि महामर्मणि पीडिते ।
 सर्वस्वनाशो गृहिणो मरणं वा ध्रुवं भवेत् ॥ १२७ ॥
 द्वारस्तम्भतुलालिन्दै(श्वेच्छ)यदोषैः सेमीरितैः ।
 विसूत्रे नागदन्तेऽपि तच्छृन्यं जायते गृहम् ॥ १२८ ॥
 विभागपदहीनेषु रूपस्थानेषु वास्तुषु ।
 यक्ष्मात्रुकियादेषु रोगान्मृत्युने संशयः ॥ १२९ ॥
 कटुकण्टकिदुर्गनिधगुह्यकाशाश्रयान् द्रुमान् ।
 न धारयेत् समीपस्थान् पुरप्रासादवेशमनाम् ॥ १३० ॥
 वदरी कदली चैव दाढिमी वीजपूरिका ।
 प्ररोहन्ति गृहे यत्र तद्गुहं न प्ररोहति ॥ १३१ ॥
 द्रव्यं द्रव्याधिकं हन्ति कुलमायामतोऽधिकम् ।
 उच्छ्रूयाभ्यधिकं पूजां सन्ततिं विस्तराधिकम् ॥ १३२ ॥
 स्तम्भाहैर्भित्तिभिः पट्टैः शीर्षकैर्भवनैस्तथा ।
 आलोकनातोरणादैश्छाद्यकैः कन्दकूटकैः ॥ १३३ ॥
 हीरशाखोत्तमाङ्गेश तुलाभिः सन्धिपालकैः ।
 अर्गलाङ्गेवेदिकाभिर्व्यालैर्जलैश्च नूतनैः ॥ १३४ ॥
 घातितैः पातितैर्न(एष्टि)र्जयते गृहिणो ध्रुवम् ।
 व्याधिदारिश्यदुःखार्तिर्निर्धनत्वं च जायते ॥ १३५ ॥

१. 'त्रु', २. 'त्रु' क, ल, पाठः । ३. 'न्दै' क, पाठः । ४. 'स्व' ल, ग, पाठः । ५. 'कि' क, ल, ग, पाठः । ६. 'मः', ७. 'ष' क, पाठः ।

उच्चच्छायं छिद्रगर्भं भ्रमितं वर्मितं मुखे ।

हीनमध्यं नष्टसूत्रं शल्यविद्धं शिरोगुरु ॥ १३६ ॥

भ्रष्टालिन्दकशोभं च विप्रमस्थं तुलातेलम् ।

अन्योन्यद्रव्यविद्धं च कुपदप्रविभाजितम् ॥ १३७ ॥

हीनभिस्युत्तमाङ्गं च विनष्टं स्तम्भभित्तिकम् ।

भिन्नशालं त्यक्तकण्ठं निष्कन्दं पानवर्जितम् ॥ १३८ ॥

विकृतं च गृहं भर्तुरनिष्टफलदायकम् ।

तस्माद् दोषानिमांस्त्यक्त्वा गृहं कुर्याच्छ्रुभावहम् ॥ १३९ ॥

एवंविधं दोषकरं गृहं स्याद् भर्तुश्च कर्तुश्च यतस्तदेते ।

ज्ञेयाः सदा शिलिपभिरप्रमत्त्वात्यज्याश्च दोषाः शुभकीर्तिंकामैः ॥ १४० ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशाखे

गृहदोषनिरूपणं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

अथ रुचकादिप्रासादलक्षणं नामैकोनपञ्चाशोऽध्यायः ।

त्रिदशानां वृपाणां च वर्णिनां च विशेषतः ।

उत्पत्तिप्रसृतिं शूमः ग्रासादा यस्य ये मताः ॥ १ ॥

पुरा ब्रह्मासूनत् पञ्च विवानान्यसुरद्विषाम् ।

वियद्वर्त्मविचारीणि श्रीमन्ति च महान्ति च ॥ २ ॥

तानि वैराजकैलासे पुण्यकं मणिकाभिधम् ।

हैमानि मणिचित्राणि पञ्चमे च त्रिविष्टपम् ॥ ३ ॥

१. 'नि' स्त्र. ग. पाठः । २. 'त्रं स्वशः', ३. 'सि', ४. 'द्रु' क. पाठः ।

५. 'क्षतुभवदप्रतिभा' च. ग. पाठः ।

आत्मनः शूलहस्तस्य धनाभ्यक्षस्य पाशिनः ।
 सुरेशिने च विशेषो विमानानि यथाक्रमम् ॥ ४ ॥
 वहून्यन्यानि चैवं स मूर्यादीनामकल्पयत् ।
 विशेषाय यथोक्ते स्तान्याकारैः प्रतिदैवतम् ॥ ५ ॥
 प्रासादांश्च तदाकारात् शिलापकेष्टकादिभिः ।
 नगराणामलङ्कारहेतवे समकल्पयत् ॥ ६ ॥
 वैराजं चतुरश्च स्याद् वृत्तं कैलाससंज्ञितम् ।
 चतुरश्रायताकारं विमानं पुष्पकं भवेत् ॥ ७ ॥
 वृत्तायतं च मणिकमष्टाश्रि स्यात् त्रिविष्टपम् ।
 तद्देदात् श्रीमतोऽन्यांश्च विविधानसृजत् प्रभुः ॥ ८ ॥
 ये यत्र विहिता भेदाः पूर्वं कमलयोनिना ।
 सर्वांस्तानभिधास्यामो नामसंस्थानमानतः ॥ ९ ॥
 रुचकश्चित्रकूटश्च तृतीयः सिंहपञ्चरः ।
 भद्रः श्रीकूट उष्णीषः शालाक्षोऽगजयूथपः ॥ १० ॥
 नन्दावर्तोऽवतंसाहः स्वस्तिकः क्षितिभूषणः ।
 भूजयो विजयो नन्दी श्रीतेरुः प्रमदाप्रियः ॥ ११ ॥
 व्यामिश्रो हस्तिजातीयः कुवेरो वसुधाधरः ।
 सर्वभद्रो विमानार्णव्यो मुक्तकोणश्च नामतः ॥ १२ ॥
 चतुर्विशतिरुदिष्टा चतुरश्राः सपासतः ।
 वृत्तांस्तथाभिधास्यामः प्रासादानपरानपि ॥ १३ ॥
 वलयो दुन्दुभिः प्रान्तः पद्मः कान्तश्चतुर्मुखः ।
 मैण्डूकारूप्योऽथ कूर्मश्च तालीगृह उलूपिकः ॥ १४ ॥
 इति वृत्ताः सपासेन प्रासादा दश कीर्तिः ।
 चतुरश्रायता ये स्युः कथ्यन्ते तेऽपि नामतः ॥ १५ ॥

१. 'पाकेर्यय' क, 'पायचयो' ख, ग, पाठः । २. 'ए दारभिः' ख, ग, पाठः ।
 ३. 'ष्टोऽथ ग' क, पाठः । ४. 'या' क, ख, ग, पाठः । ५. 'मत्तः प्र' ग, पाठः ।
 ६. 'नाङ्को' क, ख, ग, पाठः । ७. 'मान्दूका' क, 'मदूका' ख, ग, पाठः ।

६ शालारूप्य इति लक्षणे पाठः । † लक्षणे तु नन्द इति पठ्यते ।

भवो विशालः सामुख्यः प्रभवः शिविरागृहः ।
 मुखशालो दिशालश्च गृहराजोऽमलो विभुः ॥ १६ ॥
 एवमेते समुद्दिष्टाश्चतुरथ्रायता दश ।
 अथ वृत्तायतान् ब्रूमः प्रासादानभिधानतः ॥ १७ ॥
 आमोदो रैतिकस्तुङ्गशारभूतिर्निषेवकः ।
 सदा(?)निषेधः सिंहाख्यः सुप्रभो लोचनोत्सवः ॥ १८ ॥
 एते वृत्तायताः प्रोक्ताः प्रासादा नामतो दश ।
 अष्टाश्रीणां च नामानि कथयामि समाप्ततः ॥ १९ ॥
 वज्रको नन्दनः शङ्खकुर्मेखलो वामनो लयः ।
 महापञ्चश्च हंसश्च व्योमचन्द्रोदयाविति ॥ २० ॥
 अष्टाश्रय इमे प्रोक्ताः प्रासादा दश संख्यया ।
 भवन्त्येवं चतुष्पाण्डिलक्ष्मैपामधुनोच्यते ॥ २१ ॥
 संस्थानमानविन्यासैर्भद्रस्तम्भादिसङ्घचया ।
 एषां विशेषा वक्ष्यन्ते पृथक् पृथगनुक्रमात् ॥ २२ ॥
 ज्येष्ठो भागश्चतुर्हस्तः सार्धहस्तत्रयोऽपरः ।
 कल्पनीयः कनीयांस्तु हस्तत्रितयसम्मितः ॥ २३ ॥
 ज्येष्ठमध्यकनीयोभिरेवं भागैर्विभाजिताः ।
 भवन्ति सर्वप्रासादा ज्येष्ठमध्याधमक्रमात् ॥ २४ ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे चतुर्भागविभाजिते ।
 कुर्यात् स्वारोहकाश्वासं पीठमंजसमुच्छृतम् ॥ २५ ॥
 तथा तस्योपरि स्थाप्या हंसपृष्ठी^१ समन्ततः ।
 हस्तमात्रोच्छ्रूता वृत्ता जलनिर्गमभूषिता ॥ २६ ॥
 ततः पीठस्य तस्यान्तद्विभागा(य?या)मविस्तृतिः ।
 प्रासादो रुचकः कार्यो भागत्रितयमुच्छ्रूतः ॥ २७ ॥
 सार्धभागेन संछा स्यात् सार्धभागस्तु योऽप्यैरः(?) ।
 छा(य?य)त्रयं सकण्ठं स्यात् तेन सामलसारकम् ॥ २८ ॥

१. 'री' ख. ग. पाठः । २. 'ब्रू', ३. 'छा' क. पाठः । ४. 'स्त' ख. ग. पाठः ।
 ५. 'वृत्ताङ्गमु', ६. 'तम्भा स्यात्' ख. पाठः । ७. 'पु' क. पाठः ।

द्वारं भागोच्छ्रुतं तस्य कार्यं भागार्थविस्तृतम् ।

सप्राग्रीवः स कर्तव्यश्चतुर्दशधरादृतः ॥ २९ ॥

ससौधालिन्दकश्चारुरुद्धर्वच्छाद्योपकर्षवान् ।

क्रियतेऽत्रै यदा स्तम्भोऽस्मैः)द्वाविश्वत्या समादृतः ॥ ३० ॥

सप्राग्रीवपरिष्कारो भागिकालिन्दशोभितः ।

मध्यप्रदेशे रुचकः त्रासादः परिकीर्तिः ॥ ३१ ॥

रुचकः ।

कर्णप्राग्रीवकथित्रैः सप्राग्रीवश्च यो दृतः ।

द्वाभ्यां द्वाभ्यां गवाक्षाभ्यां चतुर्दिशमलङ्कृतः ॥ ३२ ॥

कणोतालीपरिक्षिप्तः शोभितो द्वारसम्पदा ।

तदानीं चित्रकूटाख्यः प्रासादः सोऽभिधीयते ॥ ३३ ॥

चित्रकूटः ।

अयमेव पुनः पद्मिः स्तम्भैरपि चितो यदा ।

प्राग्रीवकविहीनश्च स भवेज्ञालरूपकः ॥ ३४ ॥

सिंहपञ्चर इत्युक्तः प्रासादः स तदा शुभः ।

सिंहपञ्चरः ।

कर्णप्राग्रीवकौ द्वौद्वावस्यैव भवतो यदा ॥ ३५ ॥

अलिन्दकगतिस्थित्या तदा भद्रः प्रकीर्तिः ।

भद्रः ।

स्याचित्रकूटः प्राग्रीवश्चतुर्भिर्दिक्चतुष्टये ॥ ३६ ॥

बहिरन्तश्चतुर्द्वारः श्रीकूट इति नामतः ।

श्रीकूटः ।

पद्मारुकसमायुक्तप्रागद्वारस्त्वयमेव चेत् ॥ ३७ ॥

प्रासादस्तम्भगर्भः स्यात् तदोष्णीषोऽभिधीयते ।

उष्णीषः ।

चतुर्यकविस्तीर्णं पद्मशिदितायति ॥ ३८ ॥

१. 'खै', २. 'द्या', ३. 'न' ख. ग. पाठः । ४. 'म्भ', ५. 'कै' क. पाठः । ६. 'प' ख. ग. पाठः । ७. 'कं' क. ख. ग. पाठः । ८. 'व च' क. पाठः । ९. 'मैस्य' ख. ग. पाठः ।

पीठं शालायृहस्योक्तं सशालानिर्गमं शुभम् ।
 मध्यादपरतस्तस्य द्विभागायतविस्तृतम् ॥ ३९ ॥
 विधेयं गर्भभवनमलिन्दकपरिष्कृतम् ।
 कार्या तस्याग्रतः सीमा भागद्वितयमायता ॥ ४० ॥
 भागमेकं च विस्तीर्णा चतुःस्तम्भोपशोभिता ।
 तदग्रतोऽपरा सीमा कार्या भागान् वडायता ॥ ४१ ॥
 तिर्यक् स्था भागविस्तीर्णा प्रवेशद्वयशोभिताँ ।
 एवं शालायृहः (?) स्तम्भैर्द्वाविंशत्या समाहृत्वः ॥ ४२ ॥
 प्राग्रीवेदिकाजालपक्षसोपानकैः शुभैः ।

शालायृहः ।

पञ्चभागोन्मितव्यासे क्षेत्रे भागाष्टकायते ॥ ४३ ॥
 पीठं कुर्यादुभयतः ससोपानं शिलाचितम् ।
 मध्यादपरभागेऽस्य देवागारं निवेशयेत् ॥ ४४ ॥
 (वि?द्वि)भागायामविस्तारं चतुरथं सुसंहितम् ।
 पादोनभागविस्तारमध्यर्धं भागमुच्चितम् ॥ ४५ ॥
 तस्यं कार्यं मुखं मध्ये पार्ख्वतश्चयशोभितम् ।
 सचया निर्गता सीमा द्वौ भागौ त्रीस्तथाय(था?ता) ॥ ४६ ॥
 चतुरथा चतुःस्तम्भा तदग्रे भागविस्तृता ।
 पञ्चभागायता तिर्यक् कार्या सीमा तथापरा ॥ ४७ ॥
 द्वात्रिंशदत्र कर्तव्याः स्तम्भाः संवैक्यसङ्घव्यया ।
 वहिःपरिसरो गर्भात् ससीम्नो भागविस्तृतः ॥ ४८ ॥
 एवं स्याद् वेदिकाजालरूपादिभिरलंड्कृतः ।
 वहि(वे?श)योच्चितश्चैप्रासादो गजयूथपः ॥ ४९ ॥

गजयूथपः ।

पद्मभागभाजिते क्षेत्रे चतुरथे समन्ततः ।
 गर्भो द्विभागिकः कार्यो द्वारं भागसमुच्चितम् ॥ ५० ॥

१. 'थस्ता' क, ख, ग, पाठः । २. 'ताः' ख, ग, पाठः । ३. 'षा' क, ख, ग, पाठः ।
 ४. 'ता', ५. 'इ' ख, ग, पाठः । ६. 'स्व मध्ये मुखं कार्यं पा' ख, पाठः । ७. 'सर्वे व्यसं'
 ख, ग, पाठः । ८. 'विहा' ख, पाठः ।

भागार्थं द्वारविस्तारः प्रासादस्योच्छ्रितिं पुनः ।
 कुर्वति चतुरो भागात् छादयेचित्रकूटवत् ॥ ५१ ॥

कार्या द्विभागिकाः शालाः सालिन्दास्तस्य वाहतः ।
 वहिर्भित्तिपरिक्षिप्ताश्चतुर्भागायताः शुभाः ॥ ५२ ॥

द्वौ द्वौ गवाक्षकौ स्तम्भाः प्रतिशालं भवन्ति पद् ।
 चतुःस्तम्भधृतयुक्ताः कार्या वा धार्मिकालयैः ॥ ५३ ॥

नन्दावर्तोऽयमेवं स्यात् सप्राग्रीवचतुष्टयः ।
 प्रागु(?)द्वारक्षणोपेतः प्रासादः शुभलक्षणः ॥ ५४ ॥

नन्दावर्तः ।

क्षे(त्रःत्रे)पद्भागविस्तारे दशभागकृतायतौ ।
 मध्यादपरभागेऽस्य देवकोष्ठं निवेशयेत् ॥ ५५ ॥

चतुरंशप्रतिन्यौसं चतुरश्च समन्ततः ।
 द्वारं तस्य विधातव्यं भागमध्यधृतमुच्छ्रितम् ॥ ५६ ॥

पादोनं भागविस्तारं सिंहवक्त्रविभूषितम् ।
 सीमा तस्याग्रतः कार्या देवकोष्ठेन सम्मिता ॥ ५७ ॥

स्तम्भैः पोदशभियुक्ता भागद्वितयमुच्छ्रितैः ।
 ससीम्नो देवकोष्ठस्य समन्ताद् भित्तिवेष्टितः ॥ ५८ ॥

अलिन्दो भागिकः कार्यो गवाक्षरूपशोभितः ।
 (तत्)सीम्नोश्चाग्रतः पार्श्वे पद्दारुकयुता वेहिः ॥ ५९ ॥

कार्या द्विरंशाः प्राग्रीवा भागिकालिन्दवेष्टिताः ।
 द्विद्विस्तम्भधृताः सर्वे पार्श्वतश्चयशोभिताः ॥ ६० ॥

अलिन्दास्तु चतुःस्तम्भाः कार्याः प्राग्रीवकाग्रतः ।
 अवतंसक इत्येष सर्वलक्षणसंयुतः ॥ ६१ ॥

प्रासादः कथितः सम्यक्
 अवतंसः ।

स्वस्तिकः प्रोच्यतेऽधुना ।

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे पद्भागप्रविभाजिते ॥ ६२ ॥

१. 'का का' ख. ग. पाठः । २. 'गस्थादे' क, 'गस्थदै' ख. ग. पाठः ।
 ३. 'व्या', ४. 'श्चायतः' ख. ग. पाठः । ५. 'द्व' क. पाठः ।

प्रासादं कल्पयेन्मध्ये द्विभागायामविस्तुतम् ।
 द्वारपाशोऽस्य भागार्धविस्तृतो भागिकोदयः ॥ ६३ ॥
 गर्भेश्च चतुःस्तम्भमलिन्दो भागिको वहिः ।
 तस्य स्युद्वादश स्तम्भा भागिकोऽलिन्दकोऽपरः ॥ ६४ ॥
 विश्विस्तम्भसंयुक्तो विधातव्यः समन्ततः ।
 चयावृत्तेश्च पुरतो भागो वाष्ठधरान्वितः ॥ ६५ ॥
 भागमेकमुत्सृज्य कर्णाभ्यां भागविस्तृतौ ।
 भागिकोच्छायनिष्कासौ कार्यैः प्राग्रीवकौ पुनः ॥ ६६ ॥
 वाहतो भित्तिसंश्लिष्टौ त्रिदिशं सगवाक्षकौ ।
 स्वस्तिकोऽयं समाख्यातः प्रासादश्चित्रलक्षणः ॥ ६७ ॥

स्वस्तिकः ।

अथाभिधीयतेऽधुना प्रासादः १ शुभलक्षणः ।
 पद्मभागभाजिते क्षेत्रे चतुरश्च समन्ततः ॥ ६८ ॥
 द्विभागायामविस्तारं मध्ये गर्भगृहं भवेत् ।
 भागद्वयाच्छ्रैः स्तम्भैर्युतं व्यक्तैः सलक्षणैः ॥ ६९ ॥
 निष्क्रान्तेषु वहिर्भागे गर्भपादेषु योजयेत् ।
 तोरणानि मनोऽग्निं ककुप्तु चतुर्ष्वपि ॥ ७० ॥
 गर्भस्तम्भप्रमाणेन तानि स्तम्भद्वयेन वा ।
 समुत्क्षमानि युक्तानि कलशै रविमण्डलैः ॥ ७१ ॥
 पल्लवैः पत्रजात्यादिविभ्यासैश्चाप्यनेकशः ।
 भूषितास्ये पुनर्मूर्धिं मकराणां मुखैरपि ॥ ७२ ॥
 स्तम्भयोरन्तरे दद्यादुभौ मकरशूरिमौ ।
 अन्योन्याभिमुखे” श्लिष्टे कुर्यान्मकरयोर्मुखे ॥ ७३ ॥
 चतुर्णामपि निर्दिष्टस्तोरणानां मया विधिः ।
 अलिन्दो भागिकश्चान्यो वहिर्भागे प्रकीर्तिः ॥ ७४ ॥

१. ‘वै’ २. ‘त्त’ क. पाठः । ३. ‘दं’ क. ‘द’ ख. ग. पाठः । ४. ‘अ’ ख. ग. पाठः । ५. ‘रवै’ ख. पाठः ।

६. ‘क्षितिभूषण’ इति पाठः । स्वात् ।

स्युर्भागिकान्यलिन्दान्ते धार्मिकायतनानि च ।
 वैष्टितानि वहिर्भित्या सम्मुखानि परस्परम् ॥ ७५ ॥

धार्मिकालयभित्तीनां भूमिर्या वाशतो भवेत् ।
 तस्याः पददारुकाणि स्युर्भागमात्रोच्छ्रितानि च ॥ ७६ ॥

प्राग्रीवकैः ससोपानैर्दिव्यकैस्वानि भूपयेत् ।
 अपरस्याः पुनर्भित्तेर्भागद्वयविनिस्त्रितम् ॥ ७७ ॥

मध्ये द्विभागविस्तीर्णं देवकोष्ठं निवेशयेत् ।
 द्वारपाशं च कुर्वीत तस्योऽकुर्वेत् भागमुच्छ्रितम् ॥ ७८ ॥

तथा भागार्थविस्तारमित्येष क्षितिभूपणः ।
 प्रासादः कीर्तिः सम्यक् सर्वलक्षणलक्षितः ॥ ७९ ॥

क्षितिभूपणः ।

क्षेत्रस्य चतुरश्रस्य भागान् द्वादशं कल्पयेत् ।
 मध्ये गर्भं चतुःस्तम्भं तस्य कुर्याद् द्विभागिकम् ॥ ८० ॥

तद्विर्भागिकोऽलिन्दो द्वादशस्वभवान् भवेत् ।
 मध्येऽपरस्यां यौ स्तम्भां ताभ्यां कुर्वीत तोरणम् ॥ ८१ ॥

अलिन्दो भागिकः कार्यो भित्या भागिकया वृतः ।
 प्राच्यां पददारुकं मध्ये गर्भब्लासोनिमतायति ॥ ८२ ॥

तृतीयो भागिकोऽलिन्दः स्याद् भित्या परिवेष्टिः ।
 चतुर्भागायतं भूयस्तत्र पददारुकं भवेत् ॥ ८३ ॥

प्राग्रीवं भागविष्कम्भं कुर्याद् भागद्वयायतम् ।
 अग्रतः स्तोभितं स्तम्भैर्भागान्वस्थचयावृतम् ॥ ८४ ॥

यथा प्राच्यां तथोदीच्यां याम्यायामपि कीर्तिम् ।
 दिशि प्रतीच्यां तु पुनर्द्वितीयालिन्दकाद् वहिः ॥ ८५ ॥

द्विभागायामविष्कम्भं देवकोष्ठं निषेशयेत् ।
 सप्तकद्वारकं श्रीमद् द्वारपाशोपशोभितम् ॥ ८६ ॥

भागिकोऽलिन्दकस्तस्माद् वहिर्भित्याभिवेष्टिः ।
 वहिश्चयावृतो वा स्याद् गवाक्षैर्वा विभूषितः ॥ ८७ ॥

१. 'कां' ग, पाठः । २. 'भै' क, पाठः ।

पृथ्वी विजयते यस्मात् तेनासौ पृथिवीजयः ।
भूजयः ।

यदा पृथ्वीजयस्यैव कर्णप्राग्रीवकावुभौ ॥ ८८ ॥
कोणेषु भागिकौ स्यातां विज्ञेयो विजयस्तदा ।
विजयः ।

अयं समन्तादुत्खसो वायालिन्दं विना यदा ॥ ८९ ॥
मध्यमालिन्दसौष्ठ(स्वंैस्थ)कर्णप्रासादकैश्चितः ।
प्रथमालिन्दगर्भौ च समुत्खस्तरौ ततः ॥ ९० ॥
स्यातां छायद्वयच्छब्दौ तदा नन्दोऽभिधीयते ।
नन्दः ।

चतुरश्रीकुते क्षेत्रे दशभागविभाजिते ॥ ९१ ॥
चतुरश्रो भवेन्मध्ये देवकोष्टो द्विभागिकः ।
द्वारबन्धोऽस्य भागोच्चः कार्यो भागार्धविस्तृतः ॥ ९२ ॥
स्याद् वहिर्द्वादशधरोऽलिन्दको^१ देवकोष्टतः ।
भागिकः स च विज्ञेयो भित्तियुक्तस्ततोऽपरः ॥ ९३ ॥
अयं द्विभागिकैर्युक्तः प्राग्रीचैर्भागनिर्गमैः ।
तथा तृतीयोऽलिन्दः स्यात् समन्ताद् भित्तिवेष्टितः ॥ ९४ ॥
प्राग्रीवकैश्चतुःस्तम्भैः सप्रवेशैर्विभूषितः ।
भागिकी स्याद् वहिर्भित्तिरितरा तु धरैः समा ॥ ९५ ॥
इत्येष श्रीतरुनीम प्रासादः परिकीर्तितः ।
श्रीतरुः ।

अस्यैव स्तम्भगर्भस्य द्वितीयालिन्दभित्तिषु ॥ ९६ ॥

षडाखणि विधेयानि पूर्वरूपव्यवस्थितैः ।
द्वौ द्वौ प्राग्रीवकौ कार्यौ तृतीयालिन्दकाद् वहिः ॥ ९७ ॥
तौ च द्वि(भाग)न्तरितौ सर्वतो भागनिर्गतौ ।
एवं पञ्चांशता(?) स्तम्भैर्द्वाभ्यां च परिवेष्टितः ॥ ९८ ॥

१. 'तो' क. ग. पाठः । २. 'ते' क, 'तैः' ख. पाठः ।

चतुःस्तम्भैः सप्रवेशैः समन्तादुपरिगमैः ।
प्रासादोऽयं समाख्यातो नामतः प्रमदाप्रियः ॥ १९ ॥

प्रमदाप्रियः ।

भागविस्तारविष्कम्भमस्य प्राग्रीवकं यदा ।
भिन्नालिन्दाग्रतस्तिर्यग् द्वे शाले तन्मुखं शुभम्(?) ॥ १०० ॥

द्वितीयालिन्दकस्थाने कर्णप्रासादकैर्युतः ।
एवं व्यामिश्रसंज्ञोऽयं प्रासादः परिकीर्तिः ॥ १०१ ॥

व्यामिश्रः ।

विजयस्यास्य च यदा कर्णलाङ्गलकैर्युता ।
भवेद् भित्तिस्तदा हस्तिजातीय इति कथ्यते ॥ १०२ ॥

हस्तिजातीयः ।

सीमाप्राग्रीवभूमीषु यदा स्युः पृथिवीजये ।
द्विभागाश्चाभितोऽलिन्दास्तिर्यक्षशालामुखेषु च ॥ १०३ ॥

अलिन्दे^१ पश्चिमा शाला स(र्वैर्वा)शालोकना शुभा ।
पद्मारुकं तथैवात्र चतुर्भागायतं भवेत् ॥ १०४ ॥

पूर्ववत् सर्वमन्यच्च कुबेरः स तदा भवेत् ।

कुबेरः ।

प्रासादः कथ्यतेऽन्यथ सम्प्रतीह धराधरः ॥ १०५ ॥

कुबेरोपत्तरोक्षिप्तः(?) कर्णप्रासादभूषितः ।

मध्यद्वारान्वितः श्रीमान् धराधर इति स्मृतः ॥ १०६ ॥

वसुधाधरः ।

यत्रौग्रतश्चित्रकूटस्तस्माद् यः सर्वतोदिशम् ।

धराधरतदम्भासः(?) सर्वतोभद्र उच्यते ॥ १०७ ॥

सर्वतोभद्रः ।

कर्णप्राग्रीवकौ द्वौ द्वौ शालाप्राग्रीवका(अत्रैव)पि ।

स्यातां यदास्य प्रोक्तोऽसौ विमानाख्यस्तदा शुभः ॥ १०८ ॥

विमानाख्यः ।

विमानंपीडे निर्मुक्तः शालाभिः सर्वतो हृतः ।

अन्योन्यशालासम्बन्धे विमानो न्यस्यते यदा ॥ १०९ ॥

१. 'वेदस्तितदा' ख. पाठः । २. 'कालम्' क. पाठः । ३. 'आ' क. ख. ग. पाठः ।
४. 'न्दो' ख. ग. पाठः । ५. 'याग्रभविति', ६. 'नं', ७. 'कशा' क. पाठः ।

कर्णप्रासादकोपेतः कोणैः शालोजिङ्गतैर्युतः ।
 तदा विमुक्तकोणः स्यात् प्रासादोऽत्यर्थशोभितः ॥ ११० ॥
 मुक्तकोणः ।
 प्रासादाश्चतुरथ्राः स्वैर्विशेषैर्वर्णिताः पृथक् ।
 इदानीमभिधीयन्ते वृत्ताः स्वैः स्वैर्विशेषणैः ॥ १११ ॥
 तत्रादौ वलयाकारो वलयः स च कथ्यते ।
 समन्ताद वर्तिते क्षेत्रे चतुर्भागविभाजिते ॥ ११२ ॥
 कुर्यात् सारोहणं पीठं सार्धभागोच्छृतं शुभम् ।
 परिक्षिप्तं गजमुखैर्मक(र?रा)स्याम्बुर्निर्गतम् ॥ ११३ ॥
 वहिर्भागसमोपेतस्तस्मिन् कार्यः सुरालयः ।
 पादोनविस्तृतिर्दिव्यद्वारोच्छायविभूषितः ॥ ११४ ॥
 तस्याएस्तम्भकोऽलिन्दो वहिर्वलय इत्यसौ ।
 वृत्तच्छायः सिंहकर्णस्तथा जालकरूपवान् ॥ ११५ ॥
 न भूवलयः ।
 प्राग्रीवका(वृतः) स स्याद् यदा ६ स्तम्भोच्छ्रयानतः ।
 तदैष * दुन्दुभिः प्रोक्तस्त्रिभिस्तैः प्रान्त उच्यते ॥ ११६ ॥
 अयमेव चतुर्भिः स्यात् पद्मः प्राग्रीवकैः शुभैः ।
 स्तम्भैश्चतुर्भिस्तस्यैव यदा पद्मान्निवेश्यते ॥ ११७ ॥
 मध्यवृत्तो गर्भकोष्ठो भित्तिश्चोभयतः स्थिता ।
 स कान्त इति विख्यातः प्रासादो वर्तुलाकृतिः ॥ ११८ ॥
 चत्वारि वलयस्यैव यत्र द्वाराण्यलिन्दकः ।
 स्याच्चतुर्विश्चतिस्तम्भैर्दितीयो भागसम्मितः ॥ ११९ ॥
 प्राग्रीवकाश स्तम्भाभ्यां द्वाभ्यां द्वाभ्यां समन्विताः ।
 चत्वारो यत्र स प्रोक्तः प्रासादोऽत्र चतुर्मुखः ॥ १२० ॥
 अस्यैवैकं यदा द्वारं प्राग्रीवोऽलिन्दवेष्टिः ।
 एक एव तथाचान्यः प्राग्रीवस्तस्य चाँग्रतः ॥ १२१ ॥

१. 'ग्रीवको' ल. पाठः । २. 'तिर्दिव्य', ३. 'गंतदीयजा' क. पाठः । ४. 'च्छ्रयद्वयान्वितः', ५. 'तदेव दु' ल. पाठः । ६. 'शयेत्' क. ल. पाठः । ७. 'वा' क. पाठः ।

† लक्षणे च वलय इत्यर्थं पठितः । ६ स्तम्भद्वयान्वितः इति पाठः स्यात् । * इत आरभ्य तत्त्वप्राप्तादनामानि पृथक्या मातृकायां न लिखितानि ।

स्थातो माण्डूक इत्येष वृच्चप्रासादसत्तमः (वृत्तः?)।
दिकोणेषु यदास्यैव भवेत् प्राग्रीवकल्पना ॥ १२२ ॥

प्रासादोऽयं तदा कूर्मसंज्ञः स्यादपराजितः ।
कूर्मस्यैव यदा दिक्षु स्तम्भैरष्टाभिरष्टभिः ॥ १२३ ॥

प्राग्रीवकाः प्रकल्प्यन्ते चत्वारोऽलिन्दवेष्टिताः ।
प्राग्रीवकास्तिर्यग्ने भवन्त्यन्ये तदग्रतः ॥ १२४ ॥

पोडशस्तम्भयुक्तस्य मध्यभागे यदा भवेत् ।
† जानीयादोपविज्ञेयाः प्राग्रीवहरितोत्तमः (?) ॥ १२५ ॥

इति वृच्चाः समाख्याताः प्रासादा नामलक्षणैः ।
चतुरश्चायतान् वूमः प्रासादानिह साम्प्रतम् ॥ १२६ ॥

अष्टभागायते क्षेत्रे चतुरशकविस्तुते ।
द्विभागसार्धभागैकभागोऽयं पीठं इष्यते ॥ १२७ ॥

पश्चिमं भागमुत्सुज्य देवकोष्ठं द्विभागिकम् ।
तस्मिन् निवेशयेत् सीमा स्यादस्याग्रेऽष्टभिर्धरेः ॥ १२८ ॥

ससीम्नो देवकोष्ठस्य भागिकालिन्दको वहिः ।
युक्तो धराणां विंशत्या वेदिकाजालवेष्टितः ॥ १२९ ॥

प्राग्रीवकस्य तस्याग्रे स्तम्भद्वितयभूषितः ।
द्विच्छाद्यच्छादितः श्रीमान् सिंहकर्णैरलङ्घकृतः ॥ १३० ॥

प्रासादोऽयं भवो नाम विशालः कर्षयतेऽधुना ।
यदास्यैव सनिष्कान्ते सीमायांमे च व(र्धीर्धिं)ते ॥ १३१ ॥

वलभ्यौ पार्श्वयोः स्यातां विशालाख्यस्तदा भवेत् ।
विशालस्य यदा गर्भे भित्तिर्भवति दिक्त्रये ॥ १३२ ॥

१. 'न्द्रू' क. ख. पाठः । २. 'कत्तः', ३. 'ऐः' । वृत्तप्रासादः । च' क. पाठः ।
४. 'ठमिष्य' ख. पाठः । ५. 'योगे च' क. ख. पाठः । ६. 'त' क. पाठः ।

† इह कियांकिद् प्रन्थो गलित इव भाति, यतो वृत्तप्रासादमेदेषु लक्ष्ये परिगणि-
तयोरुपान्त्ययोः तालीश्चृष्टीनामकयोर्लक्षणं न दर्शितम्, अत्र दृश्यमानस्य च क्षेत्रार्धस्य
नार्थसामञ्जस्यम् ।

द्वौ द्वौ गवाक्षकौ चापि साम्भुख्यः स भवेत् तदा ।
 प्राणीवास्त्रिदिशं तस्य गर्भकोष्टायता यदा ॥ १३३ ॥
 हित्वा वलभ्यौ प्राणीवौ विधीयेते तथापरौ ।
 कर्णेषु भागमेकैकं त्यक्त्वा स्यात् प्रभवस्तदा ॥ १३४ ॥
 एतस्यैव मुखे स्यातां यदा प्राणीवकावुभ्यौ ।
 पार्वयोरपरौ द्वौ द्वौ प्राणीवौ भवतो यदा ॥ १३५ ॥
 कर्णेषु भित्तयश्च स्युस्तदा स्याच्छिविरागृहः ।
 यदास्यैव मुखे शाला भागद्वितयविस्तृता ॥ १३६ ॥
 आयामेन च पडभागा प्राणीवौ द्वौ तदग्रतः ।
 द्वौ द्वौ गवाक्षकौ स्यातां तद्वित्त्योरुभयोरपि ॥ १३७ ॥
 सीमायां द्वादश स्तम्भा मुखशालस्तदा भवेत् ।
 अलिन्दो भागिकः कार्यो विशालैस्यैव वाशतः ॥ १३८ ॥
 प्राणीवभूमिषु द्रृतौ भित्त्या च सगवाक्षकः ।
 अग्रतः सहितः स्तम्भैः पडभित्त क्रियते यदा ॥ १३९ ॥
 द्विशाल इति विलयातः प्रासादो जायते तदा ।
 यदास्यैव विधीयन्ते स्तम्भाः सर्वे समन्ततः ॥ १४० ॥
 प्राणीवकौ चोभयतो गृहराजस्तदा भवेत् ।
 सर्वस्यैव(?) यदालिन्दः स्यादन्यो भागविस्तृतः ॥ १४१ ॥
 सीमान्तविस्तृते स्यातां वलभ्यौ भागनिस्मृते ।
 भित्तिर्विधीयते शेषा गवाक्षैरुपशोभिता ॥ १४२ ॥
 मुखे पडदारुकं च स्यात् तदा स्यादमलाभिधः ।
 एकादशायते क्षेत्रे तथा पडभागविस्तृते ॥ १४३ ॥
 मुक्त्वा भागद्वयं पश्चाद् देवकोष्टं निवेशयेत् ।
 भागं मुक्त्वाग्रतः कुर्यात् सीमां भागचतुष्टयम् ॥ १४४ ॥
 अष्टस्तम्भास्ततोऽलिन्दविंशतिस्तम्भभागिकाः ।
 भागिकः परितोऽलिन्दोऽष्टाविंशतिधरोऽपरः ॥ १४५ ॥

१. 'स्यात् च' २. 'लाख्ये च वा', ३. 'चौ', ४. 'वि', ५. 'विस्तृते'
 क. पाठः ।

द्विद्विस्तम्भयुताः कार्याः प्राग्रीवाः कोष्ठजास्त्रैयः ।
 सीमासमे वलभ्यौ च प्राग्रीवौ मध्यतस्तयोः ॥ १४६ ॥
 द्विद्विस्तम्भौ पुरश्चान्यौ वेदिकाजालशोभितौ ।
 वेदिकाजालरूपाङ्ग्यः सिंहकर्णोपशोभितः ॥ १४७ ॥
 प्रासादोऽयं विशुर्नाम कथितो भर्तुनन्दनः ।
 एवमेते समाख्याताश्चतु आवता दश ॥ १४८ ॥
 चतुरश्रायतांस्तियगायत्यायापरानपि ।
 प्रासादानभिधास्यमो नैवसंस्थानलक्षणैः ॥ १४९ ॥
 द्वौ भागौ विस्तृतिर्ये द्विगुणा तियगायतिः ।
 मध्ये भागोच्छ्रुतं द्वारं तदर्देन तु विस्तृतम् ॥ १५० ॥
 स्तम्भैश्चतुर्भिः संयुक्ता सीमा द्वारस्य वाग्रतः ।
 द्विभागायामविस्तारा तावन्मात्रसमुच्छ्रुतिः ॥ १५१ ॥
 तां सीमां गर्भसहितां भागेनान्पेन वेष्टयेत् ।
 भित्तिसंत्र वियातवा लगदाक्षा चतुर्दिशम् ॥ १५२ ॥
 पह्दारुकयुता^१ छप नानकी भव उच्यते ।
 अस्यैव भागनिष्ठाना लाला गुणवतुष्टये ॥ १५३ ॥
 यदौ पह्दारुकोपेता विशालः स तदोच्यते ।
 स्तम्भैमुखेमुखे पह्दानिष्ठैः साम्युच्य इत्यसौ ॥ १५४ ॥
 अस्यैव सीमा कण्ठदा द्विद्विस्तम्भयुता यदा ।
 प्राग्रीवैर्भागनिष्ठाना विहस्था प्रभवस्तदा ॥ १५५ ॥
 सीम्रोऽग्रतो वदास्यैव स्तम्भदृशयुतो भवेत् ।
 प्राग्रीवो भागनिष्ठानतस्तदा स्याच्छिविराग्नहः ॥ १५६ ॥
 विशालसबिवेशस्य भुखे शाला भवेद् यदा ।
 पार्वयोश्चाभ्योः शाले प्राग्रीवाश्च त्रयो यदा ॥ १५७ ॥
 निष्क्रान्तभाग एककः स्तम्भद्वितयसंयुतः ।
 प्रासादः स तदा ज्ञेयो मुखशालोऽभिधानतः ॥ १५८ ॥

१. 'त', २. 'म्युक्त' क. पाठः । ३. 'भाग', ४. 'ते', ५. 'श',
 ६. 'वभाग' ख. पाठः ।

मुखशालाग्रशालाया यदा स्तम्भाश्चतुर्दश ।
 प्राणीवौ द्विविधश्चाग्रे द्विशालः स तदा भवेत् ॥ १५९ ॥
 ६ भित्तिस्तदार्नी(?)प्रासादो गृहराजः प्रजायते ।
 गर्भायामसमावग्रपृष्ठयोर्भागविस्तृतौ ॥ १६० ॥
 चतुर्थतुर्थरौ यत्र प्राणीवौ द्वौ च पार्वयोः ।
 तौ तु द्विद्विधरौ गर्भविस्तारेण तु सम्मितौ ॥ १६१ ॥
 अमलो नाम स प्रोक्तः प्रासादः शुभलक्षणः ।
 अस्यैव चाग्रे पृष्ठे च द्विद्विस्तम्भयुतौ यदा ॥ ६२ ॥
 प्राणीवौ स तदा प्रोक्तः प्रासादो दशमो विष्णुः ।
 प्रासादान् कथयामोऽन्यान् दश वृत्तायतान् पुनः ॥ १६३ ॥
 अष्टमाग्रमुखायत्या विस्तृत्या चतुरश्चकम् ।
 वृत्तायतं प्रकुर्वीत सवाक्षाभ्यन्तरं ततः ॥ १६४ ॥
 गर्भं पश्चिमभागेऽस्य चतुर्भागं समन्ततः ।
 कुर्यात् तस्याग्रतः सीमां भागद्वितयविस्तृताम् ॥ १६५ ॥
 भागत्रयमितां भागेनैकेनान्तरितां च ताम् ।
 संयुक्तामष्टभिः स्तम्भैः सुदृढैश्चारुदर्शनैः ॥ १६६ ॥
 अलिन्देन परिक्षिप्तां ससीमां देवकोष्ठकम् ।
 योदशस्तम्भयुक्तेन कुर्यात् प्राणीवमग्रतः ॥ १६७ ॥
 छञ्चाश्चाद्यद्वयेनायमामोद इति कीर्तिः ।
 वृत्तायतेषु प्रथमः प्रासादः स्वामिनो हितः ॥ १६८ ॥
 समाहिती यदास्यैव प्राणीवौ भागमित्रिती ।
 चतुःस्तम्भै रैतिकस्तु वृत्ताभ्यां तुङ्ग उच्यते ॥ १६९ ॥
 यदा सीमावधिभिर्तिर्गवाक्षैरुपशोभिता ।
 वृत्तप्राणीव एकोऽन्ये(?) तदा चारुरुदाहृतः ॥ १७० ॥
 सीमापद्ये विधातव्यौ प्राणीवौ भागविस्तृतौ ।
 विस्तारसदशायामौ दक्षिणेति(?) त्रिषु त्रयः ॥ १७१ ॥

६ इहापि कियांश्चिद् ग्रन्थो गलित इव । इतः शोकद्वयात् प्रागेव क. पुस्तके
 पत्राणि आचतुष्यत्वाद्याय्यैकदेशं लुप्तानि । ग. ग्रन्थस्तु पुरेवावसितः ।

कार्याः प्राग्रीवकास्ते च गर्भकोष्ठेन सम्प्रिताः ।
 भूतिरित्येष (सं)प्रोक्तः प्रासादः शुभलक्षणः ॥ १७२ ॥
 मुखायता स्याच्चतुरो भागान्यत्तिर्यगायतान् (?) ।
 क्षेत्रवृत्तं ततः कुर्यात् तन्मध्ये गर्भवेद्म च ॥ १७३ ॥
 चतुर्भागायतं तत् स्याद् भागद्वितयविस्तृतम् ।
 अलिन्दो वाद्यतस्तस्य द्वादशस्तम्भसंयुतः ॥ १७४ ॥
 भागद्वितयविस्तारः प्राग्रीवशांशनिर्गतः ।
 निषेध (ध इति विद्वक इति) ख्यातः प्रासादोऽयं पुरातनैः ॥ १७५ ॥
 यदा(१) निषेधः स्यादस्य पुरः प्राग्रीवको यदि ।
 चतुर्द्वारपरिक्षिसोऽलिन्देनाष्टधरेण वा ॥ १७६ ॥
 अयमेवांशकेन स्याद् यदालिन्देन वेष्टितः ।
 मुखभागत्रयं मुक्त्वा भिस्या च परिवेष्टितः ॥ १७७ ॥
 यदा च कर्णप्राग्रीवौ प्राग्रीवशाग्रतो भवेत् ।
 विशेषरचना या च द्वाविंशतिधरान्वितौ (?) ॥ १७८ ॥
 गवाञ्जैः शोभनैर्युक्तस्तदा सिंहः प्रकीर्तिः ।
 द्वादशांशायते क्षेत्रे तथा पदभागविस्तृते ॥ १७९ ॥
 पश्चादंशद्वयं त्यक्त्वा द्विभागायामविस्तृतः ।
 देवकोष्ठो विधातव्यस्तद्वारं भागमुच्छ्रितम् ॥ १८० ॥
 सीमाग्रे सान्तरा द्वंशविस्तृता चतुरायता ।
 अष्टस्तम्भोऽस्य गर्भो वै षोडशस्तम्भको वहिः ॥ १८१ ॥
 अलिन्दस्तस्य पुरतो वृत्तप्राग्रीवकोऽपिच ।
 सीमाग्रीवकालिन्दकोष्ठान् वृत्तान् प्रकल्पयेत् ॥ १८२ ॥
 प्राग्रीवौ पार्श्वयोः सीमासमौ भागविनिर्गतौ ।
 द्वाभ्यां द्वाभ्यां युतौ इयौ स्तम्भाभ्यां वर्तुलाकृती ॥ १८३ ॥
 एतत्सर्वं विधातव्यमलिन्देनाभिवेष्टितम् ।
 चतुर्विंशतिरोऽयं च भागिकोस्य प्रशस्यते ॥ १८४ ॥
 द्विस्तम्भयुक्तान् प्राग्रीवान् कुर्याद् गर्भस्य दिक्त्रये ।
 एवमेष समाख्यातः प्रासादः सुग्रमः शुभः ॥ १८५ ॥

भागद्वितयविमताराः प्राणीवा येऽस्य कीर्तिः ।
 चतुरश्चास्त एव स्युद्दिविस्तम्भयुता यादि ॥ १८६ ॥
 शेषा भवति भित्तिश्च गच्छक्षुरुपशोभितः ।
 प्रासादोऽयं तदा ज्ञेयो दशमो लोचनोन्तसवः ॥ १८७ ॥
 अष्टाश्रानथ वक्ष्यामः प्रापादाँछुक्षणः सह ।
 चतुभागान्विते क्षेत्रे तथाष्टाश्चक्षुते पुनः ॥ १८८ ॥
 द्वौ भागी गर्भकोष्ठः स्यादलिन्दो भागिकस्तदा ।
 स्तम्भाष्टकमलिन्दे स्याद् प्राणीवस्तस्य चाग्रतः ॥ १८९ ॥
 द्विच्छाद्य(श्छाद्य) दितः श्रीपान् प्रासादो वज्रको भवेत् ।
 अस्यैवाग्रे यदा सीमा चतुरश्चा चतुर्वरा ॥ १९० ॥
 स्याच्चतुर्विशतिस्तम्भश्चालिन्दो भागिकोऽपरः ।
 नन्दनोऽयं समाल्पातः शङ्कुः प्राणीवक्त्रिभिः ॥ १९१ ॥
 वस्य भित्तिश्चातव्या क्षेत्रे षष्ठ्युते बुधैः ।
 बापन(श्चस्य) पुनर्द्वाद्वौ गच्छक्षी दिक्क्रये मतौ ॥ १९२ ॥
 अस्यैवाग्रे यदा सीमाभागाद् भागव्यायता ।
 द्विभागं विसृता अंशसमुच्छेदाष्टभिर्भैः ॥ १९३ ॥
 अलिन्दावेष्टिता युक्ता प्राणीवमेखला तदा ।
 भित्तिक्षेत्रे यदास्यैव प्राणीवाः पारवेष्टिताः ॥ १९४ ॥
 अलिन्देन धरैः पदभिः पदभिर्युक्तास्तदा लयः ।
 अष्टमाग्निते क्षेत्रे क्षुतेऽष्टाश्रिणि सवतः ॥ १९५ ॥
 भागद्वितयितं कुर्याद् देवकोष्ठं पनोरमम् ।
 चतुर्भिः शोभितं द्वारैर्भागिका(लिन्दवेष्टितम्) ॥ १९६ ॥
 अलिन्दस्य विधातव्याः स्तम्भाश्चाष्टी ततोऽपरः ।
 स्याच्चतुर्विशतिस्तम्भो भागिकोऽलिन्दकः पुनः ॥ १९७ ॥
 तथाविधस्तुतीयोऽपि प्राणीवाश्च चतुर्दिशम् ।
 प्रासादोऽयं महापम्भो ब्रह्मणः शङ्करस्य च ॥ १९८ ॥

ॐ इहानुक्रमो व्यत्यस्तः । ॐ लक्ष्ये तु मेत्वल इति पठितः ।

द्वितीयोऽस्य लिन्दके इत्यैव प्राग्रीवाः स्युश्चतुर्दिशम् ।
 अलिन्देन परिक्षिप्तो हंस एष प्रकीर्तिः ॥ १९९ ॥

प्राग्रीवोऽस्य महापञ्चस्यालिन्देनावृतो यदा ।
 कर्णप्राग्रीवकौ द्वौ द्वौ व्योमसंज्ञस्तदा भवेत् ॥ २०० ॥

हंसस्यैव बलभ्यः स्युः प्राग्रीवाणां पदे यदा ।
 चतुःस्तम्भाः परिक्षिप्ता अलिन्देन चतुर्दिशम् ॥ २०१ ॥

तदा चन्द्रोदयो नाम प्रासादो जायते शुभः ।
 एवमेषां चतुष्पृष्ठिः प्रासादानामुदाहृता ॥ २०२ ॥

इति सुरभवनानां सप्ततिर्दीरचाणा-
 मिह सदनचतुष्पृष्ठेणान्वितेयं प्रदिष्टा ।
 जनमयमवकोशानन्दशुभ्रांशुलेखा (?)
 भवति सुविदितैषा शिलिप्नां कामघेनुः ॥ २०३ ॥

इति महागजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते यमराङ्गसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशाखे
 रुचकादिचतुष्पृष्ठिप्रासादलक्षणं नामैकोनपञ्चाशोऽध्यायः ।

अथ प्रासादशुभाशुभलक्षणं नाम पञ्चाशोऽध्यायः ।

प्रासादानामय ब्रूमो लक्षणानि भवन्ति ये ।
 प्रशस्ताश्चापश्चस्ताश्च तस्मिन्बन्निमण्डले ॥ १ ॥

ये समाः समकर्णाश्च समस्तम्भाः समक्षणाः ।
 नैवोच्चा नातिहस्याश्च कर्णायामादविहलाः ॥ २ ॥

असंमूढा विभागेन प्रपाणेन सुसंस्थिताः ।
 उर्ध्वाधिः कर्णपादीभिरुपेताः सलिलान्तरैः ॥ ३ ॥

असङ्कीर्णोदयैश्चाद्यैः स्वमानपरिकल्पितैः ।
 सुविभक्ताः सुसंस्थाश्च रम्यरविकलैः कृताः ॥ ४ ॥

समभागविभक्तैश्च युक्ताश्चालिन्दकैः समैः ।
 स्वजातिपरिवेषाद्या नान्यजातिप्रदृष्टिताः ॥ ५ ॥

असङ्कीर्णाः शरीरेण संस्थानेन सुसंस्थिताः ।
 केषला जातिशुद्धाश्च प्रासादाः शुभदां नृणाम् ॥ ६ ॥

सुदृढैर्मूलपादेश दृढाशामूलमस्तकम् ।
 नाधरोचरयुक्ताश्च सुशिष्टद्रव्यसन्धिभिः ॥ ७ ॥
 देवैश्च जातिप्रसिद्धेश्च भूषणः सुविभूषिताः ।
 प्रासादाः शुभदा नित्यं पूजासंस्कारवर्धनाः ॥ ८ ॥
 कर्ता कारयिता चैषां परां दृद्धिमवाप्नुयात् ।
 अधमानपि वक्ष्यायः प्रासादानबलक्षणैः ॥ ९ ॥
 विषमाः कर्णहीनाश्च क्लेशवन्धमयावहाः ।
 स्तम्भैः क्षणैश्च विषमैः स्वामिनो मृत्युहेतवः ॥ १० ॥
 अत्युच्चैः स्पाद भयं राज्ञो हस्तैः सेना च मध्यते ।
 कर्णायामेन विकलाः प्रासादाः स्युर्भयङ्कराः ॥ ११ ॥
 विभागेन विहीनास्तु दारिद्र्यमयदाः स्मृताः ।
 नष्टाभिः कर्णपादीभिरुद्गजनना नृणाम् ॥ १२ ॥
 छाद्यैः सङ्कीर्णकैर्हीनैः कुलक्षयकराः स्मृताः ।
 दुर्विभक्ताः कुसंस्थाश्च द्रव्यविकलसंयुतैः ॥ १३ ॥
 रोगं क्लेशं च मृत्युं च क्रमशो वितरन्ति ते ।
 विषमैर्भागहीनैश्चाप्यलिन्दन्वर्याधितो भयम् ॥ १४ ॥
 पराजयं परिवृत्तैरन्यजातिप्रदूषितैः ।
 ये परावृतयो येऽन्यसङ्कीर्णो येऽन्यविग्रहाः ॥ १५ ॥
 कर्तुः कारयितुन्ते नन्दका वापि चात्मनः ।
 दुर्वला मूलपादेन विशिष्टैः पीठसन्धिभिः ॥ १६ ॥
 अल्पायुपस्ते प्रासादा भवन्ति च भयावहाः ।
 अधरोचरगैः शिष्टैविज्ञेया व्याधिकारिणः ॥ १७ ॥
 अदेशैर्भूषणैर्युक्ताः प्रासादा न सुखावहाः ।
 ये कीर्तिपिच्छलन्ति जयन्ति भूतान् कुर्यात् शुभैर्क्षमभिरन्वितांस्ते ।
 प्रासादमुख्यानितरे तु वज्यास्तेजोयशः श्रीविजयादिकामैः ॥ १८२ ॥
 इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनान्नि वास्तुशास्त्रे
 प्रासादशुभुभलक्षणं नाम पञ्चाशोऽध्यायः ॥

अथायतननिवेशो नामैकपञ्चाशोऽध्यायः ।

एवं नृपस्य प्रासादे कुले कल्पेऽथवा भुवि ।
 तस्यानुजीविनः कुरुः प्रासादान् परिधौ यदि ॥ १ ॥

तदा दिग्भागविन्यासस्थानमानान्यनुक्रमात् ।
 तेषामिहाभिधीयन्ते सर्वेषां द्विद्वेष्टवे ॥ २ ॥

दशाष्टौ पद् च धनुषां ज्ञानानि श्माभृतां क्रमात् ।
 मानमायतनस्योक्तं व्रेता श्रेष्ठादिभेदतः ॥ ३ ॥

क्षेत्रमायतनस्यैवं चतुरश्च समन्ततः ।
 तत्र भक्ताः प्रकुर्वीरस्त्रिधा स्वे स्वामिवत्सलाः ॥ ४ ॥

ये चास्य सम्मताः केचित् कुले जाता हितैषिणः ।
 द्वादशांशेन हीनानि क्रमात् तान्यनुजन्मनाम् ॥ ५ ॥

तस्यैव वाप्तः कुर्यादुत्सेधाद् द्विगुणान्तरे ।
 कुर्याद् दशांशहीनानि नैर्कृत्यां दिशि भूपतेः ॥ ६ ॥

प्रासादान्नृपपत्रीनां सर्वासामपि शास्त्रवित् ।
 अष्टभागेन हीनानि पत्रीच्यां दिशि कारयेत् ॥ ७ ॥

देवधिष्यानि तन्त्रैः स्यात् स्वसुराणां विधानतः(?) ।
 सौम्याया मास्तीं यावन्वांशापचिताः क्रमात् ॥ ८ ॥

प्रासादा मन्त्रिसेनानीप्रतीहारपुरोधसाम् ।
 एतेषां पूर्वभागस्थं राजमातुर्निवेशनम् ॥ ९ ॥

हीनपेकादशांशेन तत् कार्यं राजकारिता(?) ।
 ऐशीमाश्रित्य देवानां तुल्यमैन्द्रपदावधि ॥ १० ॥

स्वसृष्टाणां मातुलानां च कुमाराणां तथा क्रमात् ।
 आग्नेयां द्विजमुख्यानां विधातव्यं निवेशनम् ॥ ११ ॥

कार्यः पुरोधःप्रासादः तुल्यतप्तुनरेव वा(?) ।
 याम्यायां कुर्यादृष्टांशहीनान्युर्वीशमन्दिरात् ॥ १२ ॥

सामन्तकुञ्जरारोहमटपौरजनाः क्रमात् ।
 एतान्यायतनान्येषां यथाभागं प्रकल्पयेत् ॥ १३ ॥

मर्मवेधप्रदेशस्थान् द्वारवेधगतानपि ।
 स्वस्थानान्तरितांचैतान् न कुर्याद्वितकाम्यया ॥ १४ ॥
 अलिन्दैर्ग्यभक्तौषुश्च सीमास्तम्भगवाक्षकैः ।
 द्वारद्रव्यतलोच्छ्रायैः प्राग्रीवैः सिंहकर्णकैः ॥ १५ ॥
 न कुर्याद्भूषणैस्तुलयं समं वास्थंदरूपतः (?) ।
 समरूपं भवद्भर्म्य निर्युक्तं च न नन्दति ॥ १६ ॥
 राजपीडा भवेत् तस्मिन्नाधिक्ये च कुलक्षयः ।
 प्रासादाद् भूमिपालस्य निवेशं परिधौ स्थितम् ॥ १७ ॥
 द्रव्येण कतरेणापि नोत्कृष्टं कारयेद्बुधः ।
 संस्थानान्मानतश्चापि विस्तारेणोच्छ्रयेण वा ॥ १८ ॥
 पूर्वोक्तिभ्यो विभागेभ्यः किञ्चिद्दीनतमः शुभः ।
 अन्योन्यं द्विगुणच्छ्राद्यरकैकस्यान्तरं शुभम् ॥ १९ ॥
 सुभोगयं तं च कुर्वीत बहुभिर्भवनान्तरैः ।
 कोष्ठिकाभोजनागर्भाण्डोपस्करथामभिः ॥ २० ॥
 शिलालूपात् (?) शालाभिः शेषं तु परिपूरयेत् ।
 प्रशस्तान् कारयेत् सर्वाङ्गं शुभरूपान् मनोरमान् ॥ २१ ॥
 प्रायशः स्वालयांश्चान्यान् सर्वस्यान्यगृहाणि च ।
 नरेन्द्रायतनस्यैव निवेशात् परिकल्पयेत् ॥ २२ ॥
 अन्यथात्वे महादोषा वैपरीत्ये कुलक्षयः ।
 इति कथितदिग्दादिभेदयोगैः
 सुरभवनानि भवन्ति यस्य राहः ।
 अविरतमुदितोदितप्रतापः
 स्वसुजितां स चिरं प्रशास्ति पृथ्वीम् ॥ २३^१ ॥

इति महाराजाविराजभीमोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
 आयतननिवेशो नामैकपञ्चाशोऽध्यायः ॥

अथ प्रासादजातिर्नाम द्विपञ्चाशोऽध्यायः ।

अवतारो निवेशानां विधानं वास्तुनो यतः ।
 कात्स्तर्णेन तमतो ब्रूमः सभ्यस्य प्रसवोत्तमः (?) ॥ १ ॥
 कुलजातिक्रमाणां च क्रमं दीर्घाल्पनीविनाम् ।
 संस्थानमभिधास्यामो लक्ष्यलक्षणमेव च ॥ २ ॥
 शुभाशुभानां वैराजमादिं तेषां प्रचक्षते ।
 पूर्वोक्तस्य विमानस्य तस्यातो लक्ष्म कर्त्तयते ॥ ३ ॥
 वैराजस्य यथाकारव्यवस्थानमशेषतः ।
 चतुरश्च समं क्षेत्रमशीत्यंशैर्विभाजयेत् ॥ ४ ॥
 संयुक्तमष्टभिर्मार्गैः कुर्याद् गर्भगृहं शुभम् ।
 द्विपञ्चाशद्वैरः सीमा गर्भकोष्ठसमन्विताः ॥ ५ ॥
 द्वात्रिंशता देवकोष्ठैः सैवरेकान्तरश्च तैः ।
 वाह्यस्थाने ततः स्थानाद् द्वादशश्छामणीर्धरैः ॥ ६ ॥
 हेमरक्षमयैः स्तम्भैः शुक्रपट्टश्च भूषितैः ।
 शुक्रालङ्कारखचितैर्वितानेश्च विभूषणैः ॥ ७ ॥
 स्फाटिकैर्विधैर्जालैः सहरिन्मणिवेदिकैः ।
 हंसकर्णकपोतालीतिर्यकस्थाल्यर्धकर्णिकैः ॥ ८ ॥
 पर्यन्तदेशाधृतया गर्भस्योपरि घण्टया ।
 लोकनाथेन तत् सृष्टमाद्यं वैराजसंज्ञितम् ॥ ९ ॥
 तस्मात् स्वस्तिकसंज्ञैः प्राग् गृहच्छन्दो विजायते ।
 चतुश्शालस्त्रिशालश्च हिरण्यौकस्त्वतोऽपिच ॥ १० ॥
 सिद्धार्थको द्विशालः स्यादेकशालस्तु कुम्भकः ।
 सृष्टमन्यद् विमानं च वरं वीरं चतुर्मुखम् ॥ ११ ॥
 गणानां देवतानां च स्कन्दस्य च यथाक्रमम् ।
 प्रासादा द्वादशैतेऽन्ये जडिरे शुभलक्षणाः ॥ १२ ॥
 स्वस्तिकः श्रीतरुश्चैव तृतीयः क्षितिभूषणः ।
 भूजयो विजयो भद्रः श्रीकूटोष्णीपसंज्ञितौ ॥ १३ ॥

नन्द्यावर्तो विमानश्च सर्वतोभद्र एव च ।
 विमुक्तकोणप्रासाद इति वैराजसंभवाः ॥ १४ ॥
 एकैकस्पात् क्रमेणैवमेकैकः समजायत ।
 स्वस्तिकाद् रुचको झेयः श्रीतरोः सिंहपञ्चरः ॥ १५ ॥
 क्षमाभूषणात् तु शाला स्याद् भूजयाद् गजयूथः ।
 विजयाद्वतंसश्च भद्रान्नन्दी विनिर्गतः ॥ १६ ॥
 श्रीकूटाचित्रकूटाख्य उष्णीपात् प्रमदाप्रियः ।
 व्यापिश्चो नन्दिकावर्ताद् विमानाद्वस्तिजा(वीति)कः ॥ १७ ॥
 कुबेरः सर्वतोभद्रान्मुक्तकोणाद् धराधरः ।
 एतेभ्योऽपि च संभूताः कनीयांसोऽभिधानतः ॥ १८ ॥
 तद्देदास्ते तदाकारैर्लक्ष्याः स्वैः स्वैः पृथग्विधैः ।
 भागैस्तेषुत्तमैः पूर्वान् मध्यमान् मध्यमस्तथा ॥ १९ ॥
 कनीयसः कनीयोभिः प्रासादानुपकल्पयेत् ।
 शिखररपरैः शिल्षाः प्रासादा जङ्गिरे ततः ॥ २० ॥
 प्रथमो रुचकस्तेषु द्वितीयो वर्धमानकः ।
 अवतंसस्तुतीयस्तु चतुर्थो भद्र उच्यते ॥ २१ ॥
 पञ्चमः सर्वतोभद्रः षष्ठः स्यान्मुक्तकोणकः ।
 मेरुमन्दर इत्यष्टी विज्ञेयाः शिखरोत्तमाः ॥ २२ ॥
 चतुरथाः समाख्याता देवानामालयाः शुभाः ।
 एते ते वंशजाः सर्वे निवेश्या ब्रह्मजातयः ॥ २३ ॥
 वैराजकुलसंभूताः प्रासादाः परमोत्तमाः ।
 एतेभ्योऽन्येऽपि संभूताः पुत्रपौत्रप्रपौत्र(यीजा)ः ॥ २४ ॥
 स्ववंशाः सुपरीवाराः परवंशविवर्जिताः ।
 कर्तव्या भूतिकाशेन तेजसा शुभलक्षणाः ॥ २५ ॥
 नन्दका वर्धनाश्चैव सर्वकामफलप्रदाः ।
 हृष्टपुष्टजनाकीर्णाः पूजासंस्कारवर्धनाः ॥ २६ ॥
 यदि हीना भवन्त्येते परवंशेन दृष्टिः ।
 तदुद्देगं नृणां नित्यमर्थनाशं कुलक्षयम् ॥ २७ ॥

पीडां च स्वामिनः कुर्यादन्यदपि गहितम् ।
 तस्मादेते विधातव्या दृष्टिना नान्यजातिभिः ॥ २८ ॥
 इति वैराजजातानामुत्पत्तिः परिकीर्तिता ।
 वैराजजन्मतुरसद्वपरम्परेय-
 मुक्तैवमत्र शुभलक्ष्मवती समाप्तात् ।
 आनन्दकीर्तिधनधान्यकरी कृता स्या-
 दन्यादशी पुनरनर्थफलैव कर्तुः ॥ २९ ^१_२ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समग्रज्ञानसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशाखे
 प्रासादजातिर्नाम द्विपञ्चाशोऽध्यायः ॥

अथ जघन्यवास्तुद्वारं नाम त्रिपञ्चाशोऽध्यायः ।

ब्रूपो जघन्यवास्तुनां द्वारमानमतः परम् ।
 विस्तारं सतलोच्छायं द्रव्यव्यासविधिं तथा ॥ १ ॥
 कथिता ये निराधाराः प्रासादास्तिर्थगायताः ।
 तेषां भागचतुष्केण गर्भवासं विभाजयेत् ॥ २ ॥
 द्वारं साधेन भागेन कुर्वीत स्वार्थविस्तृतम् ।
 द्वारविस्तारपादेन पेद्याया विस्तृतिर्भवेत् ॥ ३ ॥
 विस्ताराधेन पिण्डः स्यात् तत्समः स्यादुदुम्बरः ।
 सार्थमूलादुम्बरकः(?)शाखा व्यासवशाद् भवेत् ॥ ४ ॥
 चतुर्विधश्च कर्तव्यः पेद्यापिण्डः प्रमाणतः ।
 शाखा तु पेद्यापिण्ड(अस्य) विस्तारेण विधीयते ॥ ५ ॥
 शाखाविस्तारतो रूपशाखा स्यात् सार्थविस्तृतिः ।
 अधेन पेद्यापिण्डस्य खलवशाखा विधीयते ॥ ६ ॥
 रूपशाखासमाः कार्या विस्तारात् तुङ्गशाखिकाः ।
 तुङ्गाया वाशतः शाखाः कियन्ते यास्तु काश्चन ॥ ७ ॥
 अष्टांशाभ्यधिकाः सर्वाः कर्तव्या विस्तरेण ताः ।
 द्वारस्यायामविस्तारयोगात् सङ्घया भवेत् तु या ॥ ८ ॥

तलोदयस्य तन्मानं गर्भमण्डपयोः समम् ।
 यदि भिन्नतलं कर्तुं मण्डपः कश्चि हीयते(?) ॥ ९ ॥
 द्वारोच्छ्रुते तदगुणानां मण्डपे स्यात् तलोच्छ्रुतिः ।
 प्रासादेषु कनीयस्मु तलमानमुदाहृतम् ॥ १० ॥
 पद्मागाभ्यधिकं ज्येष्ठे मध्येऽष्टांशाधिकं ततः ।
 बलविधिः(?) समपदः प्रासादस्य विधीयते ॥ ११ ॥
 नाथस्तात् स प्रयोक्तव्यो नोर्ध्वतश्चाप्युद्भवरात् ।
 कुम्भकाभरणपट्टजयन्तीशीर्षकायफलकेषु तुला(नाम्) ।
 उक्त(मान)मिह यत् प्रथमं तन्नाधिकं प्रविदधीत न हीनम् ॥ १२ ॥

इति महाराजग्विराजभीमोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
 जघन्यवास्तुद्वारं नाम त्रिपञ्चाशोऽध्यायः ॥

अथ प्रासादद्वारमानादि नाम चतुष्पञ्चाशोऽध्यायः ।

इदानीमभिधास्यामः प्रासादानां यथाक्रमम् ।
 द्रव्येषुदयविस्तारं बाहल्यं परिधिं तथा ॥ १ ॥
 प्रासादभागिकोत्सेधं प्रासादद्वारमिष्यते ।
 स(ञ्चयं?त्रियं)शोच्छ्रुतं वापि सार्धांशोच्छ्रुयमेव वा ॥ २ ॥
 स्वीयस्वीयोदयादर्धविस्तारं च तदिष्यते ।
 विस्तृतिर्भागतुर्यांशात् पेद्यायाः स्थौल्यमर्धतः ॥ ३ ॥
 पेद्यावाहल्यविस्तीर्णा शाखा भवति मानतः ।
 उचराङ्गानि कुर्वति पेद्याशाखासमानि तु ॥ ४ ॥
 सपादपेद्याविस्तारा रूपशाखा विधीयते ।
 रूपशाखान्वितः कार्यः पीठबन्धस्तथोपरि ॥ ५ ॥
 वृत्तं कार्यमधोवृत्ते पत्रकैश्च निरन्तरम् ।
 स्तम्भाच्च द्विगुणव्यासं भरणं भूषणान्वितम् ॥ ६ ॥

रूपशाखासमं तच्च कर्तव्यमतिसुन्दरम् ।
 ऊर्ध्वे समन्ताचाटांशमात्रे तच्चतुरश्चकम् ॥ ७ ॥

तदूर्ध्वं भरणोच्छ्रायः स्यात् पादोनसमुच्छ्रितिः ।
 कपोतश्चाप्यधश्चीर्षगर्भः स च विधीयते ॥ ८ ॥

सरथालयपत्रो वा स्वोदयार्थविनिर्गमः ।
 तस्योपरिष्टात् कर्तव्यं स्यादुच्छालयपत्रकम् (?) ॥ ९ ॥

रथिका (तु) विधातव्या द्वयोरप्युच्छ्रितिस्तयोः ।
 सार्थप्रमाणभरणाद् भूषा स्यात् पुष्पकादिभिः ॥ १० ॥

रूपकैर्वा यथाशोभं स्तम्भिकाभिश्च सर्वतः ।
 कण्टकोयत्रिभागोन (?) कृटाकारं भवेदतः ॥ ११ ॥

विभूषितं सिंहचक्रैहस्तितुण्डरथापि वा ।
 कपोतादि विधातव्यमन्तरे रूपशाखयोः ॥ १२ ॥

कार्यं विषमसंख्यं च सर्वमेतद् विचक्षणैः ।
 तस्माद् वहिर्विधातव्या सर्वतः परिमण्डली ॥ १३ ॥

अन्त्यशाखासमा सा च प्रयाणेन विधीयते ।
 तस्यां सद्वारशाखायां (प्रा)यशः पद्मपत्रिकाः ॥ १४ ॥

कार्या(त्रा वाचैवा द्वार)शाखायास्तद्विस्तारसमुच्छ्रिताः ।
 भवेदधस्तादधर्थेन ग्रीवाया रसना तथा ॥ १५ ॥

ग्रीवया सार्थया तुल्यमन्तरं पत्रकाण्यधः ।
 भागद्वयं प्रकुर्वीत जङ्घा त्र्यंशा ततोऽप्यधः ॥ १६ ॥

पेद्यापिण्डप्रमाणेन खल्वशाखा विधीयते ।
 पेद्यापिण्डसमो वाद्यशाखान्यासः प्रकीर्तिः ॥ १७ ॥

ऋमेणानेन कर्तव्याः शाखाः स्वल्पा यद्वच्छ्रया ।
 न नवभ्यः परं कार्या द्वारशाखाः कथञ्चन ॥ १८ ॥

निर्गमो वा प्रवेशो वा^१ विस्तारेण संमन्वितः ।
 पेद्याया यदि वार्धेन शाखानां स विधीयते ॥ १९ ॥

१. 'वि', २. 'खाल्तत्रय', ३. 'वा तवि', ४. 'संमितः' ख. पाठः ।

सार्थपेत्यापिण्डसमः पिण्डस्योदुम्बरो भवेत् ।
 तलन्यासस्तदर्थेन भूमिर(ज्ञा चैज्ञात्र) तत्समाँः ॥ २० ॥
 उदुम्बरकपिण्डस्य मानात् सिंहमुखानि च ।
 उदुम्बरात् पादहीनस्तुल्यो वाभ्यधिकोऽथवा ॥ २१ ॥
 पट्टस्य पिण्डस्त्रिविधो विस्तारात् स्तम्भतोऽधिकः ।
 भागपादेसमस्तम्भो द्वादशांशं प्रपीडितः ॥ २२ ॥
 भागद्वये च कर्तव्यो रूपलक्षणसंयुतः ।
 चतुष्प्रकारोऽयं नानारूपप्रपञ्चतः ॥ २३ ॥
 स्तम्भविस्तारविस्तीर्णं पिण्डे तत्पादवर्जितम् ।
 विस्तारात् त्रिगुणं दैर्घ्याद्वीरग्रहणमिष्यते ॥ २४ ॥
 प्रविष्टौ स्तम्भमाने स्तः कुम्भकोत्कालकौ सदा ।
 तलपट्टसमं पट्टमुत्तरं परिकल्पयेत् ॥ २५ ॥
 (तीर्ही)रं तस्य त्रिभागेन समुत्सेधाद् विधीयते ।
 किञ्चिद् विनिर्गतं पट्टाद् यथाशोभं प्रकल्पयेत् ॥ २६ ॥
 अत ऊर्ध्वं यथाशोभं कण्ठकेनासनेन च ।
 रथकैश्चित्ररूपैश्च कृटागारैः सतोरणैः ॥ २७ ॥
 अलिन्दे मण्डपे वापि चतुष्के वलभीषु वा ।
 वितानानि विचित्राणि समुक्षिसतलानि च ॥ २८ ॥
 लक्षणेन च युक्तानि विदधीत यथोचितम् ।
 लुमाँः फलकवर्तीभिः कृताँः समभिदध्महे ॥ २९ ॥
 उत्क्षिप्तानां च ये भेदा जायन्ते सर्ववास्तुषु ।
 तुम्भिनी लम्भिनी हेला शान्ता कोला मनोरमाँ ॥ ३० ॥
 आध्माता चेति समैता नामतः कथिता लुमाः ।
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे कान्ते भूमितले शुभे ॥ ३१ ॥
 सूत्रं क्षेत्रसमं कृत्वा कर्णात् कर्णं विभाजयेत् ।
 विन्यस्येद् गर्भसूत्राणि तयोर्मध्यगतानि च ॥ ३२ ॥

१. 'धी' ख. पाठः । २. 'मा', ३. 'ह' क. पाठः । ४. 'स्त', ५. 'दः' ख. पाठः ।
 ६. 'नी', ७. 'को' क. पाठः । ८. 'न' ख. पाठः । ९. 'गाफ', १०. 'ता स' क. ख.
 पाठः । ११. 'हविनी', १२. 'माः', १३. 'पूर्वं का' ख. पाठः ।

भूयश्वान्यानि मध्येषु सूत्राणि विनिवेशयेत् ।
 मध्ये वृत्तं सप्तालिख्य तुम्बिका कमलोपमा ॥ ३३ ॥
 कार्या भागीकृतं तत्र वृत्तं क्षेत्रे प्रवर्तयेत् ।
 सूत्रे सूत्रे तु पिण्डस्थां लुम्भां सूत्रेण वालिखेत् ॥ ३४ ॥
 लुमान्तरेषु सर्वेषु वैकंव्येन धुषीकृतम् ।
 तयोरन्तरयोर्मध्ये लुमामूले विकर्करम् ॥ ३५ ॥
 द्विगुणं त्रिगुणं वा स्यात् ततश्च वलिनीं लिखेत् ।
 व्यासार्थेनोदयथेह कर्तव्यस्तत्र मण्डले ॥ ३६ ॥
 सम्पातात् तलसूत्राणां तुम्बिका चोर्ध्वसूत्रिता ।
 उदयस्तलसूत्रस्य तुम्बिकायास्तथान्तरम् ॥ ३७ ॥
 पूर्वसूत्रे लुमाग्रेषु कण्टकान् कल्पयेद् कङ्जन् ।
 वहिस्थानेषु चान्तेषु लक्ष्मीं कुर्यात् सुनिधितम् ॥ ३८ ॥
 लंक्ष्मीं गृहीत्वाधःसूत्र उर्ध्वसूत्राणि लक्षयेत् ।
 उदये कण्टकस्यान्ते तद्देवानुसन्ततम् ॥ ३९ ॥
 दापयेदुत्तरं सूत्रं लुमानां खल्वैकानि च ।
 पिण्डव्यासं वलीनां चाप्येषु क्षोभणविस्तृती ॥ ४० ॥
 लुमा कर्णगता या स्यादाध्याता सा प्रकीर्तिता ।
 छेदे प्रवर्तितान्या स्यात् किञ्चिदूना मनोरमा ॥ ४१ ॥
 कोला त्रुटीया शान्तेति चतुर्थीं परिकीर्तिता ।
 हेलास्त्र्या पञ्चमी पृष्ठी लम्बिनी नामतौ लुमा ॥ ४२ ॥
 सप्तमी तुम्बिनीत्येता मार्गसूत्रविनिर्गताः ।
 एताभिः कारयेत् कौलं वितानं नयनोत्सवम् ॥ ४३ ॥
 कोलाविलं हस्तितालु चाष्टपत्रं शरावकम् ।
 नागवीथीवितानं च पुष्पकं भ्रमरावली ॥ ४४ ॥

१. 'रुचिका' ख. पाठः । २. 'त्र', ३. 'ण', ४. 'मादू' क. ख. पाठः । ५. 'का-
 वेन', ६. 'रुचिका', ७. 'मू' ख. पाठः । क. पाठः । ८. 'वेषुमाग्र' क. पाठः ।
 ९. 'बलं ग', १०. 'लिं', ११. 'र्तिन्य+स्याः', १२. 'तस्तुला', १३. 'का'
 ख. पाठः ।

हंसपक्षं करालं च विकटं शङ्खकुट्टिमम् ।
 शङ्खनाभिः सपुष्यं च शुक्ति(द्वीर्धं)त्तकमेव च ॥ ४५ ॥
 मन्दारं कुमुदं पद्मं विकासं गरुडप्रभम् ।
 पुरोहतं पुरारोहं विद्युन्मन्दारकं तथा ॥ ४६ ॥
 एतान्येवं वितानानि सङ्खयया पञ्चविंशतिः ।
 एतेषां रूपनिर्माणमधुना संप्रचक्षमहे ॥ ४७ ॥
 समन्ताच्चतुरश्च च चतुरश्रायतेऽथवा ।
 क्षेत्रे वृत्तिकृते नाभ्यैकया तत् कोलमुच्यते ॥ ४८ ॥
 चतुरश्च यदा क्षेत्रे कर्णस्थानेषु कृत्स्नशः ।
 चतुरश्रनिवन्धेन चतुरश्रनिवन्धने ॥ ४९ ॥
 वैलिनी विकटाकारा पूर्वं वृत्तान्यधस्तथा ।
 ऋमवृत्तं च यन्मध्ये परं तत्रापरा लुमाः ॥ ५० ॥
 क्रियन्ते तुम्बिकाः पञ्च यत्र सुस्थाः सुसंवृताः ।
 मार्गे(?)स्तलेऽथःसूत्रस्य तद् भवेन्नयनोत्सवम् ॥ ५१ ॥
 कोलाविलं समे क्षेत्रे भागाष्टकविभाजिते ।
 मध्ये द्विभागे विलिखेद् वृत्तं तुम्बिकयान्विते ॥ ५२ ॥
 तत्र ऋमान्ते च सूत्रे ऋमान् पोडश कारयेत् ।
 क्रज्जनि यानि सूत्राणि लुमास्ताः परिकल्पयेत् ॥ ५३ ॥
 यानि शेषाणि सूत्राणि वलिनीस्ताः प्रकल्पयेत् ।
 तुम्बिन्यां कारयेद् वृत्तं गजतालुकमुच्यते ॥ ५४ ॥
 अष्टपत्रे चतुष्प्रष्ठिभागं क्षेत्रं प्रकल्पयेत् ।
 लुमास्थानेषु पत्राणि खण्डितान्यन्तरैस्तथा ॥ ५५ ॥
 सम्पातेषु समस्तेषु तुम्बिकाः सञ्चिवेशयेत् ।
 वृत्ताकारं शरावं स्थाद् विन्यासं च धरैश्च तत् ॥ ५६ ॥
 चतुरश्रेऽथवा वृत्ते भागत्रयविभाजिते ।
 निवेशयेद्वागवन्धं † सम्पाते वलिसूत्रयोः ॥ ५७ ॥

१. 'मु', २. 'भै', ३. 'व', ४. 'वी' क. पाठः । ५. 'स्व', ६. 'स्थिता ।',
७. 'त्व' ख. पाठः ।

† नागवीथीति लक्ष्ये पठितम् ।

वितानमेतत् कथितं यश्चिकीर्षति मानवः ।
 ऊर्ध्वतिर्थगतैर्नालैः क्रियते यन्निरन्तरम् ॥ ५८ ॥

पुष्पमालाकुलं श्रीमत् पुष्पकं तदुदाहृतम् ।
 अशोकपल्लवाकीर्णलुमाञ्चेमनिवन्धनम् ॥ ५९ ॥

चतुरश्रक्रियायुक्तं सा प्रोक्ता भ्रमरावली ।
 आध्माता कर्णमायाता तुम्बिकास्थानसंश्रया ॥ ६० ॥

तुम्बिनी यत्र मध्ये तु हंसपक्षं तदुच्यते ।
 अस्यैव पक्षे तु यदा सम्बद्ध्येत मनोरमा ॥ ६१ ॥

तुम्बिनी च विपक्षेषु करालं तदुदाहृतम् ।
 कोला लुमा स्याद् विकटे शङ्खे शान्ता प्रकीर्तिं ॥ ६२ ॥

शङ्खनाभिसमं सूत्रं तुम्बिकायाः प्रवर्तते ।
 सर्वेष्वपि लुमास्थानेष्वेकरेखान्वितं भवेत् ॥ ६३ ॥

शङ्खनाभिरिति प्रोक्तं वितानमिदमुत्तमम् ।
 एतस्यैव लुमास्थाने तुम्बिका पद्मकावृता ॥ ६४ ॥

बलयैर्भूषिता यत् स्यात् सपुष्पमिति तद विदुः ।
 क्षेत्रे वृत्तायताकारे कारयेच्छुक्तिसंज्ञकम् ॥ ६५ ॥

वृत्ताकारे भवेत् क्षेत्रे वृत्तं बलयकर्मणा ।
 चतुरश्रे समे क्षेत्रे यल्लुमार्घलुमर्घ(तैतः) ॥ ६६ ॥

वृत्तक्षोभणभज्जानि तन्मन्दारकमुच्यते ।
 कुमुदं कुमुदस्येव लुमाक्षेपादिहार्घतः ॥ ६७ ॥

पद्मके स्यादधःक्षिप्ता विकासे मध्यमा लुमा ।
 गरुडे गरुडो मध्ये नागाभरणशोभितः ॥ ६८ ॥

६ पुरोगतं तद् यदधो गत्वा स्यादौर्ध्वं पुनः ।
 अधो गत्वा पुरारोहमूर्ध्वमूर्ध्वं ततोऽप्यथः ॥ ६९ ॥

विचित्रक्षोभणाकीर्णमन्ते वृत्तं मुहुर्मुहुः ।
 अष्टमिश्चात्रिभिर्मध्ये विद्युन्मन्दारकं भवेत् ॥ ७० ॥

१. 'नामतः' ख. पाठः । २. 'स' क. पाठः । ३. 'त्रा', ४. 'दौर्ध्वं पु' ख. पाठः ।

६ पुरोहतमिति द्वु लक्ष्ये पठितम् !

मानोन्मानमय व्रूमः प्रासादच्छाद्यसंश्रयम् ।
 अर्थेनच्छाद्यविस्तारस्योद्धे वंशं प्रकल्पयेत् ॥ ७१ ॥
 अयमधोर्दियः प्रोक्त आवन्त्यो नामतः परः ।
 ऋंशेनच्छाद्यविस्तारस्योद्यो वामनो भवेत् ॥ ७२ ॥
 वामनावन्त्ययोर्मध्ये नवधा प्रविभाजयेत् ।
 भागोच्चरोदयात् तेऽष्टौ वामनादुदयाः स्मृताः ॥ ७३ ॥
 (वा?आ)तपत्रोऽथ कौवेरः (स?श)ैनाख्यस्तथावली ।
 हंसपृष्ठो महाभोगी नारदः शम्बुकस्तथा ॥ ७४ ॥
 वामनः प्रथमस्तेषामाव(न्त्योते?न्त्येन) दशेत्यमी ।
 छादानामय वृत्तानामुदयः प्रोच्यतेऽधुना ॥ ७५ ॥
 तलसूत्रसमं कृत्वा कुर्याद् द्वादशधोदयम् ।
 पष्टादारभ्य भागात् स्युः सप्त भागोच्चरोदयाः ॥ ७६ ॥
 कृवेरशेखरी चन्द्री नागथा(तु?थ) गणाधिपः ।
 मुख्यश्चोऽः सुभद्रश्च वृत्ते सप्तोदयाः स्मृताः ॥ ७७ ॥
 कृत्वा त्रिकर्करपदं लुमापृष्ठं लिखेत् ततः ।
 भागार्धमाधिकं क्षेत्रे^१ भवेच्छाद्यकर्वत्वा ॥ ७८ ॥
 भागार्धवर्धिते क्षेत्रे तलसूत्रक्रमान्विते ।
 लुमामाद्यां लिखेद् भूयः पद क्रमेणानुसन्तरम् ॥ ७९ ॥
 रिक्षा यथाद्विहस्ताय(?) लुमायाः स्यादनन्तरम् ।
 लुमा त्रिभागहीनेन परिवृद्धाङ्गुलेन सा ॥ ८० ॥
 तस्याश्चानन्तरा लक्ष्म्या सार्धं वृद्धाङ्गुलत्रयम्(?) ।
 ऋंशोनैः पदभिरपरा ऋंशोनैर्दशभिः परा ॥ ८१ ॥
 चतुर्दशभिरन्या स्यात् सार्धवृद्धौ ततोऽङ्गुलैः ।
 विशत्यङ्गुलवृद्धा तु सप्तमी कोणसंश्रितां ॥ ८२ ॥
 क्रमेणानेनै मानानि लुमानां वृद्धिहासयोः ।
 अनुपातेन कार्याणिच्छाद्यक्षेत्रानुसारतः ॥ ८३ ॥

१. 'स्वोदयस्वव्यसनो' (?) क. पाठः । २. 'मा' ख. पाठः । ३. 'न्त्योते' क.
 पाठः । ४. 'गा?' ख. पाठः । ५. 'स्त्रादः', ६. 'त्राद भ', ७. 'शामंभरायश्म्या सा'
 क. पाठः । ८. 'लङ्घयम्', ९. 'द्वां' ख. पाठः । १०. 'ताः', ११. 'न नामानि' क. पाठः ।

† कुवेरवल्लीचन्द्रीपञ्चगा गणनायकः ।
 * मुख्या सुभद्रेत्येताः सुरुद्धमाकर्मार्धमादितः ॥ ८४ ॥
 एतासां गणिकाछेदाश्वत्वारः परिकीर्तिताः ।
 ऊर्ध्वस्तिर्यग्नेग्नितिस्त्रयंशस्तथार्धत्र्यंश एव च ॥ ८५ ॥
 छायकोदयविस्तारं तन्निर्गमसमायति ।
 कृत्वा पोढा भजेत् क्षेत्रं विस्तारायामतः सप्तम् ॥ ८६ ॥
 तत्रोर्ध्वद्रव्यमानेनच्छिन्न्यात् प्रागेव गणिकाम् ।
 तस्यां छेदानुसारेण दापयेदेव लम्बकम् ॥ ८७ ॥
 अधस्ताद् गणिकायाश्च कण्टकानि प्रकल्पयेत् ।
 अवपातोच्छ्रौयो ज्ञात्वा त्रीणि स्थानानि चिह्नयेत् ॥ ८८ ॥
 गर्भे तथोर्ध्वे प्रान्ते च तृतीयं मध्यतस्तयोः ।
 यत्र स्थाने स्थितं सूत्रं सृष्टति स्थानकत्रये ॥ ८९ ॥
 तस्मात् प्रसार्य तत्सूत्रं भ्रमयेत् कर्कटं ततः ।
 लुपार्धस्यैवमुपरिसंस्थानमुपजायते ॥ ९० ॥
 उपरि स्थितेन सूत्रेण तत्तुल्येनैव कर्कटम् ।
 प्रान्तावलम्बकस्थाने भ्रमयेत् स्वल्बसिद्धये ॥ ९१ ॥
 प्रौंगक्षे भागयुगलावच्छिन्नं फलके पुनः ।
 कल्पयेत् सममेवैषा लुपापार्णिनिंगद्यते ॥ ९२ ॥
 शेषां लुपां तु दीर्घाशैश्चतुभिः प्रविभाजयेत् ।
 चतुर्धार्ताः परं तस्याः कर्तव्यं वृत्तवर्तनम् ॥ ९३ ॥
 अर्थोदये लुपोच्छ्रायो विस्तारांशद्वयोन्मितः ।
 मूलेऽग्रतश्च भागार्धमुदयोऽस्या विधीयते ॥ ९४ ॥
 अथःक्षेत्रे स विस्तारात् सूत्रमालम्ब्य तद्यथा ।
 विस्तारात् सूद्धेष्वेत्रे सार्धतद्वागमांश्रितः ॥ ९५ ॥

१. 'न्द्रा' ख. पाठः । २. 'स' क. पाठः । ३. 'गा', ४. 'प्राकृक्षेत्रे भा',
५. 'मायता' । ६. पाठः ।

† 'कुवेरवेष्वरी'ति पूर्वं पठितम् । * 'मुख्य' इति पूर्वं पठ्यते । तदनन्तरं च
'अच्छ' इति नामान्तरमपि तत्र दृश्यते ।

लुमाग्रभागञ्चयं च तयोर्मध्यं च यत् स्थितम् ।
 मूत्रं स्पृशेत् तत्र धृत्वा कर्कटं भ्रमयेद् बुधः ॥ ९६ ॥
 भागभागोत्तरक्षेवापेक्षया चतस्रुष्वपि ।
 गण्डकासु विधातन्यं विधिवद् वृत्तवर्तनम् ॥ ९७ ॥
 मूलौलुमायाः क्षेत्रस्य पञ्चमांशत्रयेऽथवा ।
 पृथुत्वार्थे लुमापृष्ठलेखावृत्तद्वयं यथा ॥ ९८ ॥
 संपत्तयेवमालिल्य शेषं पूर्ववदाचरेत् ।
 लुमाया मूलतः क्षेत्रसप्तमांशचतुष्टये ॥ ९९ ॥
 पृथुत्वार्थे लुमापृष्ठलेखावृत्तद्वयं यथा ।
 संपत्तयेवमालिल्य पद्मागैः शेषमाचरेत् ॥ १०० ॥
 नवांशपञ्चके यद्वा क्षेत्रस्यैव लुमादितः ।
 पृथुत्वार्थे लुमापृष्ठद्वयलेखां निवेशयेत् ॥ १०१ ॥
 शेषैः पद्मिस्ततो भागैरन्यत् तु प्राग्वदाचरेत् ।
 भागार्थं निर्गमः कार्यः प्रासादानां कनीयसाम् ॥ १०२ ॥
 छाद्यकस्यैव भागैस्तु ज्यायसां निर्गमो यतः ।
 तदन्तरे ये प्रासादास्तेषां क्षेत्रानुसारतः ॥ १०३ ॥
 छाद्यस्य निर्गमः कार्यो विद्विद्विरुपाततः ।
 निर्गमस्य त्रिभागेन कनीयात् छाद्यकोदयः ॥ १०४ ॥
 अर्धभागेन परमो भाज्यं पद्मिस्तदन्तरम् ।
 अन्ये भागोत्तराः पञ्च सप्तैवमुदया मताः ॥ १०५ ॥
 इदानीमभिधास्यामः सिंहकर्णस्य लक्षणम् ।
 छाद्योदयोदयः स स्याद् दशभिस्तं विभाजयेत् ॥ १०६ ॥
 तैः स्यात् पोदशभिर्भागैस्तस्यैव तलविस्तुतिः ।
 ऊर्ध्वतश्चतुरो भागांस्त्यक्त्वा शङ्कुं निवेशयेत् ॥ १०७ ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे कर्णेनारभ्य शङ्कुतः ।
 ततो वृत्तं लिखेत् पञ्चाञ्चङ्कुं समधिरोपयेत् ॥ १०८ ॥

१. 'र्धं', २. 'ध्यं यतः स्थितम्', ३. 'लानुगा' ख. पाठः । ४. 'गाः स्तु-
 निर्गमोज्ञायसां मतम्(?)' क. पाठः । ५. 'आंशिकसे' ख. पाठः ।

ऊर्ध्वदेशात् तु भागेन स स्याद् भागचतुष्टये ।
 लिखेद् वृत्तं त्रिभागोन्द्यंशकर्कटोद्धर्वम् ॥ १०९ ॥

तस्योपरिष्टात् तदनु ग्रीवा कार्यकभागिनौ ।
 गर्भे मृजाग्रयोर्मध्ये तिर्यग् भागद्वयं भवेत् ॥ ११० ॥

मध्ये कर्णाग्रयोस्तिर्यक् कार्यं भागद्वयं बुधैः ।
 ग्रीवाया उपरिष्टाच्च भागमेकं शिखा भवेत् ॥ १११ ॥

शिखाग्रमुपरिष्टाच्च कर्तव्यं गर्भसङ्गतम् ।
 शिखाग्रमूर्ध्वतस्तद्वदर्थभागावलम्बितम् ॥ ११२ ॥

भागावलम्बित कर्णाग्रं स्कन्धाग्रं तावदेव तु ।
 स्यात् कर्णस्वण्डयोर्मूलं स्कन्धदेशस्य सङ्गतम् ॥ ११३ ॥

स्वस्तिको द्यंशविस्तारायामः प्राग्वृत्तमध्यर्तः ।
 एवं शङ्कुमध्यः सूत्रादूर्ध्वं भो(गो?गे) निवेशयेत् ॥ ११४ ॥

भागे निवेशितं कुर्यात् पूर्ववृत्ताद्यशेषतः ।
 स्वस्तिकान्तं चै पूर्वोक्तं पूर्ववत् सर्वमाचरेत् ॥ ११५ ॥

तलसूत्रादुपर्यशेषतुर्भिर्गर्भतः स(मः?मम्) ।
 द्वाभ्यां द्वाभ्यामुभयतो भागाभ्यां तिर्यग्रव च ॥ ११६ ॥

भागेन तद्वदेवाधः सूत्रादुपरि गर्भतः ।
 चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च भागैरुभयतः समम् ॥ ११७ ॥

वृत्तार्थानि लिखेदेककर्णयुक्तानि पूर्ववत् ।
 एकशृङ्गाणि च ग्रीवास्वस्तिकार्थयुतानि च ॥ ११८ ॥

तलसूत्रवहिर्देशाद् वायवृत्तसमुद्धवः ।
 पदत्रयप्रविष्टः स्यात् पाञ्चिरत्र परिस्फुटः ॥ ११९ ॥

त्रिवलीललितो नाम सिंहकर्णोऽयमीरितः ।
 दशभागीकृते प्राग्वदुदये तत्प्रमाणतः ॥ १२० ॥

१. 'शी त्रिभागोनैः स', २. 'य', ३. 'कैः', ४. 'व्य', ५. 'र्द'
 ६. 'ग', ७. 'कस्कन्धवि', ८. 'मः', ९. 'गर्भे नि' स्व. पाठः । १०. 'त्वा'
 क. पाठः । ११. 'द्वृ', १२. 'सुत्राच' ख. पाठः । १३. 'द्वै', १४. 'ष्ट'
 १५. 'पुरः स्फु' क. पाठः ।

चतुर्दशांशविस्तीर्णे कर्णे सार्थे वलिम्बवेत् ।
दशभागोच्छ्रुते प्राप्तवृत्तं स्यात् त्रयोदशविस्तृतः ॥ १२१ ॥

क्षेत्र एकवलिनीम् सिंहकर्णस्तथापरः ।
एते शोभान्विताः कार्यास्त्वयश्रसंवरणात्मयः ॥ १२२ ॥

प्राप्तादानामिति निगदितं द्वारमानं निवेशः
स्तम्भानां च स्फुटमिह वितानानि तेषां लुमाश्च ।
वृत्तच्छाद्योच्छ्रुतिरभिहिता छाद्यसंस्था लुमाश्च
शोक्ताः सप्त प्रथितमपरं सिंहकर्णप्रमाणम् ॥ १२३ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोबदेवविरचिते नमराङ्गणसूत्रधारापरनाम्भिर वास्तुशाखे
प्राप्ताद्वारस्तम्भनिवेशवितानलुमालक्षणवृत्तच्छाद्यलुमासिंहकर्णप्रमाणं नाम

चतुष्क्षाशोऽध्यायः ॥



३०२०२०
३०२०२०
३०२०२०

